उपन्यासकार

प्रेमचन्द और उनका गोदान :

एक नया मूल्यांकन



डा० कृष्णदेव झारी



भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ़-२

प्रकाशक	भारतेन्दु भवन चण्डीगढ़ २
मुद्रक	साहित्य-प्रेस साहित्य-कुञ्ज आगरा ।
प्रथम संस्करण	मार्च १९६२
मूल्य	६ रुपये पचास पैसे ।

Upulascar Prem Chand Aur 'Godan'
by Dr Krishan Dev Jhari

Price Rupees Six & Fifty Paise

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक सुधी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमें अपार प्रसन्नता अनुभव हो रहा है। अप्रतिम साहित्यकार प्रेमचन्द और उनकी रचनाओं का मनन-आलोचन पिछले लगभग तीस वर्षों से शुरू हुआ है, हो रहा है। इधर प्रेम द पर अनेक आलोचनात्मक ग्रन्थ एवं शोध-प्रबन्ध भी लिखे जा चुके हैं। किन्तु भवत किसी भी समीक्षक ने मानवीय संवेदनाओं के चित्रण की दृष्टि से प्रेमचन्द का रूप नहीं समझा है। वर्तमान युग में कुछ तो पाश्चात्य तात्त्विक दृष्टिकोण के प्रभाव तथा कुछ रस-सिद्धान्त विरोधी वर्तमान सामान्य प्रवृत्ति की वजह से कथा-साहित्य समीक्षा रसवादी पद्धति पर करना हम प्रायः भूल ही बैठे हैं। प्रस्तुत पुस्तक में द्वान् लेखक ने प्रेमचन्द की औपन्यासिक चेतना के क्रमिक विकास तथा उनकी सर्व ष्ठ रचना 'गोदान' का अध्ययन रसवादी दृष्टि से एक नए ढङ्ग पर किया है। तुत पुस्तक यद्यपि हिन्दी की स्नातकोत्तर उच्च कक्षाओं के छात्रों के लिए भी सच्चे र्थों में परमोपयोगी महत्त्वपूर्ण पुस्तक है तथापि इसे तथाकथित 'छात्रोपयोगी' पुस्तक समझने की भूल नहीं होनी चाहिए। इसमें विद्वान् लेखक का गम्भीर मौलिक चिन्तन ' रसवादी नवीन अध्ययन प्रकट हुआ है। डा० शर्मा के नवीन दृष्टिकोण की झलक के लिए हम पुस्तक के कुछ अंश यहाँ उद्धृत करते हैं—

'रस-भाव साहित्य का प्राण-रूप तत्त्व है। बहुत-से आधुनिक आलोचक हित्य-समीक्षा—विशेषकर आधुनिक साहित्य की समीक्षा में रस-तत्त्व की अवहेलना में लगे हैं। " रस की अवहेलना से काम न चलेगा। रस-तत्त्व में जीवन की सम्पूर्ण ता को समाहित करने की शक्ति है। जीवन के वैषम्य पर क्षुब्ध करुणार्द्र या से प्लावित हुए बिना अर्थात् उदात्त भावानुभूति या रसानुभूति के बिना कोई ष्ट वर्गहीन या वैषम्यहीन समाज के निर्माण में प्रवृत्त हो ही नहीं सकता । जब कहा जाता है कि 'गोदान' कृषक-जीवन की ट्रेजेडी है तो क्या इससे यह अभि है कि उसमें कृषक-जीवन की समस्याएँ प्रस्तुत की गई हैं? इससे निश्चित ही न की करुणा अभिप्रेत है जो करुण रस ही है। इसी प्रकार जब हम कहते हैं कि दान' में शोषकों के अनेक रूप हैं तो इसका सीधा मतलब यह है कि 'गोदान' में । या बीभत्स रस के अनेक आलम्बन हैं। समाज की बुराइयाँ कुरीतियाँ अत्या ऽ, अनाचार, अन्याय सब जो चित्रित होते हैं वे घृणा या बीभत्स रस के विषय ते हैं। "

'उपन्यास-कहानी आदि आधुनिक साहित्य विधाओं के तत्त्व-निरूपण में हम श्चात्य समीक्षकों के अनुकरण पर मूल तत्त्व को भुला रहे हैं। प्रेमचन्द के उप

न्यासों की समीक्षा करने वाले समीक्षकों ने भाव-संवेदनाओं की दृष्टि से मूल्यांकन छोड़ ही दिया है। क्या प्रेमचन्द की महानता केवल इस बात में है कि उन्होंने समाज की विविध समस्याओं का बोध कराया जो कार्य कि एक समाज-शास्त्री भी कर सकता था ? मैं समझता हूँ प्रेमचन्द इसलिए महान् हैं कि उन्होंने जीवन के भिन्न भिन्न पहलुओं पर हमारी भाव-संवेदनाएं जगाईं जो युग के महान् सांस्कृतिक निर्माण से सम्बन्ध रखती हैं। अनुभूति-क्षेत्र के रागात्मक तत्त्वों के माध्यम से ही प्रेमचन्द के प्रगतिशील तत्त्वों का अध्ययन करना समीचीन है। इसके बिना उनकी समीक्षा अधूरी ही कही जा सकती है। प्रेमचन्द के उपन्यासों की सबसे बड़ी शक्ति उनमें व्यक्त उदात्त भाव और रस ही हैं।

डा० कृष्णदेव झारी ने अपनी भव्य पुस्तक 'रस-शास्त्र और साहित्य-समीक्षा' में उदात्त रस को काव्य-साहित्य-समीक्षा का सर्वमान्य शाश्वत मानदण्ड घोषित किया है। रस-शास्त्र या रस-सिद्धान्त तथा रसवादी समीक्षा का उन्होंने क्रान्तिकारी नव प्रवर्तन किया है। अपनी अनेक मौलिक स्थापनाओं से वे हिन्दी के समर्थ रसवादी समीक्षक सिद्ध होते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में व्यक्त उनकी कुछ मौलिक स्थापनाएं ये हैं—

● 'प्रेमचन्द के उपन्यासों का बीज भाव घृणा है। यह बीभत्स रस या उदात्त घृणा भाव ही है जो प्रेमचन्द के उपन्यासों को सबल और सशक्त रचनाएँ सिद्ध करता है। इसी के माध्यम अनेक सामाजिक बुराइयों के मूलोच्छेदन की प्रेरणा हमें प्राप्त होती है।

● 'करुण और बीभत्स रस का आद्योपान्त सह-संचार एवं प्रसार ही 'गोदान' की सबसे बड़ी शक्ति है।"

● "प्रेमचन्द ने घृणा के संचारी-रूप में व्यंग्य का प्रबल अस्त्र-प्रयोग करके धर्म तथा समाज का खोखलापन कुरेद डाला है।

● " 'गोदान' में वर्ग विषमता एवं वर्ग-चेतना तो खूब है वर्ग-संघर्ष विशेष नहीं दिख सका।"

● 'गोदान' में एक ओर ह्रासोन्मुख सामन्तवाद का सच्चा चित्रण है दूसरी ओर उसके स्थान पर विकासशील पूँजीवाद तथा महाजनी संस्कृति का व्यापक प्रभाव दिखाते हुए, उसके भी समाज शोषी एवं मानव शोषी रूप का विस्तृत चित्रण हुआ है।"

● "प्रेमचन्द का आदि मध्य ही गांधीवाद कहा जाय अन्त न साम्यवाद है न गांधीवाद, पूर्ण मानवतावाद है। इत्यादि।

आशा है लेखक का यह सर्वांगीण अध्ययन प्रेमचन्द के अध्येताओं को उपयोगी प्रतीत होगा।

—प्रकाशक

विषय-सूची

१

पूर्व-पीठिका—प्रेरणा स्रोत

१ व्यक्तिगत जीवन-परिस्थितियाँ और प्रभाव



मुन्शी प्रेमचन्द कराहती मानवता के साहित्यकार थे। अभाव उत्पीड़न शोषण अन्याय अत्याचार और गरीबी के ज्वलन्त भावों का जितना विशद, व्यापक और सफल चित्रण प्रेमचन्द ने किया है उतना हिन्दी का शायद ही कोई अन्य साहित्यकार कर पाया हो। इस सफलता का एक बड़ा कारण यह है कि स्वयं प्रेमचन्द का जीवन अभावों गरीबी के कटु अनुभवों कष्टों और संकटों का जीवन रहा है। जिस साहित्यकार की आत्मा जितना अधिक आत्मक्रन्दन करती है जर्जर जीवन की भट्टी में जितना अधिक जलती है युग-आघातों को जितना अधिक सहती है और जीवन की चक्की में पिसती हुई जितनी ही अधिक मर्म-व्यथा की निजी अनुभूतियाँ प्राप्त करती है उतनी ही अधिक सचाई से वह साहित्यकार दुखी मानवता का हाहाकार अपनी रचनाओं में प्रस्तुत कर सकता है। प्रेमचन्द के जीवन और साहित्य से हमें यह सत्य पूर्ण रूप में प्राप्त होता है। अतः 'गोदान' जैसे श्रेष्ठ उपन्यास की रचना करने वाले लेखक का मनोविकास समझने के लिए हमें उनकी जीवन-परिस्थितियाँ जानना भी आवश्यक है।

प्रेमचन्द का जन्म ३१ जुलाई सन् १८८० को बनारस से चार मील दूर लमही गाँव में हुआ था। पिता अजायबराय डाकखाने में मामूली नौकर थे। प्रेमचन्द का बचपन का नाम धनपतराय था। वे गरीबी में ही पले। उनके पारिवारिक जीवन में अनेक विषमताएँ आरम्भ से अन्त तक व्याप्त रहीं। बालक धनपतराय केवल ८ साल का था कि माता का देहान्त हो गया। पिता ने अधेड़ावस्था में दूसरी शादी करली किन्तु बालक को विमाता से स्नेह न मिला। घर में भयंकर गरीबी थी। फटे-हाल रहना पड़ता था। जीभ तरसती थी। घर में सौतेली माँ और पड़ौस की विधवा अहीरन में अश्लील बातें और मजाक चलता था। बालक का मन उन में रम जाता। प्रेमचन्द ने स्वयं लिखा है— 'मुझे तेरह साल की अवस्था में ही उन बातों (यौन

सम्बन्धी बाला) का ज्ञान हो गया था जो बच्चों के लिये घातक है। अतएव परिपक्वता की इस प्रतिकूल परिस्थिति ने भी प्रेमचन्द के साहित्यकार के निर्माण में परोक्ष योग दिया। प्रेमचन्द के सम्बन्ध में यही कहना पड़ता है कि उनके जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों ने साहित्य-सृजन के अनुकूल वातावरण बनाया।

धनपतराय मिडिल में पढ़ते थे उर्दू जानते थे। उन्हें बचपन से ही उर्दू के उपन्यास पढ़ने का उन्माद-सा हो गया था। गोरखपुर में एक बुकसेलर की दुकान पर बैठ कर प्रेमचन्द ने उर्दू के सब नावल पढ़ डाले। वह उसकी दुकान से अंग्रेजी पुस्तकों की कुञ्जियाँ आदि स्कूल में बेचते थे और बदले में नावल पढ़ते थे। दो-तीन वर्षों में प्रेमचन्द ने सैकड़ों नावल पढ़ डाले। उर्दू के शरर, मौलाना शरर रतननाथ 'सरशार' मिर्जा रुसवा आदि लेखकों की रचनाएँ जहाँ मिल जाती वहीं पढ़ डालते। एक तम्बाकू वाले के लड़के से दोस्ती कर ली और उसकी दुकान पर प्रेमचन्द ने 'तिलस्मे होशरुबा' के सब भाग पढ़ डाले। उन दिनों रेनाल्ड के उपन्यासों की धूम थी। उर्दू में उनके अनुवाद धड़ाधड़ निकल रहे थे। प्रेमचन्द ने अपने बचपन में ही वे सब रचनाएँ पढ़ डाली। नावलों का स्टाक खत्म हुआ तो पुराणों के उर्दू-अनुवाद पढ़ डाले। इस प्रकार किस्सा-कहानी और उपन्यास के प्रति प्रेमचन्द की रुचि बचपन से ही हो गई थी। जैसे बचपन में अलिफ लैला आदि पढ़कर अंग्रेजी उपन्यासकार डिकन्स की कल्पना जाग उठी थी वैसे ही इन कल्पना प्रधान जासूसी और तिलस्मी नावलों और किस्सों को पढ़कर बचपन में ही प्रेमचन्द की कल्पना जागृत हुई। इससे कथा-साहित्य के सृजन की प्रवृत्ति जागी।

पर यह अद्भुत आश्चर्य है कि 'चन्द्रकान्ता' 'तिलस्मे होशरुबा' रेनाल्ड के 'लन्दन रहस्य' 'फसाना-ए-अजायब' आदि तिलस्मी और जासूसी कल्पना प्रधान कथा-साहित्य का युग होने हुये भी इन रचनाओं को चाव से पढ़ने पर भी प्रेमचन्द ने यह मार्ग नहीं अपनाया। इसका एक बड़ा कारण है उनका व्यक्तिगत विषम जीवन अनुभव। इन रचनाओं के पढ़ने से एक लाभ यह हुआ कि प्रेमचन्द कथा रस की आवश्यकता को समझ गये।

१२-१३ साल की अवस्था में ही प्रेमचन्द का एक और जीवन अनुभव हुआ। उन्होंने लिखा है— 'मेरे एक नाते के मामू कभी-कभी हमारे यहाँ आया करते थे। अधेड़ हो गये थे। लेकिन अभी तक बिन-ब्याहे थे। एक चमारिन के नयन-बाणों से घायल हो गये। यह सिलसिला यहाँ तक बढ़ा कि वह चमारिन ही घर की मालकिन हो गई। एक दिन सन्ध्या समय चमारों ने आपस में पंचायत की। बड़े आदमी हैं तो हुआ करें क्या किसी की इज्जत लेंगे! इज्जत का बदला खून से ही चुकता है। लेकिन मक्खन से भी कुछ उसकी पुरौती हो सकती है। दूसरे दिन शाम

को जब चम्पा मामू साहब के घर में आई तो उन्होंने अन्दर का द्वार बन्द कर दिया। इधर चमारों का जत्था ताक में था। चढ़ाई बुलाया गया किवाड़ तोड़े गये और मामू साहब भूस की कोठरी में छिपे हुए मिले। मामू साहब पर जमाव की मार पड़ने लगी। इस दुर्घटना की खबर उड़ते उड़ते हमारे घर भी पहुँची। मैंने भी उसका खूब आनन्द उठाया।

मामू की कथा का यह प्रसंग 'गोदान' के मातादीन-सिलिया प्रसङ्ग से पर्याप्त साम्य रखता है। प्रेमचन्द ने १३ साल की ही अवस्था में अपनी पहली रचना इसी प्रसङ्ग को विषय बनाकर लिखी थी। सन् १८९३ के आस-पास की इस पहली रचना से ही प्रेमचन्द के साहित्यकार की दिशा निर्दिष्ट हो गई थी। यद्यपि यह रचना नाटक रूप में थी और आज अप्राप्य है तो भी इससे स्पष्ट अनुमान होता है कि प्रेमचन्द के कथाकार की समाजापेक्षी दृष्टि व्यङ्ग्यपूर्ण शैली और कथानक एवं घटनाओं की यथार्थात्मक प्रवृत्ति इसमें ही जन्म पा चुकी थी। इससे सिद्ध होता है कि उस घटना-चमत्कार के युग में भी प्रेमचन्द जीवन की सच्ची अनुभूति के कथाकार बने।

धनपतराय १५ साल के ही थे कि पिता ने उनकी शादी कर दी। इस शादी के एक साल बाद पिता की मृत्यु हो गई। घर का सारा भार बालक के सर आ पड़ा। प्रेमचन्द ने पिता के दूसरी शादी करने तथा बाल्यावस्था में प्रेमचन्द की शादी कर देने के बारे में लिखा है कि पिताजी ने जीवन के अन्तिम सालों में एक ठोकर खाई और स्वयं तो गिरे ही साथ में मुझे भी डुबा दिया। मेरी शादी बिना सोचे समझे कर डाली।

घर में भूनी-कौड़ी न थी। विमाता उसके दो बच्चे और पत्नी के पेट पालने का भार आ पड़ा। प्रेमचन्द के पास अपनी पढ़ाई का खर्च ही न था। अरमान था वकील बनने का एम० ए० पास करने का। पर साधन कोई नहीं। जीवन अधूरे अरमानों अपूर्ण साधों की ही कहानी बना रहा। फटे-हाल नंगे पाँव प्रेमचन्द गाँव से चार कोस बनारस पढ़ने आते थे। भोजन के नाम चना चबेना ही बाँध लाते। सुबह घर से चलते रात को थकना-चूर घर पहुँचते थे। आखिर एक वकील साहब के यहाँ ५) की ट्यूशन मिल गई। आने-जाने की परेशानी से तङ्ग आकर वहीं वकील साहब की कोठरी में रात को सोने लगे। ५ रुपये में से ३ रुपये घर भेजने पड़ते थे। २ रुपये में महीना भर तङ्गी और अभाव का जीवन बिताते।

प्रेमचन्द का प्रारम्भिक पारिवारिक जीवन एकदम असफल रहा। पत्नी मिली कुरूप! उम्र में बड़ी! प्रेमचन्द के उपन्यासों तथा कहानियों में अनमेल विवाह के चित्रण की जो प्रचुरता पाई जाती है उसका यह व्यक्तिगत कारण भी स्पष्ट है। इस बारे में प्रेमचन्द ने लिखा है— 'उमर में वह मुझसे ज्यादा थी। जब मैंने उनकी

सूरत देखी तो मेरा खून सूख गया। 'वह बदसूरत तो थी ही, उसके साथ-साथ जबान की भी मीठी न थीं।'— मेरे पिता का मालूम हुआ कि मेरी बीवी बहुत बदसूरत है। बहमाई की हरकत उन्होंने बाहर ही देख ली थी।'—मेरी यह शादी चाची (विमाता) के पिताजी ने ठीक की थी। पिताजी चाची से बोले—लालाजी ने मेरे लड़के को कुएँ में ढकेल दिया। अफसोस ! मेरा गुलाब-सा लड़का और उसकी बहू लली ! 'चाची और पत्नी में पटती नहीं थी। रोज का झगड़ा था। चाची मेरी पत्नी पर शासन करती थी। उनकी शिकायत भी चाची एकान्त में मुझ से किया करती थी। बीच में मेरी आफत थी। मगर बीच में चाची न होती तो शायद मेरी उनकी जिन्दगी एक साथ बीत जाती।

ऐसी विषम परिस्थितियों में भी प्रेमचन्द जीवन का खेल खेलते रहे। किसी तरह मैट्रिक पास की। पर महत्वाकांक्षाएँ बहुत थीं। प्रेमचन्द की महत्वाकांक्षा कठिनाइयों में पलती रही। यहाँ तो आगे बढ़ने की धुन थी—पाँव में जोड़े की नहीं अड्यातु की बेड़ियाँ थीं और मैं चढ़ना चाहता था पहाड़ पर। प्रेमचन्द की आर्थिक विपत्तियों का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उन्हें अपना कोट बेचना पड़ा पुस्तक बेचनी पड़ी थीं। एक दिन वे एक बुकसेलर की दुकान पर पुस्तक बेचने गये थे वहाँ एक स्कूल के हैडमास्टर से भेंट हो गई, जिन्होंने कृपा करके प्रेमचन्द को अपने स्कूल में अध्यापक नियुक्त कर लिया।

सन् १८९३ में मामू के किस्से को लेकर और सन् १८९४ में 'होनहार बिरवान के चिकने-चिकने पात' में नाटक लिखने से आरम्भ करके सन् १८९८ से प्रेमचन्द ने उर्दू में उपन्यास लिखना आरम्भ कर दिया था। सन् १८९८ में 'इसरारे-मुहब्बत' नाम से एक उपन्यास लिखा। इसी समय 'रूठी रानी' नामक दूसरा उपन्यास लिखा जिसका विषय इतिहास से सम्बन्ध रखता था।

सन् १९०२ में 'प्रेमा' और सन् १९०४-५ में 'हमखुर्मा व हम सवाब' नामक उपन्यास निकले जिनमें विधवा-जीवन और विधवा-समस्या का चित्रण हुआ। इन दिनों प्रेमचन्द का ध्यान विधवा-समस्या पर विशेष था। पारिवारिक कटुताओं के कारण प्रेमचन्द पत्नी से नहीं निभा पा रहे थे। सन् १९०५ में रूठ करके उनकी पत्नी मैके चली गई—सदैव सदा के लिए। तब सन् १९०५ में ही विधवा जीवन के प्रति कारुणिक भाव के कारण ही प्रेमचन्द ने शिवरानी देवी नामक एक बाल-विधवा से दूसरी शादी करली। यह विधवा-विवाह सामाजिक परम्पराओं के प्रति प्रेमचन्द की विद्रोही आत्मा की जीवन में क्रियात्मक प्रथम अभिव्यक्ति कही जा सकती है। काफी समय तक प्रेमचन्द अपनी पहली पत्नी के पास भी थोड़ा-बहुत खर्चा भेजते रहे।

शिवरानीदेवी से शादी करके प्रेमचन्द के जीवन में कुछ शान्ति के क्षण आए।

उनके लेखन में भी और सजगता आ गई। जीवन में कुछ आर्थिक निश्चिन्तता भी आई। प्रेमचन्द स्कूलों के डिप्टी इन्सपेक्टर बन गए थे। पिता-द्वारा रखे गये नवाब राय नाम से लिखा करते थे। वर्षों की घुटन का धुआँ उनमें अब अमृत-रस बन कर हृदय से निकलने लगा। सन् १९०७ में उनकी पाँच कहानियों का संग्रह 'सोजे-वतन' (वतन का दुख-दर्द) नाम से छपा। अंग्रेज शासकों को इसमें विद्रोह की बू आई। पुस्तक जब्त कर ली गई। लेखक नवाबराय की खोज-ढूँढ हुई। आखिर पता लग ही गया। प्रेमचन्द को बुलाया गया। कल्पना कीजिए किसी लेखक के सामने उसकी रचना जला दी जाय और उस पर बिना आज्ञा न लिखने का बन्धन लगा दिया जाय तो उस पर क्या गुजरती होगी।

पर लिखना तो प्रेमचन्द की खुराक बन गई थी। उसे कैसे छोड़ें? मुन्शी दयानारायण निगम को एक पत्र में प्रेमचन्द ने लिखा था – 'नवाबराय तो कुछ दिनों के लिए गुमनाम से गए। दोबारा बाज-पुरसी हुई है कि तुमने मुआहिदे (समझौते) में जो इकरारी मज़ामीन नहीं लिखे मगर इसका मंशा हर किस्म की तहरीर से था। गोया अगर मैं किसी उन्वान (विषय) पर लिखूँ मुझे पहले उस कलक्टर साहब बहादुर की खिदमत में पेश करना होगा। और मुझे छोटे-छमाहे लिखना नहीं। यह तो मेरा रोज का धन्धा ठहरा। इसलिए नवाबराय मरहूम हुए, उनके जानशीन (उत्तराधिकारी) कोई और साहब होंगे। और यह साहब हुए 'प्रेमचन्द'। मुन्शी दयानारायण निगम ने ही प्रेमचन्द नाम सुझाया था। और धनपतराय या नवाबराय हमेशा के लिए प्रेमचन्द बन गए।

यद्यपि प्रेमचन्द ने हिन्दी में स्पेशल वर्नाक्युलर की परीक्षा सन् १९०४ में पास करली थी। पर वे अभी नागरी में अच्छी तरह नहीं लिख सकते थे। श्री मन्नन द्विवेदी और महावीरप्रसाद पोद्दार के सम्पर्क से उन्होंने हिन्दी अच्छी तरह सीख ली और सन् १९११ के आसपास उर्दू के साथ-साथ उन्होंने हिन्दी में लिखना भी शुरू कर दिया। सन् १९११ के आसपास उनकी कहानियाँ हिन्दी में निकलने लगी थीं।

देश-प्रेम की उत्कट भावना प्रेमचन्द के अन्तःकरण में व्याप्त थी। देश की सामाजिक समस्याओं के साथ-साथ वे राजनैतिक समस्या के प्रति भी आरम्भ से सजग थे। अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भ-काल में ही 'सोजे-वतन' जैसी रचना करना इस बात का सबूत है। सन् १९२० में प्रेमचन्द ने इसी देशभक्ति की भावना से भर कर गांधीजी के असहयोग आन्दोलन की आवाज पर अपनी बीस साल की नौकरी से इस्तीफा दे दिया। प्रेमचन्द के जीवन में यह दूसरा क्रियात्मक विद्रोह था। विधवा विवाह रचाना पहला विद्रोह था जो समाज की परम्परागत लकीरों के प्रति था। यह दूसरा विद्रोह राजनैतिक था जो ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों के प्रति था।

नौकरी छोड़कर प्रेमचन्द ने अनेक स्थानों पर पापड़ बेले कई धन्धे किये। कानपुर के एक स्कूल में नौकरी की काशी विश्वविद्यालय में अध्यापक बने पर कहीं न पटी। सन् १९२१ में उन्होंने बनारस में ही कुछ साझेदारों के साथ सरस्वती प्रेस की स्थापना की। प्रेमचन्द अपना प्रेस स्थापित करने का सपना पूरा करना चाहते थे। पर प्रेस की उलझनों में फंसने से साहित्य की हानि ही हुई। प्रेमचन्द को अपने साहित्यकार का पर्याप्त समय प्रेस चलाने के पचड़े में देना पड़ता था। प्रेमचन्दजी ने 'मर्यादा' 'माधुरी' आदि पत्रिकाओं का सम्पादन भी कुछ समय तक किया।

प्रेमचन्द स्वाभिमानी प्रकृति के व्यक्ति थे। पैसे के लोभ पर वे कहीं टिक नहीं सकते थे। यही कारण है कि नौकरी करने के सिलसिले में उनकी कहीं नहीं निभी। सन् १९२४ में अलवर राज्य ने उन्हें अपने यहाँ बुलाया था और ४०० रुपए मासिक वेतन बंगला और कार अलग देने का प्रलोभन दिया था। पर प्रेमचन्द ने वह ऑफर स्वीकार न की। वे स्वतन्त्र चेता व्यक्ति थे। 'रंगभूमि' में देवकुमार के सम्बन्ध कहे गए उनके ये शब्द आत्मकथन-से प्रतीत होते हैं— 'साहित्यरसिकों में जो अकड़ होती है चाहे उसे दोषी ही क्यों न कह लो वह उनमें भी थी। कितने रईस और राजा इच्छुक थे कि वह उनके दरबार में जायें अपनी रचनाएँ सुना उनको भेंट करें। किन्तु उन्होंने आत्मसम्मान को कभी हाथ से नहीं जाने दिया किसी ने बुलाया भी तो धन्यवाद देकर टाल दिया।

सन् १९३४ में बम्बई के अजन्ता मूवीटोन से आठ-सौ हजार रुपए साल आमन्त्रण मिला। अपना उद्देश्य पूरा करने के इरादे से—गाँव-गाँव में अपने र ग्यालों और कहानियों के प्रचार का मंसूबा बाँध कर प्रेमचन्द चले गये। 'हंस' अ 'जागरण' को चलाने के लिए अधिक पैसे की व्यवस्था कर सकना था लाभ भी परन्तु फिल्मी दुनिया की वास्तविकता से प्रेमचन्द जल्दी परिचित हो गए। नौ सदन उपन्यास की बाजारे-हुस्न नाम से फिल्म बनी। उनकी 'मिलमजदूर' कह 'मजदूर' नामक चित्र में रूपान्तरित हुई। परन्तु प्रेमचन्द वहाँ सन्तुष्ट न रहे। फि डायरेक्टरों की मनमानी उन्हें पसन्द न आई। अतः शीघ्र ही फिल्मी दुनिया छोड़ आए।

सन् १९३५ तक गोदान की रचना हो चुकी थी।

सन् १९३६ में प्रेमचन्द बीमार रहने लगे। पर लिखना न छोड़ा। 'मंगलसूत्र' नामक अन्तिम उपन्यास लिखना आरम्भ किया। मृत्यु से दो-तीन महीने पहले 'महाजनी सभ्यता' नाम से एक लेख भी लिखा था जिसमें उन्होंने महाजनी और पूँजीवादी युग प्रवृत्ति की निन्दा की थी। सन् १९३६ में 'गोदान' का प्रकाशन हुआ

'मङ्गल सूत्र' अधूरा ही छोड़ गए कमल ७०—७१ पृष्ठ पूरे कर पाय थ। यदि 'मङ्गल सूत्र' पूरा हो जाता तो शायद इसमे कम-महत्त्व अधिक उभरकर प्रकट होता। १८ जून सन् १९३६ को प्रेमचन्द ने अपनी रुग्ण अवस्था म ही गोर्की की मृत्यु पर श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित कीं। इसी समय उन्होंने प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना में भी योग दिया। आर्थिक कष्टों तथा इलाज ठीक न करा सकने के कारण ८ अक्तूबर सन् १९३६ को रोग भयंकर हो गया पर ही वह दीप बुझ गया जिसने अपनी जीवन की बत्ती को कण-कण जला कर हमारा पथ आलोकित किया।

व्यक्तित्व जीवन में अनेक विषमताओं और कटुताओं को सहते हुए प्रेमचन्द जीवन को खेल की बाजी मानते रहे थ। वे एक कर्मठ भाग्यवादी बन गए थे। मुन्शी दयानारायण निगम को उन्होंने एक पत्र में लिखा था—"हमारा काम तो केवल खेलना है— खूब दिल लगाकर खेलना। खूब जी तोड़ कर खेलना अपने को हार से इस प्रकार बचाना मानो हम दोनों लोकों की सम्पत्ति खो बैठेंगे। किन्तु हारने के पश्चात्—पटखनी खाने के बाद धूल झाड़कर खड़े हो जाना चाहिए और फिर ताल ठोंककर विरोधी से कहना चाहिए कि एक बार फिर!' उनके 'रङ्गभूमि' का सूरदास और 'गोदान' का होरी इन्हीं विचारों से पोषित है—इसी मिट्टी से बने हैं जो हारकर भी हार नहीं मानते। सूरदास तो स्पष्ट कहता है— 'तुम जीते हम हारे। पर फिर खेलेंगे।

यही कारण है कि प्रेमचन्द गरीबी में भी फक्कड़ फटे-हाल भी मस्त रहने वाले जीव थे। सरलता सौजन्यता और उदारता की वे मूर्ति थे। सादा पहनावा था सरल जीवन। स्वभाव के संकोची एवं लज्जाशील थे। स्वाभिमान कूट-कूट कर भरा था। हँसोड़ प्रकृति की। विषमताओं में भी ठहाके लगाना उनकी अपूर्व जीवनी शक्ति का द्योतक था। मित्रों के लिए उनका हृदय उदार था गरीबों और पीड़ितों के लिए सहानुभूति का वह अथाह सागर था। किसानों-मजदूरों के प्रति उनकी सहानुभूति इस प्रसंग से सिद्ध होती है। उनकी पत्नी शिवरानी देवी ने लिखा है कि जाड़े के दिनों में चालीस-चालीस रुपये दो बार प्रेमचन्द को दिए गए कि अपने लिए कपड़े सिला लें। पर दोनों ही बार उन्होंने रुपये प्रेस के मजदूरों को दे दिए। पत्नी नाराज हुई तो बोले— 'रानी जो दिनभर तुम्हारे प्रेस में मेहनत करें वह भूखों मरें और मैं गरम सूट पहनूँ—यह तो शोभा नहीं देता।

प्रेमचन्द ने साहित्य-सृजन के लिए जिस 'तजरबा व तड़पन' की बात की है, वह उनमें पूर्णतया थी। उनका जीवनानुभव ही एक तड़पन था। बनारस ग्राम-जीवन से उन्हें अनुराग था। अपने जीवन का बहुत समय उन्होंने गाँव में ही बिताया था। गाँव के जीवन की पूरी जानकारी उन्हें थी। वे स्वयं बहुत साधारण गवई निवास

में रहते थ। देखने में उनमे कोई विशेषता नजर नहीं आती थी। बाह्य में विशेष आकर्षण नहीं था। पर जो जरा भी निकट आया थोड़ा भी अन्तर में झाँका प्रभा वित हुए बिना न रहा। प्रेमचन्द उच्चकोटि के मानव थे। आडम्बर और दिखावे से वे कोसों दूर थे। ऐश्वर्य विलास न उन्हें मिला और न ही उन्हें इसकी चाह थी। कुछ दिनों नौकर रखा पर नौकर को भी कभी नौकर नहीं समझते थ। अपना काम खुद करना चाहिए—यह उनका जीवन सिद्धान्त था।

प्रेमचन्द साहित्य की सामाजिक उपयोगिता में विश्वास रखते थे। जीवन से विच्छिन्न और जीवन-निर्माण से दूर साहित्य की कल्पना उन्हें रुचिकर न थी। इसी से तिलस्मी और घटना-प्रधान कथा-साहित्य की दिलचस्पी से पढ़कर भी वे उसके सृजन म नहीं लगे। वे साहित्य की समाज-सापेक्षता और सामाजिक प्रगतिशीलता पर जोर देते थे।

साहित्य में वे नग्न यथार्थवाद और कोरे आदर्शवाद दोनों की कृतियों की अपेक्षा आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के हामी थे। उनका कहना है— 'यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं हमारी विषमताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है और इस तरह यथार्थवाद हमको निराशावादी बना देता है मानव-चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है हमको अपने चारों तरफ बुराई ही बुराई नजर आने लगती है। उच्चकोटि का साहित्य व उसे मानते थे जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया हो। उसे आप आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कह सकते हैं। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों को आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहा है। उनके अनुसार 'नग्न यथार्थ पुलिस का रिपोर्ट भर हो जाता है नग्न आदर्श प्रोपेगण्डा का पचड़ा। वे साहित्य म पौरुषत्व चाहते थ।

वे साहित्य को जीवन-हेतु मोह रूप मानते थे। 'ज्योत्स्नाभ' के शब्दों मानो उन्होंने अपने ही विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं— आजकल के नए प्रयोगो चरित्रों के बन्धन मे अपनी शक्ति नष्ट करते हैं। उन्होंने स्वय अपने को जीव से पृथक कर लिया है। उनको छोड़ो और वहाँ जाओ जहाँ स्त्री और पुरुष रह हैं। रोज का जीवन रोज मिलन कार्यों को दिखाओ। वह जीवन गहर समुद्र से गहरा और प्रशस्त है। उसमे जो सबसे तुच्छ है उसकी आत्मा भी अनन्त है।। अनन्त प्रत्येक मनुष्य में है जो अपने को सीधा-सादा मनुष्य समझता है। प्रेमी मिलन में उस नारी में जो शिशु जन्म के उपरान्त गौरव का मूल्य प्रसव-वेदना चुकाती है—हरेक स्त्री और हरेक पुरुष में जो अज्ञात कमियाओं म अपना जी स्पर्श करता है। यही जीवन की धारा है जो प्राणों में प्रवाहित होती है घूमती चक्कर लगाती है।"

जीवन की विषमताओं में भी प्रेमचन्द जीवन के प्रति प्रगाढ़ आस्था रखते थे। पर ईश्वर के बारे में उनका मन कभी पूर्ण आस्थावादी नहीं बन सका। शायद जीवन की विषमताओं ने ही उन्हें किसी परोक्ष शक्ति के प्रति अनास्थावादी-सा बना दिया था। विश्व के पीछे कोई हाथ' मानते हुए भी वे अन्त तक आते आते तो अनीश्वरवादी-से बन गये थे। सन् १९३५ में जैनेन्द्रजी को उन्होंने लिखा था— 'तुम आस्तिकता की ओर बढ़े जा रहे हो जा नहीं रह पक्के भगत बन रहे हो। मैं सन्देह से पक्का नास्तिक होता जा रहा हूँ। मृत्यु से कुछ घण्टे पहले भी उन्होंने जैनेन्द्रजी को कहा था— 'जैनेन्द्र लोग ऐसे समय याद करते हैं ईश्वर, मुझे भी याद दिलाई जाती है। पर मुझे अभी तक ईश्वर को कष्ट देने की जरूरत नहीं मालूम हुई है। उनका विश्वास होगया था कि जीवन में किसी परोक्ष सत्ता (ईश्वर) की आवश्यकता नहीं। 'गोदान' में मेहता के विचार भी उनकी ईश्वर-सम्बन्धी ऐसी ही धारणा के परिचायक हैं।

ऊपर के संक्षिप्त अध्ययन से स्पष्ट हुआ होगा कि प्रेमचन्द का व्यक्तिगत जीवन और जीवनानुभूतियाँ उनके लिये प्रेरणा-पुंज थीं। उनका जीवन अभाव और गरीबी का जीवन था। उनके कथा-साहित्य की संस्मरणात्मक प्रवृत्ति उनके व्यापक जीवना नुभवों के ही कारण है। वे जीवन में जो कुछ देखते गये जो अनुभव करते गये तथा जो विचारते और चिन्तन करते रहे वही उनके उपन्यासों तथा कहानियों में उतरता गया।

२ युग की परिस्थितियाँ और प्रभाव

व्यक्तिगत जीवन के अतिरिक्त अपने युग की परिस्थितियों से भी साहित्यकार प्रेरित एवं प्रभावित होता है। उसका भाव-बोध युगीन परिस्थितियों से ही विकसित होता है। प्रेमचन्द के निर्माण में उनके युग का अत्यधिक योग है।

अंग्रेजी शासन अपनी समस्त कूटनीतियों से सशक्त हो हढ़ हो चुका था। भारतीय परतन्त्रता की चक्की में पिस रहे थे। भारतीय जीवन पर दोहरा आघात हो रहा था। एक ओर तो अपनी ही मूढ़ता चारित्रिक दुर्बलता अशिक्षा तथा गली सड़ी सामाजिक परम्पराओं और बुराइयों में फँसी भारतीय जनता दीन-हीन अवस्था को प्राप्त हो गई थी दूसरी ओर ब्रिटिश राज्य तथा अन्य शोषक शक्तियाँ मगरमच्छ की तरह निगल रही थीं। हमारे समाज-सुधारकों तथा राजनैतिक नेताओं को भी इसीलिए दो मोर्चों पर संघर्ष करना पड़ रहा था। एक था सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध और दूसरा विदेशी शासन के विरुद्ध था। राजा राममोहनराय केशवचन्द्र सेन स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द स्वामी रामतीर्थ ऐनी बसेंट आदि ने 'ब्राह्मो समाज' 'आर्य समाज रामकृष्ण मिशन तथा थियोसोफिकल सोसाइटी आदि

संस्थाओं की स्थापना करके समाज-सुधार के आन्दोलन समूचे भारत में चला दिये थे। राजनीति के क्षेत्र में भी सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, तिलक, गोखले और गांधीजी के सत्प्रयत्नों से ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध व्यवस्थित मोर्चा तैयार हो गया था। देश के राजनीतिक संघर्ष की बागडोर गांधीजी के हाथों आने पर सत्याग्रह, असहयोग आन्दोलन, नमक आन्दोलन, स्वदेशी आन्दोलन आदि कितने ही संघर्ष समय-समय पर चले। प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में गांधीयुग का साथ पूरी ईमानदारी से दिया है।

देश की ९० प्रतिशत जनता गाँव में रहती थी। और हमारा ग्राम-समाज अत्यन्त शोचनीय दशा को प्राप्त हो गया था। गाँवों में परम्परागत सामाजिक व्यवस्थाएँ—वर्ण-व्यवस्था, कठोर सामाजिक नियम, धार्मिक अंधविश्वास और रूढ़ियाँ, पंचायती बन्धन आदि थे। व्यक्ति इन सामाजिक संस्थाओं में बँधा हुआ था। व्यक्ति को इनके कड़े नियमों और शासन में घुटना पड़ता था।

अँग्रेजों ने देश की आर्थिक स्थिति अत्यन्त खोखली कर दी थी। अँग्रेजी शासन की भूमि-व्यवस्था के कारण भूमि पर व्यक्ति का स्वाधिकार हुआ। भूमि को बेचने, बंधक करने आदि के नियम लागू हुए, जिनसे पिसा किसान विवशता के कारण बेदखली, नीलाम, विक्रय आदि की ठोकरें खाता हुआ भूमिहीन बनता जा रहा था।

पूँजीवादी अँग्रेजों ने भारत के प्राचीन उद्योग-धन्धों को नष्ट कर दिया था। गाँवों में कुटीर उद्योगों के अभाव में जमीन पर अत्यधिक भार बढ़ता जा रहा था। भूमि छोटे छोटे टुकड़ों में बँटने लगी थी। सम्मिलित परिवार प्रथा छिन्न भिन्न हो रही थी। जनसंख्या के कारण किसान की रही-सही भूमि खण्ड-खण्ड होकर महत्त्वहीन हो रही थी। ग्राम जीवन का आर्थिक और सांस्कृतिक स्तर बहुत निम्न हो गया था। कृषि परम्परागत पुराने तरीकों से ही होती थी। किसान बेचारा अनावृष्टि आदि प्राकृतिक प्रकोपों का भी शिकार रहता था। उपज कुछ होती न थी, उधर लगान-वसूली के नियम कड़े थे। पहले तो फसल का कुछ अंश ही लगान के रूप में लिया जाता था पर अब अँग्रेजी पद्धति में लगान नकदी के रूप में अनिवार्य हो गया। फसल चाहे हो या न हो, *लगान अवश्य सिर पड़ता था। लगान की वसूली निर्दयता से होती* थी और उसमें धाँधली होती थी सो अलग। जमींदार के कारिन्दे भी मनमानी करते थे।

कृषि की उन्नति बिल्कुल रुकी हुई थी। न तो सरकार और न जमींदार कोई भी कृषि के नए वैज्ञानिक ढंग को प्रोत्साहन नहीं दे रहा था। पुरानी सामन्तवादी पद्धति टूट रही थी। पूँजीवाद का विकास हो रहा था। ब्रिटिश पुलिस-पद्धति

और नौकरशाही का बोलबाला था। जमींदारों की हालत भी बिगड़ती जा रही थी। उनके अधीन किसान का तो बुरा हाल था ही। हमारे गाँव में अशिक्षा और गरीबी का अँधेरा पर्दा छाया हुआ था। भूमि-हीन किसानों की तो अत्यन्त दरिद्र अवस्था थी। थोड़ी भूमि वाले किसान भी जमींदार, उनके कारिन्दे पटवारी साहूकार आदि के पंजे में फँसे हुए थे। पुश्त-दर-पुश्त ऋण के भार से किसान की कमर टूटती जा रही थी।

गाँवों में महाजनी पूँजीवाद प्रचलित था। यह महाजनी शोषण कई प्रकार का था। गाँव का छोटा महाजन किसान को भारी सूद पर रुपया देता। सूद बढ़ता ही जाता था। शहर के बड़े महाजन का एजेण्ट भी गाँवों में दखल रखता था। यही नहीं गाँव में जिस किसी के पास चार पैसे हुए, वही महाजन बनने लगा था। सूद का खून मुँह लग गया था।

पूँजीवादी सभ्यता के विकास से बड़े बड़े मिल कल-कारखाने बैंक आदि कम्पनियाँ स्थापित हो रही थीं। पूँजीवादी अर्थ भी किसान के लिए अहितकर ही सिद्ध हो रहे थे। बड़े-बड़े उद्योगों और मण्डियों में किसान की उपज सस्ते दामों ही प्राप्त की जाती थी और पूँजीपति अपने उद्योगों तथा व्यापार में बहुत नफा बना रहे थे। ऋण-भार के कारण बेचारे किसान की फसल प्रायः खलिहानों में ही उठ जाती थी। सारा साल उसे पेट-भर खाने को भोजन भी नसीब नहीं होता था। उसे फिर जमींदार या साहूकार की शरण में ही जाना पड़ता था।

सामाजिक और राजनैतिक चेतना का गाँवों में अभाव ही था। फिर भी किसान का बेटा कुछ समझने-बूझने लगा था। वह युग की नई आवाज को सुनने लगा था। उसके मन में विरोध की प्रबलता बढ़ने लगी थी। विषमता के ज्ञान और उसकी घुटन से वह तिलमिलाने लगा था। पुरानी पीढ़ी का किसान तो भाग्यवादी और अन्धविश्वासी हो था पर युवक में संघर्ष की आकांक्षाएँ उभरने लगी थीं। होरी और गोबर की ये दो सीमाएं स्पष्ट थीं।

साम्राज्यवाद की छत्रछाया में पूँजीवाद विकसित हुआ। पुराने सामन्तों का ह्रास हुआ। उनके विशेष अधिकार समाप्त हो गए। वे भी अब ब्रिटिश राज्य के अधीन थे। अन्दर से वे खोखले होते जा रहे थे पर बाहर से अपनी वही शान रखना चाहते थे। किन्तु दम टूट रहा था। ऐसे ह्रासोन्मुख सामन्तवाद का खोखलापन प्रेमचन्द ने 'गोदान' में बहुत अच्छी तरह दिखाया है। रायसाहब इसका उदाहरण है।

पूँजीवाद के विकास और उद्योगपतियों के नगरों में एकत्रित होने तथा ब्रिटिश नौकरशाही ने मध्यवर्ग उत्पन्न किया। इसमें साधारण व्यवसायी दूकानदार, वेतनभोगी कर्मचारी अन्य छोटे-छोटे उत्पादक आदि हैं। नगरों में इस वर्ग का जीवन

भौतिक-बौद्धिक स्वार्थी बन गया। बड़े-बड़े मिलों में मजदूर खपने लगे। बेदखल हुआ या ऋण से ग्रस्त भूमिहीन किसान गाँव छोड़कर नगर में मजदूरी करने में आराम महसूस करने लगा था। नगरों में मध्यवर्ग के अतिरिक्त मिल-मालिक या पूँजीपति और मजदूर ये दो विषम वर्ग और उत्पन्न हो गए। धर्म-पुरुष अपना वेश बदलने लगा। टूटा हुआ जमींदार या तो सरकारी पिट्ठू बन गया था या भेस बदलकर वह ढोल का पोल बना किसानों का खैरख्वाह और देशभक्त बनने का दम्भ रखने लगा था।

'इस धर्म संस्कृति का विकास हुआ। प्रेमचन्द ने इसे 'महाजनी सभ्यता' कहा है। 'धन के लोभ ने मानव भावों को पूर्ण रूप से अपने अधीन कर लिया है। कुलीनता और शराफत गुण और कमाल की कसौटी पैसा और केवल पैसा है।—इस पैसे ने आदमी के दिमाग पर इतना कब्जा जमा लिया है कि उसके राज्य पर किसी ओर से आक्रमण करना कठिन दिखाई देता है।—इस सभ्यता का दूसरा सिद्धान्त है 'बिजनेस इज बिजनेस'—व्यवसाय व्यवसाय है उसमें भावुकता के लिये गुन्जाइश नहीं।'[1] प्रेमचन्द ने लिखा है कि 'समाज में आ गए सभी बुरे विचार भाव और कुकर्म दौलत की देन हैं पैसे के प्रसाद हैं। महाजनी सभ्यता ने इनकी सृष्टि की है। वही इनको पालती है और वही यह भी चाहती है कि जो दलित पीड़ित और विजित हैं वे इसे ईश्वरीय विधान समझकर अपनी स्थिति पर संतुष्ट रहें। उनकी ओर से तनिक भी विरोध विद्रोह का भाव दिखाया गया तो सिर कुचलने के लिए पुलिस है अदालत है काला पानी है। आप शराब पीकर उसके नशे से नहीं बच सकते। आप सभार चाहें कि नशे न उठें असम्भव है। पैसा अपने साथ वह सारी बुराइयाँ लाता है जिन्होंने दुनिया को नरक बना दिया है। इस पैसे को मिटा दीजिये सारी बुराइयाँ अपने-आप मिट जायेंगी।"[2]

प्रेमचन्द के समय में गांधीवाद देश की राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में लगा था। प्रेमचन्द ने गांधीवादी विचारधारा को पूरी तरह अपनाया। देश के राजनैतिक नैतिक एवं सांस्कृतिक उत्थान के लिए तो प्रेमचन्द गांधीवाद को पूर्ण सक्षम सिद्धान्त मानते थे। किन्तु देश की आर्थिक समस्या का हल उन्हें गांधीवाद की अपेक्षा साम्यवाद में अधिक आशाजनक दिखाई दिया। इसी से उन्होंने साम्यवाद का पूरे उत्साह से स्वागत किया है।

प्रेमचन्द समझते थे कि इस युग की महाजनी सभ्यता को समाप्त करने वाली विचारधारा साम्यवाद है। 'इस सभ्यता को समाप्त करने वाली सभ्यता भी उत्पन्न

१ समान मानिवर—पृष्ठ ८

२ वही—पृष्ठ ८

हो चुकी है। वह है—साम्यवादी मार्क्सवादी सभ्यता जिसका उदय सुदूर पश्चिम में हो चुका है और जो यहाँ भी बढ़ी आ रही है। जिसमें श्रम का महत्व होगा। इसने महाजनवाद या पूंजीवाद की जड़ खोद कर रख दी है। जो दूसरों की मेहनत या बाप-दादा के जोड़े हुए धन पर रईस बना फिरता है वह पतिततम प्राणी है।[१]

रूस की ओर से आ रही इस नई साम्यवादी सभ्यता के बारे में अपनी पत्नी से बात चीत के सिलसिले में प्रेमचन्द ने कहा था—

वह बोले—वह लोग (रूस वाले) यहाँ नहीं आएंगे। हमीं लोगों में वह शक्ति आयगी। वही हमारे सुख का दिन होगा जब यहाँ काश्तकारों और मजदूरों का राज होगा।[१]

इस प्रकार अपने युग की गांधीवादी विचारधारा का प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में पूरा साथ दिया और साथ ही अन्त तक आते-आते वह साम्यवादी विचार पद्धति से भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। प्रेमचन्द ने अपने युग की परिस्थितियों का सही अध्ययन मनन और चिन्तन करके अपनी एक प्रगतिशील विचारधारा बनाई। वह जीवन की सब दिशाओं—सामाजिक धार्मिक राजनैतिक आर्थिक आदि—की झाँकी सजाते थे। समाज में प्रचलित वर्ण-व्यवस्था छुआछूत का अत्याचार, वैधव्य की चीत्कार, वेश्या का वीभत्स विलास बाल-विवाह बेमेल विवाह आदि हमारी वैवाहिक पद्धति के दोष दहेज की कुप्रथा धार्मिक संकुचितता साम्प्रदायिकता धर्म का ढकोसला और पाखण्ड अंधविश्वास तथा अन्य बुराइयों और कुप्रथाओं के प्रति असंतोष और विद्रोह की भावना प्रेमचन्द की रचनाओं में स्थान-स्थान पर पाई जाती है। एक सच्चे युग-द्रष्टा साहित्यकार के नाते प्रेमचन्द ने अपने युग का मन्थन-विलोड़न करके ही उच्च सांस्कृतिक निर्माण के तत्व निकाले।

३ साहित्यिक पृष्ठभूमि

उर्दू-उपन्यास प्रेमचन्द ने साहित्य-साधना उर्दू से आरम्भ की। उन्होंने अपने किशोर-काल से ही उर्दू में प्राप्य सभी नावल और किस्से-कहानियाँ पढ़ डाली थीं। उस समय उर्दू उपन्यास भी अपने विकास की प्रारम्भिक मञ्जिल में खेल रहा था। उर्दू में पहल-पहल फारसी से अनूदित 'दास्ताने-मीर हमजा' 'तिलस्मे होशरुबा' 'बोस्ताने-ख्याल' जैसी काल्पनिक घटना-प्रधान रोमांटिक कथाएं प्रचलित हुई। कुछ मौलिकता लिये हुये सरूर की 'फसाना-ए अजायब' भी 'तिलस्मे होशरुबा' के ढङ्ग पर ही लिखी गई थी। इसके अतिरिक्त सर आर्थर कानन डायल रेनाल्ड आदि अंग्रेजी के उपन्यासकारों की रचनाएं भी उर्दू में अनूदित हो चुकी थीं। प्रेमचन्द ने इन सब उपन्यासों तथा किस्सों को बड़े चाव से पढ़ा था।

१ प्रेमचन्द घर में—२४

नजीर अहमद ने उर्दू के उपर्युक्त काल्पनिक कथा-साहित्य के स्थान पर जीवनोपदेश-उद्देश्य-प्रधान उपन्यास लिखने आरम्भ किये । उपन्यास को जीवन से सम्बद्ध करने का यह प्रथम प्रयास था । किन्तु नजीरअहमद के उपन्यास हिन्दी के भारतेन्दुकालीन उपदेश प्रधान उपन्यासों की तरह कोरे उपदेशात्मक बन कर रह गये ।

प्रेमचन्द के सामने नजीरअहमद से भी अच्छे उपन्यास रतननाथ सरशार के उपन्यास आये । सरशार के 'फसाना-ए-आजाद' की उर्दू में धूम मच गई । प्रेमचन्द ने 'आजाद-कथा' के नाम से बाद में सरशार की इस रचना का हिन्दी में अनुवाद भी किया । सरशार की रचनाएँ प्रेमचन्द का कण्ठहार थी । सरशार ने अपने उपन्यासों में सामाजिक जीवन का सच्चा ब्यौरा रोचक शैली में प्रस्तुत किया । उर्दू उपन्यास साहित्य में यद्यपि नजीरअहमद ने घटना चमत्कार से निकाल कर उपन्यास को जीवन के बीच लाने का प्रयास किया था पर उन्होंने उपदेशात्मकता या नैतिकता का दूसरा बोझा उस पर लाद दिया था । रतननाथ सरशार ने घटना-वैचित्र्य और उपदेशात्मकता दोनों के भार से उर्दू उपन्यास को मुक्त किया । उनकी व्यंग्यपूर्ण रोचक शैली से प्रेमचन्द बहुत प्रभावित हुए । मौलवी अब्दुलहलीम शरर के ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा भी प्रेमचन्द के सामने आई । मिर्जा रुसवा का 'उमराव जान अदा' नामक उपन्यास बहुत प्रसिद्ध हुआ जिसमें लखनऊ की एक नर्तकी का आत्मकथात्मक वास्तविक जीवन चित्र है । प्रेमचन्द को सेवासदन के निर्माण में इस रचना से भी प्रेरणा मिली हो तो कोई आश्चर्य नहीं ।

अपने से पूर्व के इन सब उर्दू उपन्यासकारों की रचनाएँ प्रेमचन्द ने पढ़ी थी और यह बहुत अच्छा हुआ कि उन्होंने खत्री आदि के घटना-वैचित्र्य का मार्ग न अपना कर सरशार और रुसवा की तरह सामाजिक पथ ग्रहण किया । केवल घटनाओं के चमत्कार से उपन्यास रोचक हो सकता है यह बात 'तिलस्मे होशरुबा' तथा अन्य घटना-प्रधान रचनाओं से प्रेमचन्द जान चुके थे और केवल अपूर्व वर्णनशैली से उपन्यास रोचक और लोकप्रिय हो सकता है यह सरशार के उपन्यासों से विदित हुआ । जीवन की अनुभूतियाँ उनके मानस में लहरें ले रही थीं अतः उन्होंने सरशार की-सी रोचक शैली में जीवन का चित्रण करना ही श्रेयस्कर समझा ।

प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी उपन्यास की गति-विधि

यद्यपि संस्कृत की हमारी प्राचीन साहित्य-परम्परा में दशकुमार चरित 'कादम्बरी' आदि कुछ गद्य-कथा-प्रबन्ध मिलते हैं किन्तु आधुनिक काल में विकसित होने वाली उपन्यास नाम की कथात्मक गद्य-साहित्य विधा सुबन्धु दण्डी और बाण की गद्य-काव्य-परम्परा से सर्वथा भिन्न रूप में पश्चिम की देन है । आधुनिक उपन्यास से पूर्व कथा आख्यायिका कहानी आदि नामों से छोटी-बड़ी कथात्मक रचनाएँ

ी थीं। हिन्दी में भारतेन्दुकाल से ही उपन्यास का जन्म हुआ। इससे पूर्व 'रानी की की कहानी' 'राजा भोज का सपना' आदि रचनाएँ पुराने ढङ्ग की कथाएँ थी। हिन्दी म उपन्यास के जन्म से पूर्व संस्कृत से अनूदित पौराणिक और धार्मिक ाएँ तथा उर्दू-फारसी के परम्परागत किस्से—किस्सा चारदर्वेश किस्सा हातिम ई, किस्सा साढ़े तीन यार आदि—ही प्रचलित थे। बङ्किम आदि के मौलिक बंगला न्यासों की देखा-देखी एक ओर १९वीं शती के अन्तिम दो चरणों में श्रीनिवासदास परीक्षा गुरु' सन् १८८०) राधाकृष्णदास ('निस्सहाय हिन्दू' सन् १८८९) राधा रण गोस्वामी आदि लेखकों ने नवीन सामाजिक विषयों से सम्बन्धित उपदेश-प्रधान पन्यासों की रचना की दूसरी ओर तिलस्मेहोशरुबा ठग वृत्तान्त माला पुलिस तान्त माला आदि फारसी-उर्दू के किस्सों के प्रभाव से तथा एडगर बेलेस और नाल्ड्स जैसे अंग्रेजी नॉवलिस्टों के औपन्यासिक ढङ्ग पर देवकीनन्दन खत्री किशोरी ाल गोस्वामी गुपालराम गहमरी आदि उपन्यासकारों ने तिलस्मी-जासूसी और प्रेम म्बन्धी उपन्यासों की परम्परा चलाई। प्रेमचन्द के आगमन से पूर्व सन् १८८० से न् १९१५ तक के ३५ वर्षों मे हिन्दी उपन्यासों की निम्न धाराएँ प्रचलित थीं किन्तु न सब में औपन्यासिक कला अपने शैशव काल में ही रही।

१ उपदेश-प्रधान उपन्यास—श्रीनिवासदास बालकृष्ण भट्ट राधाकृष्णदास आदि भारतेन्दु काल के लेखकों के उपदेश-प्रधान उपन्यासों में औपन्यासिक तत्त्व विधान बहुत हल्का है। न तो कथानक के निर्माण में कौशल दिखाई देता है न चरित्र-चित्रण का ही प्रयास है। कथा-तत्त्व में उत्सुकता रोचकता और सम्बद्धता का भी प्राय अभाव रहा। यद्यपि हमारे इन लेखकों की दृष्टि जीवन पर केन्द्रित रही परन्तु जीवन के नाना पहलुओं और विभिन्न यथार्थ समाज चित्रों को वे प्रकट नहीं कर सके। इनमें केवल समाज की नैतिक पारिवारिक आधार विचार-सम्बन्धी शिक्षा देना ही उप न्यासकारों का उद्देश्य था। जीवन की समस्या का केवल सतही तौर पर निर्देशन रहता था। सामाजिक समस्याओं में गहरे पठने की इन लेखकों में दृष्टि नहीं थी। उपदेश और नैतिकता के बोझ से कला दबी ही पड़ी रही। सवाद-कला का भी अभाव रहा। सवाद होते ही कम थे और जो होते थे उनमें प्राय कृत्रिमता का दोष रहता था। बहुधा पात्रों के स्थान पर लेखक ही बोलता दिखाई देता था। नीति धर्म पाप-पुण्य और सदाचार-सम्बन्धी दृष्टि भी इन लेखकों की परम्परागत ही रही।

२ घटना-प्रधान तिलस्म-ऐयारी के उपन्यास प्रेमचन्द से पूर्व खूब लिख जा रहे थे। श्री देवकीनन्दन खत्री इस धारा के अग्रणी लेखक हैं। मीर हमजा के तिलस्मी दास्तानों जैसी फारसी-उर्दू की रचनाओं का हमारे लेखकों पर बड़ा प्रभाव

पड़ा। खत्रीजी की 'चन्द्रकान्ता' (रचनाकाल १८९१ ई०), 'चन्द्रकान्ता सन्तति' (१८९६ ई०) और 'भूतनाथ' (१९०८ ई०) आदि रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध हुईं। श्री रामलाल वर्मा का 'पुतलीमहल' भी इस परम्परा का प्रसिद्ध उपन्यास है। इन उपन्यासों में तिलस्म के बटुए पाये जाते थे। घटना-वैचित्र्य ही इनकी विशेषता है। अति प्राकृत और अविश्वसनीय घटनाओं और प्रसंगों की इनमें भरमार है। जीवन की वास्तविकता से इन उपन्यासों का विशेष सम्बन्ध नहीं, कल्पना की उड़ान ही पाई जाती है। न चरित्र चित्रण का प्रयास है, न कथोपकथन की स्वाभाविकता। कथानक में संगठन, कौतूहल और रोचकता का गुण तो पाया, पर अयथार्थ और अस्वाभाविकता का अंश इन्हें आज के बुद्धिवादी पाठक के योग्य नहीं रहने देता। साहित्य की प्राणधारा जीवन से विच्छिन्न होकर कभी जीवित नहीं रह सकती। अतः इन उपन्यासों का साहित्यिक महत्त्व विशेष नहीं, हाँ ऐतिहासिक महत्त्व अवश्य मानना चाहिए। इतने पर भी यह अवश्य कहना पड़ता है कि असली ढङ्ग पर उपन्यास का रूप इन रचनाओं में ही सर्वप्रथम दिखाई दिया। उत्सुकता वर्द्धक कथा-नियोजना, रोचक शैली, आरम्भ से अन्त तक कथा का क्रमिक विकास — ये इनकी विशेषताएँ हैं। भाषा भी इन लेखकों की अपेक्षाकृत प्राणवान् और अभिव्यञ्जनापूर्ण है। उर्दू की चुस्ती और मुहावरा-बन्दी तथा हास्य-व्यंग्य की प्रवृत्ति भी इनमें पर्याप्त पाई जाती है।

३ टेकनिक की दृष्टि से उपर्युक्त तिलस्मी धारा से मिलती-जुलती जासूसी उपन्यासों की परम्परा भी अंग्रेजी के सर आर्थर कानन डायल जैसे उपन्यासकारों के प्रभाव से चली। गोपाल राम गहमरी इस धारा के प्रमुख लेखक हैं। उनके 'अद्भुत लाश', 'गुप्त डाकू', 'गुप्त भेद' आदि तथा मथुराप्रसाद शर्मा का 'आनन्द महल' आदि उपन्यास प्रसिद्ध हुए। इनमें भी कलात्मकता की दृष्टि से वे ही विशेषताएँ या दुर्बलताएँ हैं जो उपर्युक्त तिलस्मी उपन्यासों में हैं। हाँ, इनमें हमें जीवन की कुछ यथार्थता के भी दर्शन हो जाते हैं। फिर भी पश्चिम के जासूसी उपन्यासकारों की-सी सूक्ष्मता, विस्मयोत्पादिनी शक्ति तथा बुद्धि-चातुर्य इनमें नहीं आ पाया।

४ प्रेमचन्द से पूर्व प्राचीन सम्पूर्ण-कथा-प्रणाली को नवीन ढंग से ढालने वाले कुछ लेखकों ने कुछ पौराणिक और धार्मिक उपन्यासों की भी रचना की। श्री हरिदासप्रसाद चतुर्वेदी का 'सावित्री-सत्यवान' (१९१२ ई०), रामचरित उपाध्याय का 'देवी द्रौपदी' (१९१९ ई०) तथा नरोत्तम व्यास का 'सपकथा' आदि उपन्यास इसी परम्परा के द्योतक हैं। ये उपन्यास उपर्युक्त तिलस्मी जासूसी उपन्यासों की अपेक्षा बहुत कम लिखे गए। औपन्यासिक शिल्प का इनमें भी अभाव ही रहा।

५—कुछ उपन्यास विज्ञान के विषयों को लेकर भी लिखे गए, जैसे—श्री गङ्गाप्रसाद गुप्त का 'हवाई नाव' (१९०३ ई०) विनयगोपाल बख्शी का 'चन्द्रलोक की यात्रा' (१९१० ई०) तथा शिवसहाय चतुर्वेदी का 'वेमून विहारी' (१९१८ ई०) आदि। इन उपन्यासों में विज्ञान की सत्यता के साथ उपयुक्त तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों की स्वच्छन्द कल्पना भी रहती थी। उपन्यास-कला इनमें भी विकसित न हो पाई।

६—कुछ उपन्यास केवल हँसी मजाक द्वारा मनोरंजन के उद्देश्य से लिखे गये। उपर्युक्त तिलस्मी-जासूसी उपन्यासों का उद्देश्य भी मनोरंजन ही था। 'गोबर गणेश संहिता' (गोपालराम गहमरी) 'शैतान मण्डली' (बेचन शर्मा उग्र) तथा 'ठलुआ क्लब' (गुलाबराय) आदि हास्य से ओतप्रोत हैं। उपन्यास-कला का इनमें भी अभाव रहा।

७—प्रेमचन्द से पूर्व अन्य भाषाओं से अनूदित उपन्यास भी खूब निकलने लगे थे। आरम्भ में केवल मनोरंजन-प्रधान तिलस्मी जासूसी आदि घटना प्रधान उपन्यासों—जैसे अंग्रेजी से 'टाम काका की कुटिया' 'लन्दन रहस्य' आदि तथा उर्दू फारसी से 'तिलस्मेहोशरुबा' 'ठग वृत्तान्त माला' 'पुलिस वृत्तान्त माला' आदि—का अनुवाद हुआ। किन्तु धीरे धीरे बंगला अंग्रेजी और मराठी के श्रेष्ठ उपन्यासों के अनुवाद निकलने लगे। हिन्दी में बङ्किम रविबाबू शरत राखालदास बैनर्जी आदि बंगला लेखकों के उपन्यासों-जैसे श्रेष्ठ मौलिक उपन्यासों का अभाव खलने लगा।

८—प्रेमचन्द से पूर्व कुछ भाव प्रधान उपन्यास भी लिखे गए थे। इनमें काव्यात्मकता रहती थी। इनके पात्र भावुक होते थे। कवित्वपूर्ण अलंकृत शैली में भाव-व्यंजना ही लेखक का उद्देश्य रहता था। कथा-तत्त्व चरित्र-चित्रण आदि का इनमें अभाव ही रहा। ब्रजनन्दनसहाय का 'सौन्दर्योपासक' और चण्डीप्रसाद हृदयेश का 'मनोरमा' इस ढङ्ग के उपन्यासों में उल्लेखनीय हैं।

९—प्रेम-प्रधान उपन्यासों की परम्परा भी चल रही थी। यद्यपि तिलस्मी आदि घटना-प्रधान उपन्यासों में भी प्रेम-चित्रण रहता था पर इन प्रेमप्रधान उपन्यासों में प्रेमाख्यानों की ही प्रधानता रही। किशोरीलाल गोस्वामी इस परम्परा के अग्रणी लेखक कहे जा सकते हैं। उनके उपन्यासों में रीतिकाव्य-परम्परा का शृङ्गार—नाम हास-परिहास छिछली और अश्लील रसिकता अभिसार, अवैधप्रेम आदि तिलस्मी उपन्यासों का तिलस्म और ऐयारी का घटना चमत्कार तथा इतिहास का झीना और विकृत आधार पाया जाता है। 'तारा' 'कुसुम कुमारी' 'अँगूठी का नगीना' 'लखनऊ की कब्र' 'रज़िया बेगम' आदि इनके उपन्यासों की

गोस्वामीजी ने सन् १८८६ से १९१८ ई० तक रचना कर डाली थी। किशोरीलाल गोस्वामी के कुछ उपन्यासों में सामाजिकता का पुट भी पाया जाता है।

फारसी नाटक-मण्डलियों के प्रभाव से भी कुछ प्रेम-प्रधान उपन्यास नाटकीय शैली में लिखे गये। फारसी काव्य के प्रेम-विरह के ढङ्ग पर नाटकीय शैली में रामलाल वर्मा ने 'गुलबदन उर्फ रजियाबेगम' की रचना की।

१०—जिस सुधारवादी उपदेशात्मक प्रवृत्ति को अपना कर भारतेन्दु युग के लेखकों ने उपन्यास-रचना की थी उसका विकास द्विवेदीकाल में प्रेमचन्द के आगमन से पूर्व हो रहा था। प्रेमचन्द इसी मार्ग से साहित्य-क्षेत्र में आये। उन्होंने इस सुधारवादी सामाजिक प्रवृत्ति को और भी सुन्दर कलात्मक प्रौढ़ता प्रदान की। प्रेमचन्द से पूर्व सुधारवादी उपन्यासों की धारा कई रूपों में प्रवाहित हो चुकी थी। कुछ उपन्यास केवल पारिवारिक आदर्श और शिक्षा से सम्बन्धित लिखे गये हैं—गोपालराम गहमरी के 'बड़ा भाई' 'सास-पतोहू' (सन् १८८६ ई०) 'आदर्श दम्पति' (१६०४ ई०) 'हिन्दू गृहस्थ' (लज्जाराम मेहता) तथा 'आदर्श बहू' (रामराव सिंह रचनाकाल १९११ ई०) और 'छोटी बहू' (गिरजाकुमार घोष) आदि। इनका आरम्भ घर के ही सुधार से हुआ। सास-बहू ननद भाभी के झगड़े और बाल विवाह के दोष तथा स्त्री शिक्षा आदि से सम्बन्धित नैतिकता ही इनमें रहती थी।

इस पारिवारिक घेरे के बाहर कुछ व्यापक सामाजिकता को अपना कर भी सुधारवादी उपन्यास लिखे गये जिनमें विधवा बाल विवाह नारी उत्थान छुआ छूत जाति भेद तथा दहेज आदि की सामाजिक समस्याओं को सतही तौर पर प्रस्तुत किया गया। लज्जाराम मेहता का 'सुशील विधवा (१९ ७ ई०) तथा बालकराम का 'कमिश्न होस्टल' (१९१६ ई) आदि ऐसे ही उपन्यास हैं। इस परम्परा में एक-दो रचनाएँ राजनीति और देश प्रेम से सम्बन्धित भी हुई—जैसे उग्रजी का 'चन्द्र' तथा उदयनारायण वाजपेयी का 'स्वदेश प्रेम' (१९१७ ई०)।

प्रेमचन्द का आगमन—उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हुआ होगा कि प्रेमचन्द के हिन्दी में आगमन ('सेवासदन'–१९१८ ई०) से पूर्व हिन्दी उपन्यास अपने शैशव के प्रयोग काल में था। उपन्यास के क्षेत्र में भिन्न भिन्न प्रकार के प्रयोग हो रहे थे। यद्यपि पारिवारिक और सामाजिक विषयों पर रचनाएँ लिखी जाने लगी थीं किन्तु न तो अभी हमारे उपन्यासों में उपन्यास-कला का विकास हुआ था न सामाजिक समस्याओं को गहराई से पकड़ने की क्षमता ही लेखकों में दिखाई पड़ी थी और न जीवन की व्यापक मानव-हित समस्याओं पर ही उनकी दृष्टि जाती थी। वास्तव में प्रेमचन्द-पूर्व के उपन्यास मुख्यतः दो उद्देश्यों से लिखे जाते थे—एक कोरे मनोरञ्जन के लिए दूसरे सुधार और उपदेश की खातिर। तिलस्मी-ऐय्यारी जासूसी हास्य और प्रेम प्रधान

उपन्यासों में पहली प्रवृत्ति है तो पौराणिक-धार्मिक, पारिवारिक, सामाजिक उपदेश प्रधान उपन्यासों में दूसरी। फिर भी 'तिलस्मे-होशरुबा' को चाव से पढ़ने वाले प्रेमचन्द ने तिलस्मी अस्वाभाविक कथानकों के स्थान पर, सुधारवादी रचनाओं के प्रभाव से हिन्दी कथा-साहित्य को जीवन की यथार्थता और आदर्श प्रेरणाओं में ढालने का निश्चय किया यह साहित्य के लिए बड़े सौभाग्य की बात थी। 'सेवासदन' जैसी प्रौढ़ रचना प्रस्तुत करके प्रेमचन्दजी ने हिन्दी उपन्यास-कला को प्रौढ़ता प्रदान की।

जीवन का व्यापक चित्रण, अनेक सामाजिक समस्याओं का यथार्थ अनुभूति-पूर्ण प्रकाशन, स्वाभाविक, विश्वसनीय, मानवीय संवेदनाओं से पूर्ण कथानक, भिन्न-भिन्न वर्गों और देशों के अनेक पात्रों का यथार्थ चरित्र-चित्रण, पात्रानुरूप एवं स्वाभाविक सजीव संवाद, युग-धर्म की संयोजना, सुन्दर सरस परिष्कृत और प्रभावात्मक भाषा-शैली, जीवन की स्वस्थ प्रेरणाओं और आदर्शों का महान उद्देश्य आदि गुणों की अवतारणा हिन्दी उपन्यास में सर्वप्रथम प्रेमचन्दजी की लेखनी-द्वारा ही प्रस्तुत हुई। मानवता का इतना दुःख-दर्द और दलित-दुखित शोषित निम्न वर्ग के प्रति इतनी सच्ची सहानुभूति लेकर चलने वाला शायद ही दूसरा कलाकार कहा जा सके। भारतीय जीवन के पिछले पचासों वर्षों का सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक संघर्ष और विकास जितनी सत्यता से उनके उपन्यासों में पाया जाता है वैसा इतिहास की पुस्तकों में ढूंढ़े से भी नहीं मिल सकता। निश्चय ही प्रेमचन्द का आगमन हिन्दी-साहित्य के लिए ही नहीं अपितु भारतीय साहित्य के लिये वरदान-स्वरूप सिद्ध हुआ। वे हमारे सांस्कृतिक युग थे। नव भारत के निर्माण में उनका योग किसी राजनैतिक या सामाजिक नेता से कम नहीं है। जो कार्य राजनीति के क्षेत्र में गांधीजी जैसे राजनीतिज्ञ नेता ने किया वही कार्य साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्दजी द्वारा सम्पन्न हुआ। अपने व्यक्तिगत जीवन तथा युग-जीवन से बहुत-कुछ पाकर उन्होंने सब-कुछ अपने युग और भावी युग को दे दिया, अपने निज के लिए कुछ भी नहीं रखा, कुछ भी नहीं चाहा।

२

हिन्दी उपन्यास का शिल्प विकास

और

प्रेमचन्द की देन



ऊपर के अध्ययन से प्रेमचन्द के पूर्व हिन्दी-उपन्यास की स्थिति का परिच हुआ होगा। अब हिन्दी औपन्यासिक शिल्प का क्रमिक अध्ययन करके प्रेमचन्द क सामान्य देन पर प्रकाश डालते हैं।

कथानक— जैसा कि कहा जा चुका है आरम्भ में तिलस्मी-जासूसी आदि उपन्यासों में अद्भुत अस्वाभाविक और कृत्रिम घटना-वैचित्र्य वाला कथानक होता था। उपदेश प्रधान उपन्यासों में उपदेश या सुधार की खातिर कथा को मनमाने ढंग पर चलाया जाता था। हिन्दी आलोचना की रूढ़ि के दाय से ही कुछ आरम्भिक रच नाओं को आज तक उपन्यास माना जाता है। बालकृष्ण भट्ट के 'नूतन ब्रह्मचारी' में उपन्यास की कोई बात भी लक्षित नहीं होती। इसका छोटा-सा कथानक कहानी की ही संज्ञा पा सकता है। पर न जाने कैसे—शायद बिना पढ़े—सभी आलोचक इसे उपन्यास मानते आ रहे हैं!

हिन्दी-उपन्यासों में कथावस्तु की निर्दोषता बहुत समय तक नहीं आ पाई। प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्दोत्तर युग में भी आज तक अधिकांश उपन्यास कथानक की दृष्टि से सदोष ही कहे जा सकते हैं। तिलस्म के बटुए और जासूसी-ऐय्यारी के चक्कर तो छूटे किन्तु बहुत-से उपन्यासों में आकस्मिक घटनाओं— संयोगों (Coincidence) का बाहुल्य होने लगा। इसमें सन्देह नहीं कि जीवन में आकस्मिक घटनाएँ भी घटती हैं पर कभी कभी ही। उनकी अधिकता उपन्यास में अस्वाभाविक-सी प्रतीत होने लगती है। (प्रेमचन्द के भी 'वरदान' 'प्रेमाश्रम' 'काया-कल्प' आदि गोदान-पूर्व के उपन्यासों में यह दोष कुछ हद तक पाया जाता है।) उपन्यास मानव-जीवन से तो सम्बद्ध हो गए, पर उनमें किसी निश्चित आदर्श या सत्य की पुष्टि का ध्यान रहने लगा। आकस्मिक घटनाओं के प्रयोग द्वारा लेखक कथा की गति सत्य की ओर बढ़ाने लगा। प्रेमचन्द के उपयुक्त कुछ उपन्यासों में भी कथा उद्देश्य के इशारे पर मोड़ी गयी प्रतीत होती है।

आकस्मिकता के अतिरिक्त दूसरा दोष लक्ष्य या उद्देश्य की प्रधानता से यह रहा कि कई बार कथावस्तु में सन्तुलन नहीं रहने पाया। अनावश्यक घटना कई बार विस्तार पा जाती थी और आवश्यक घटना और प्रसङ्गों का विस्तार नहीं हो पाता था। प्रासङ्गिक वृत्त व्यर्थ का महत्त्व पा जाते थे। यह दोष प्रेमचन्द के भी बड़े उपन्यासों में यहाँ तक कि 'गोदान' में भी पाया जाता है।

तीसरा दोष यह कि अपने उद्देश्य रुचि या सिद्धान्त के मोह में लेखक कई बार स्वयं या किसी पात्र के रूप में लम्बे-लम्बे भाषण लम्बे संवाद या ऊबा देने वाली व्याख्याएँ अथवा वचन (कथितर्पे) देने लगता था। इस तरह बात-बीच में अपनी बात कहने के लिए कथाकार के स्वयं उपस्थित हो जाने से कलात्मकता की हानि पहुँचती है। कथा-वस्तु-सम्बन्धी ये तीन दोष हिन्दी के अच्छे-अच्छे उपन्यासकारों में—यहाँ तक कि प्रेमचन्द वृन्दावनलाल वर्मा प्रभृति लेखकों के कुछ उपन्यासों में भी पाये जाते हैं। वर्माजी के उपन्यासों में कहीं-कहीं वर्णन की प्रधानता जैसे—'झाँसी की रानी' 'मृगनयनी' आदि में विशेषकर पहली रचना में लम्बे-लम्बे ऐतिहासिक वर्णन कथा की गति में बाधक और उबाहट पैदा करने लगते हैं। साथ ही कहीं-कहीं सैद्धान्तिक वाद-विवाद—जैसे 'मृगनयनी' में कुएँ के पानी का झगड़ा—भी आवश्यकता से अधिक लम्बे हो जाते हैं। प्रेमचन्द के प्रायः सभी बड़े उपन्यासों में कथा का सन्तुलन समुचित नहीं बन पाया है। 'गोदान' में भी नगर की उपकथा ग्राम की मुख्य कथा से सुसम्बद्ध नहीं हो पाई। सैद्धान्तिक वाद-विवाद भी कहीं-कहीं पाया जाता है जैसे 'सेवासदन' में म्यूनिसिपैल्टी के मैम्बरों में वाद-विवाद आदि।

हमारे प्रारम्भिक उपन्यासों में घटनाओं की अधिकता चरित्र-चित्रण को दबाए रहती थी। पात्रों की आन्तरिक स्वाभाविक मनोवृत्तियों का उद्घाटन नहीं हो पाता था। प्रेमचन्द के उपन्यासों में ही सर्वप्रथम चरित्र-चित्रण का प्रयास दिखाई दिया। पर उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में यह दोष कुछ-कुछ पाया जाता है। वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों में भी घटनाएँ पात्रों को आच्छादित कर लेती हैं। 'गोदान' और बाद के लेखकों की रचनाओं में कथानक और पात्रों का सामंजस्य आने लगा। चरित्र-चित्रण की प्रवृत्ति बढ़ती गई और मनोवैज्ञानिक या मनोविश्लेषिक उपन्यासों में तो कथा या घटना की अवहेलना ही होने लगी। कथा गौण हो गई—चरित्र-चित्रण ही मुख्य उद्देश्य हो गया। यह प्रवृत्ति दूसरी अति तक पहुँच गई।

हिन्दी में कथानक की दृष्टि से सर्वथा निर्दोष उपन्यास कम ही दिखाई देते हैं। मुन्शी प्रेमचन्द विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक ('माँ' 'भिखारिणी') बेचन शर्मा उग्र (सरकार तुम्हारी आँखों में आदि) प्रतापनारायण श्रीवास्तव ('विदा' आदि) तथा गोविन्दवल्लभ पन्त भगवतीचरण वर्मा भगवतीप्रसाद वाजपेयी गुरुदत्त आदि के

कुछ उपन्यासों में ही सीधी-सादी निर्दोष कथा के दर्शन होते हैं। वास्तव में जिस प्रकार पहले उद्देश्य-उपदेश या कल्पना-बहुलता के कारण दोष उत्पन्न होते थे उसी प्रकार प्रेमचन्दोत्तर काल में भी बौद्धिक जागरूकता के बढ़ने से उपन्यास में बुद्धि प्रधानता रहने लगी। विभिन्न प्रकार की मार्क्सवादी मनोविज्ञानवादी राष्ट्रवादी सांस्कृतिक आदि विचारधाराओं ने हमारे उपन्यासकारों को घेर लिया। और यह सब विचार-तत्त्व कथा रस में घुल कर आने की बजाय कथा-वस्तु की अवहेलना-सी करने लगा। सामाजिक उपन्यासों में विचारों सिद्धान्तों के प्रतिपादन या स्पष्टीकरण के कारण कथा-शिल्प की त्रुटि रही और मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पात्र-वैचित्र्य और मनोविज्ञान से कथा दब गई। यह बात हम यशपाल जैनेन्द्र अज्ञेय इला चन्द्र जोशी रांगेय राघव नागार्जुन फणीश्वर रेणु आदि हिन्दी के प्रसिद्ध औपन्यासिक शिल्पकारों के भी बहुत-से उपन्यासों को दृष्टि में रख कर कह रहे हैं। अज्ञेय के 'शेखर' और 'नदी के द्वीप' में कथा का भारी दोष है और सच तो यह है कि शैली शिल्प की नवीनता के कारण जितनी इनकी चर्चा-प्रचार एवं प्रसिद्धि हुई है उतना कुछ शायद इनमें नहीं है। फणीश्वर प्रसाद रेणु के बहुचर्चित उपन्यास 'मैला आँचल' 'परती परिकथा' की कहानी और भी दुर्बल है। इलाचन्द्र जोशी के 'प्रेत और छाया' तथा 'जिप्सी' आदि जैनेन्द्र जी के 'त्यागपत्र'-जैसे कुछ सन्तुलित उपन्यासों को छोड़ कर शेष सब उपन्यास नागार्जुन के 'बाबा बटेसरनाथ' आदि में कथा रस का दोष बहुत खटकता है। फिर भी हिन्दी उपन्यास में कथा-शिल्प का पर्याप्त विकास हुआ है। कई प्रकार के प्रयोग भी हुए हैं।

मुन्शी प्रेमचन्द का हिन्दी उपन्यास के कथा-शिल्प को विकसित करने में पर्याप्त योग है। यद्यपि उन्होंने कथा का सीधा-सादा ढङ्ग अपनाया है कोई प्रयोग नहीं किए तथापि उनके 'निर्मला' 'गबन' आदि में पूर्णतः और 'गोदान' आदि में मामूली अपवादों के साथ सीधी-सादी सरल निर्दोष एवं रोचक कथा पाई जाती है। पहले जैसी आकस्मिक घटनाएं असम्भव कल्पनाएं आदर्श के अनुकूल तोड़ी मोड़ी अस्वाभाविक परिस्थितियाँ आदि अब समाप्त हो चुकी हैं।

चरित्र चित्रण – पहले कहा जा चुका है कि प्रेमचन्द-पूर्व के उपन्यासों में चरित्र-चित्रण का अभाव था। पात्रों की कोई स्वतन्त्र स्वाभाविक सजीव रेखाएँ उभर नहीं पाती थीं। पात्रों का व्यक्तित्व लेखक के हाथ की कठपुतली बना रहता था। अपने 'स्व' और 'स्व' से युक्त सजीव चरित्र-सृष्टि प्रेमचन्द ने ही सर्वप्रथम प्रकट की। उनका 'सेवासदन' सुमन पद्मसिंह शर्मा शान्ता सदन आदि पात्रों की अमर चरित्र सृष्टि लेकर आया। प्रेमचन्दजी ने यथार्थ जीवन के भिन्न-भिन्न वर्गों से सजीव पात्रों का चयन किया। उनका मानव-जीवन-अनुभव बड़ा व्यापक था। वह भिन्न-भिन्न

प्रकार के पात्रों की मनोवृत्तियों से अच्छी तरह अभिज्ञ थे। उनकी चरित्र-सृष्टि बहुत व्यापक एवं विशाल है। हिन्दी उपन्यास में चरित्र चित्रण-कला का उन्होंने बहुत विकसित किया इसमें सन्देह नहीं। यद्यपि प्रेमचन्द की चरित्र-चित्रण-कला सर्वथा निर्दोष नहीं कही जा सकती क्योंकि उनके 'गोदान'-पूर्व के कुछ उपन्यासों में घटनाओं की बहुलता तथा उद्देश्य के आग्रह से कई बार कुछ पात्र दब गए हैं या उनका अस्वाभाविक मति-विकास हुआ है जो मनोवैज्ञानिक प्रतीत नहीं होता जैसे 'प्रेमाश्रम' में गायत्री ज्ञानशङ्कर आदि 'गबन' में जोहरा तथा निर्मला में डा० सिन्हा की आत्महत्याएं अस्वाभाविक ही हैं। पात्रों की इस प्रकार की अस्वाभाविक परिणति के कारण ही तो इलाचन्द्र जोशी ने प्रेमचन्द पर मनोविज्ञान के कच्चे होने का दोष लगाया था। अपने आदर्शों या नैतिकता की रक्षा के लिए वे पात्रों को मनमाना मोड़ दे देते हैं जैसे—'प्रेमाश्रम' में ही मायाशङ्कर एक बड़ा रियासत छोड़ देता है 'सेवासदन' में जेल से आने के बाद सुमन के पिता कृष्णचन्द्र का परिवर्तन तथा 'कर्मभूमि' में सकीना मुन्नी आदि के चरित्रों में अस्वाभाविक परिवर्तन ऐसे ही अखरने वाले हैं। ऐसे परिवर्तनों के मनोवैज्ञानिक कारण प्रेमचन्द अच्छी तरह नहीं दे पाये हैं। तथापि अपने अन्तिम पूर्ण उपन्यास 'गोदान' में वे इन दोषों का परिहार करने में सफल हुए हैं। इस रचना में शायद किसी पात्र के चरित्र में यह दोष नहीं है। 'गोदान' के होरी धनिया गोबर, झुनिया मेहता मालती कुर्मदे आदि प्रायः सब पात्र प्रेमचन्द की अमर कला का नमूना है। इस दृष्टि से 'गोदान' प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ रचना सिद्ध होती है। 'रङ्गभूमि' में पात्रों की इतनी सजीव रेखाएँ नहीं है जितनी 'गोदान' में।

प्रेमचन्द सामाजिक कलाकार है। इसीसे प्रेमचन्द की चरित्र-सृष्टि अधिकतर वर्गगत ही है। यह इतनी व्यापक रही कि कई बार पात्रों का व्यक्तित्व सजीव नहीं हो पाया। प्रेमचन्द-युग के उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की उपर्युक्त कुछ कमियाँ बनी रहीं। चरित्र चित्रण कई बार समस्याओं के बीच भी दब जाते थे।

परन्तु सन् १९३६ के आस-पास से कुछ रचनाएं ऐसी आने लगी थीं जिनमें चरित्र-चित्रण अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविक सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक और स्वतन्त्र वैयक्तिक दिखाई दिया। वर्ग व्यक्तित्व के स्थान पर प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यासों में व्यक्तिपरक सजीव व्यक्तित्व आया। 'गोदान' प्रेमचन्द-युग और उत्तर युग के बीच की कड़ी है। पहले उपन्यासों में 'प्रतिनिधि पात्र' ही स्थान पाते थे उनके चरित्र का वही रूप सामने आता था जिनसे उनके वर्ग की विशिष्टता स्पष्ट हो सके। पर अब मानव अपनी विचित्रताओं में प्रकट होने लगा। परम्परागत आदर्श या नैतिक मर्यादाओं का बँधा हुआ भय अब समाप्त हुआ। प्रेमचन्द और उनसे पहले के उप

न्यासों में 'सुनीता' (१९३५ ई०) की तरह पर-पुरुष के सामने नारी के नङ्गा हो जाने की कल्पना भी कोई लेखक नहीं कर सकता था।

इस प्रकार सन् १९१२ १६ से हमारी उपन्यास-कला ने एक और पलटा खाया। हमारे उपन्यासकारों के दृष्टिकोण में मनोवैज्ञानिकता स्वाभाविकता यथार्थता उदारता और व्यापकता आती गई। पहले उपन्यासों के नायक प्राय उच्च वर्ग व बुर्जुआ मनोवृत्ति के व्यक्ति ही होते थे अथवा आदर्श के पुतले या लेखक के आदर्श से परिचालित होते थे। पर 'चित्रलेखा' (भगवतीचरण वर्मा रचनाकाल १९३४-३५) 'गोदान' 'सुनीता' में दृष्टिभेद स्पष्ट है। हम कह सकते हैं कि 'गोदान' मुन्शी प्रेमचन्द की ऐसी रचना है जो चरित्र-सृष्टि की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास में एक नया मोड़ प्रस्तुत करती है।

कुछ उपन्यासों में यथार्थवाद के मोह से अतिशय दुश्चरित्र हीन व्यभिचारी पात्रों का भी चित्रण हुआ। परन्तु अब यह प्रवृत्ति बदल चुकी है। बुरे-से-बुरे पात्र का चित्रण भी आज स्वस्थ यथार्थवादी प्रवृत्ति से किया जाता है। बुरे पात्रों के प्रति उनकी परिस्थिति का ध्यान करके सहानुभूति की भावना भी लेखकों ने दिखाई। पात्रों के चरित्र-चित्रण में मनोविज्ञान की प्रधानता उत्तरोत्तर बढ़ती गई। हिन्दी उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की कला का पूर्ण विकास सन् १९४०–४१ से पूर्व दिखाई देता है। व्यक्तिवादी चरित्र-सृष्टि का भी इसी समय समुचित विकास हुआ। इला चन्द्र जोशी के 'संन्यासी' 'पर्दे की रानी' (१९४१) अज्ञेयजी का 'शेखर एक जीवनी' (१९४१–४४) जैनेन्द्रजी के 'सुनीता' 'त्यागपत्र' आदि उपन्यास। मैं चरित्र चित्रण-कला का सम्यक् विकास लक्षित हुआ। पात्रों के मन की विभिन्नताओं उलझनों को मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से प्रकट करने में हमारे ये उपन्यासकार पर्याप्त सफल हुए हैं। इनमें सारा कथानक चरित्रों द्वारा ही परिचालित होता है। अधिकांश उपन्यासों में 'गोदान' की तरह कथा और चरित्र-चित्रण का सामञ्जस्य रहता है। इस प्रकार हिन्दी उपन्यासकला चरित्र चित्रण की दृष्टि से अपनी आरम्भिक अवस्था को पारकर प्रौढ़ बन गई है। प्रेमचन्द का इसे प्रौढ़ता के सोपान पर ले जाने में विशेष हाथ है।

संवाद आरम्भिक उपन्यासों में संवादरचना भी अक्षमता ही थी। संवाद अस्वाभाविक और कृत्रिम-से होते थे। आदर्शिक रचनाओं में कुछ परिस्थिति के अनुकूल सुन्दर, रोचक संवाद अवश्य मिलते हैं पर उनमें भी नाटक अंश अधिक है। प्रेमचन्द ने ही सुन्दर स्वाभाविक पात्र-परिस्थिति के अनुरूप कथोपकथन को जन्म दिया। 'हास्य व्यंग्य तथा रोचकता भी उनके संवादों का गुण है। सामान्यतः प्रेमचन्द के संवाद संक्षिप्त और चटुल होते हैं पर जहाँ-कहीं वे सैद्धान्तिक वाद-विवाद प्रारम्भ करते

लगते हैं वहाँ संवाद लम्बे-लम्बे भाषण से हो जाते हैं। यह दोष कुछ हद तक उनके 'गोदान' में भी पाया जाता है। विचार-धाराओं के प्रकाशन का मोह हमारे आगे के उपन्यासकारों में भी इतना रहने लगा कि वे कथा की गति और रोचकता का ध्यान ही भूल बैठे। विश्वम्भरनाथ शर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा तथा विष्णुप्रभाकर-जैसे कुछ उपन्यासकारों ने अपने कथोपकथनों को संक्षिप्त रखने का प्रयास भी दिखाया है। वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने उपन्यासों में संवाद शैली का खूब प्रयोग किया है और उनमें ढूंढ़े से ही शायद कोई लम्बा संवाद मिले। उपन्यासों में मनोवैज्ञानिकता के समावेश से अब अस्वाभाविकता और कृत्रिमता का दोष तो प्रायः समाप्त हुआ पर कुछ उपन्यासों में लम्बे विचार-गाम्भीर्य से युक्त संवाद रचना को बोझिल बना देते हैं। फिर भी सामान्य रूप से हमारे उपन्यासों में पात्रों की अवस्था, परिस्थिति, बुद्धि-संस्कार आदि के अनुरूप सुन्दर नाटकीयता व ओज-प्रोत स्वाभाविक सजीव सार्थक एवं रोचक संवाद शैली का पर्याप्त विकास हुआ है। प्रेमचन्द का इस विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान है।

देशकाल वातावरण—प्रेमचन्द-पूर्व के उपन्यासों में इस तत्त्व की भी कमी ही रही। किशोरीलाल गोस्वामी आदि ने जो स्कॉट के ढङ्ग पर ऐतिहासिक उपन्यास लिखने का प्रयत्न किया उनमें ऐतिहासिक वातावरण की सजीवता का ध्यान तो दूर, बहुधा वातावरण की हत्या ही करदी जाती थी। तिलस्मी-ऐय्यारी के उपन्यासों में सब वातावरण कृत्रिम होता था। जीवन की वास्तविकता से उसका विशेष सम्बन्ध नहीं होता था। पारिवारिक तथा कुछ सामाजिक उपन्यासों में ही पारिवारिक और सीमित सामाजिक वातावरण उतरा पर उनमें भी इसकी सजीवता और विस्तार या व्यापकता का अभाव ही रहा। सर्वप्रथम प्रेमचन्दजी ने ही अपने 'सेवासदन' आदि सामाजिक उपन्यासों-द्वारा समाज के व्यापक चित्रण के रूप में सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक आदि सभी प्रकार की परिस्थितियों को सजीव रूप दिया। प्रेमचन्द का चित्रपट जितना व्यापक, विस्तृत और सजीव है वह उन्हें विश्व के बड़े बड़े—बालजाक, टालस्टाय-जैसे उपन्यासकारों के समकक्ष खड़ा करता है। शरद्, विभाव के राम मुन्शी-जैसे महान भारतीय उपन्यासकारों का चित्रपट (Canvas) भी इतना व्यापक नहीं जितना प्रेमचन्द का। ग्राम-जीवन के चित्रण में तो प्रेमचन्द अद्वितीय हैं। युग-धर्म की इतनी सजीवता प्रेमचन्द के उपन्यासों को ऐतिहासिक उपन्यासों का दर्जा प्रदान करती है। निश्चय ही प्रेमचन्द के उपन्यासों में भारतीय जीवन की कम-से-कम पचास वर्षों की सच्ची झाँकी प्राप्त होती है जो इतिहास की सतरों में शायद ढूंढे से भी नहीं मिलेगी।

वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों—'गढ़कुण्डार' 'कचनार'

मृगनयनी' आदि में ऐतिहासिक वातावरण की सजीव सृष्टि की है। बुन्देलखण्ड और उसकी प्राचीन संस्कृति को उन्होंने अपने उपन्यासों में साकार कर दिखाया। हिन्दी में अनेक वातावरण प्रधान उपन्यास लिखे गए हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों में—जैसे चतुरसेन शास्त्री के 'वैशाली की नगर वधू' 'गोली' आदि यशपाल की 'दिव्या' तथा राहुलजी के 'सिंह सेनापति' 'सोने की ढाल' 'जय यौधेय' आदि आनन्दप्रकाश जैन का 'कठपुतली' आदि उपन्यासों में वातावरण की पर्याप्त सजीवता है।

प्रेमचन्दोत्तर काल के कुछ सामाजिक उपन्यासों में अछूते चित्रण भी हुए हैं—जैसे उदयशङ्कर भट्ट के 'सागर लहरें और मनुष्य' में मछुओं का जीवन। हिन्दी में पिछले दस-बारह वर्षों में आञ्चलिक उपन्यासों का प्रयोग भी हुआ। ये उपन्यास भी वातावरण प्रधान ही है। पूर्णिया-जिला (बिहार) के जीवन पर फणीश्वरप्रसाद रेणु ने 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' नामक दो उपन्यास निकाले। नटों के जीवन पर रांगेय राघव का 'कब तक पुकारू' मछुओं के जीवन पर उदयशङ्कर भट्ट का उपर्युक्त उपन्यास तथा जिला दरभङ्गा (बिहार) के जीवन पर नागार्जुन के 'बलचनमा' और 'बाबा बटेसरनाथ' भी आञ्चलिक उपन्यास कहे जाते हैं। इनमें भाषा का प्रयोग भी स्थानीय होता है। इस प्रकार हिन्दी-उपन्यासों में पात्रों के क्रिया कलाप रीतिरिवाज वेशभूषा संस्कार, प्रथाएँ स्थान प्राकृतिक दृश्य तथा भाषा शैली आदि के द्वारा युगधर्म और वातावरण की सजीवता आई। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में बाह्य वातावरण बहुत कम होता है। इनमें केवल देश-काल की झाँकियों द्वारा सीमित वातावरण में पात्रों की सीमा बनती है जो अधिकतर अन्तर्द्वन्द्वों से सम्बन्धित होती है। इन उपन्यासों में भी—चाहे संक्षिप्त झाँकियाँ हों—देशकाल वातावरण की सजीवता अवश्य रहती है। हिन्दी उपन्यासों में सदा युगधर्म और सजीव वातावरण उत्पन्न करने में प्रेमचन्द अग्रणी हैं। उन्होंने ही सच्चे देशकाल वातावरण की राह हिन्दी-लेखकों को दिखाई। उनके उपन्यास सच्चे वातावरण-प्रधान उपन्यास हैं। इस दृष्टि से उनका महत्त्व सर्वाधिक है।

उद्देश्य—पहले कहा जा चुका है कि आरम्भ में या तो केवल मनोरञ्जन ही उपन्यासों का उद्देश्य होता था या सुधारवादी प्रवृत्ति के प्रभाव से उपदेश या नीति कथा के उद्देश्य सामने रखकर उपन्यास लिखे गये थे। ये उद्देश्य इतने उभरे रहते थे कि कला की स्वाभाविकता इनसे दब जाती थी। प्रेमचन्दजी भी समाज-सुधार का उद्देश्य लेकर चले किन्तु उन्होंने सामाजिक समस्याओं पर इस ढङ्ग से प्रकाश डाला कि कला को विशेष हानि न हो। वास्तव में प्रेमचन्द की महानता इस बात में नहीं है कि उन्होंने हमारी अनेक समस्याओं को दर्शाया महीं इस बात में है कि

रचनाओं में आदर्श या नैतिकता का सन्देश पाया जाता है। मैं समझता हूँ कि

प्रेमचन्द इसलिए महान हैं कि उन्होंने हमारी सामाजिक राजनैतिक धार्मिक सांस्कृतिक आदि सभी प्रकार की समस्याओं को संवेदनात्मक रूप देकर प्रस्तुत किया उन्होंने जीवन को काव्य रस के रूप म प्रस्तुत किया। रस के नाम से चौंकने वाले आधुनिक आलोचकों को हम आगे दिखाय में कि प्रेमचन्द की महानता काव्यरस को उदात्त बनाने में ही है। उनके उपन्यासों म जीवन रस रसायन में घुल कर प्रस्तुत हुआ है। प्रेमचन्द का भाव और रस-लोक कितना व्यापक है कितना उदात्त और गम्भीर है! उनकी रचनाए इसी रस-भाव तत्व के गुण के कारण प्रसिद्ध हैं न कि जीवन के विवेचन के कारण जो काय एक नीतिशास्त्री या समाजशास्त्री भ ली प्रकार कर सकता था। जहाँ-जहाँ स्वय प्रेमचन्द ने कोरे सुधारवाद या आदर्शवाद का चोला पहनना चाहा है वहाँ उन्हें ही मु ह की खानी पड़ी है।

'गोदान'-पूव के उपन्यासों में आचाय शुक्लजी के शब्दों में कहें वे उप देशक और समाज-सुधारक का चेहरा बाढ़ कर सामने प्रतीत होते हैं। उन पर गांधी वादी युग के सुधारवाद समझौते और हृदय-परिवतन का एक गुलाबी पर्दा-सा पड़ा हुआ था। इसी कारण उनके गोदान से पूव के उपन्यास किसी-न किसी सदन अथवा आश्रम या सुधार के काल्पनिक आदशवाद में परिणति पाते हैं। 'सेवा-सदन' 'प्रेमाश्रम' 'गबन' 'प्रतिज्ञा' आदि सभी उपन्यासों में वे यथाथ से आरम्भ करके किसी-न किसी आश्रम-संस्थापन समझौता या हृदय-परिवर्तन आदश ग्राम-जीवन आदि के आदर्शवाद में अन्त दिखाते हैं। इससे एक बना बनाया निश्चित हल या अन्त उनके इन उपन्यासों को पूर्ण विश्वसनीय नहीं रहने देता। कथागत त्रुटि भी कथानक और पात्रों के मनमाने परिवतन से उत्पन्न हो गई है। फिर भी प्रेमचन्द की ये सुन्दर कल्पनाएँ निष्क्रिय आदर्शवाद (utopia) नहीं कही जा सकती। य चाहे समस्याओं के पूरे हल न हों पर एक साहित्यकार की सम्भावनाओं और भविष्यों के परे की वस्तु नहीं हैं। अत बहुत भारी असङ्गति इसे नहीं कह सकते।

कथा-सम्बन्धी इन कुछ त्रु टियों के बावजूद भी प्रेमचन्द के उपन्यास भारतीय प्रगति के अग्रदूत हैं। उन्होंने हमारे सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में आश्चयजनक परिवतन सा दिया। उन्होंने ही सवप्रथम समाज की भिन्न-भिन्न समस्याओं और समाज के कुरूप को स्पष्ट रूप म दिखाकर हमारी सामाजिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया। वे बहुत बड़े भारतीय प्रगतिशील लेखक हुए हैं। जिस समय हिन्दी लेखक इधर उधर भटक रहे थे प्रेमचन्द क्रम न से उपन्यास साहित्य यथार्थ मानव जीवन के उन्नयन का काय कर रहा था।

प्रेमचन्द के 'गोदान' में स्वस्थ यथाथवाद के दर्शन हुए। पर कुछ लेखकों यथार्थवाद के नाम पर समाज के अति प्राकृत बीभत्स चित्रों को नङ्गा करना आरम्

कर दिया। पांडेय बेचन शर्मा उग्र, ऋषभचरण जैन आदि ने समाज का ज्यों-का-त्यों फोटो प्रस्तुत करना आरम्भ कर दिया था। 'दिल्ली का दलाल', 'व्यभिचार के अड्डे' आदि रचनाएं ऐसी ही थीं। उद्देश्य इनका भी सामाजिक है किन्तु इस प्रकार के नग्न यौन-विकार के चित्रों से पाठकों का मानसिक स्खलन होता है, स्वस्थ प्रतिक्रिया दब जाती है। सामाजिक उद्देश्य का एक अन्य रूप प्रेमचन्दोत्तर काल में साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित उपन्यासों में दिखाई दिया। इनमें भी समाज का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करके सर्वहारा वर्ग की उन्नति-कामना तथा पूंजीवादियों का नैतिक पतन दिखाने परम्परागत पूंजीवादी-सामन्तवादी शोषक-शक्तियों को मृत्युदण्ड देने का प्रयत्न पाया जाता है। मार्क्सवादी सिद्धान्तों का प्रचार भी इनमें दिखाई देता है जिसके कारण कला को हानि पहुंचती है।

हिन्दी उपन्यासों की सामाजिक मनोभूमि—हमारे उपन्यासों में सामाजिक चेतना और सामाजिक समस्याओं और जीवन-मूल्यों के अध्ययन में उत्तरोत्तर बड़ा परिवर्तन हुआ है। प्रेमचन्द से पूर्व के पारिवारिक और सामाजिक उपन्यासकारों में समाज की विकृतियों, अत्याचारों और बुरी परम्पराओं का खुल्लमखुल्ला विरोध करने का साहस कम ही था। पाप-पुण्य, नीति-अनीति, धर्म-अधर्म के प्रति परम्परागत बंधी बंधाई धारणाएं थीं। समस्याओं को गहराई से पकड़ना तथा समाज की जड़ में घुसी कुरीतियों को कुरेदने की रुचि भी उनमें न आ पाई थी। प्रेमचन्द ने ही सर्वप्रथम इस क्षेत्र में व्यापक सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया। प्रेमचन्द ने समाज की भिन्न-भिन्न समस्याओं को अपनी मानवीय सहानुभूति के साथ उठाया। किन्तु उन्होंने भी व्यक्ति को समाज-सापेक्ष ही स्वीकार किया, व्यक्ति का समाज के साथ खुल्लमखुल्ला संघर्ष और विद्रोह वे अच्छी तरह नहीं दिखा सके। प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यासों में ही व्यक्ति को समाज के बंधनों से मुक्त कराने की भावना का विकास हुआ। प्रेमचन्द, प्रसाद (कंकाल में) आदि ने भिन्न-भिन्न सामाजिक-धार्मिक संस्थाओं का पोल-पट्टा दिखाकर प्रचलित सामाजिक धारणाओं और उनके प्रति जमे हुए विश्वासों पर जबरदस्त आघात तो किया था, पर यह आघात आघात ही रहा। इससे नव मूल्यों और नई नैतिकता की स्थापना का मार्ग नहीं खुला।

सर्वप्रथम भगवती बाबू ने 'चित्रलेखा' में सामाजिक परम्परा को नया रूप दिया। उन्होंने पाप-पुण्य के सम्बन्ध में नई धारणा प्रकट की। व्यक्ति का समाज के बंधे आदर्शों से स्वतन्त्र होने की प्रेरणा दी। जीवन के नव नैतिक मूल्यों की स्थापना समाज की परिस्थितियों की बजाय व्यक्ति की ही परिस्थितियों के आधार पर करने का प्रयास हुआ। इससे परम्परागत सर्वथा बाह्य नैतिकता के स्थान पर व्यक्ति के महत्त्व के कारण सामाजिक मूल्यों में मनोवैज्ञानिक नैतिकता का प्रवेश हुआ। हिन्दी

उपन्यासों में यह विकासस्तर प्रेमचन्द के पश्चात् स्पष्ट रूप में दिखाई देता है। प्रेमचन्द युग में समाज-समस्या या की वेश्या के प्रति लेखक के मन में सहानुभूति भी थी किन्तु सदनों की स्थापना में ही उसका हल दृष्टिगोचर होता था। उस समाज में मुसाने मिलाने—शादी-ब्याह करा कर समाज में स्थान देने की दृष्टि नहीं थी। अब दृष्टिकोण बदला। परम्परागत नैतिक बन्धन ढीला हुआ। अब वेश्या के साथ सुमन जैसी पवित्र कन्या के साथ नहीं अपितु भार नारकीय जीवन बिताने वाली से— शादी कराने वाले को समादृत किया जाने लगा। प्रेमचन्द-युग में यदि शादी की बात होगी भी तो केवल सुमन जैसा से उन्हें पवित्र रखकर ही।

इस प्रकार हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना उत्तरोत्तर व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की परिचायक हुई। व्यक्ति के आचरणों की अच्छाई-बुराई की परख परम्परागत नैतिकता के स्थान पर व्यक्ति की ही परिस्थितियों के आधार पर नवीन मूल्यों के प्रकाश में की जाने लगी। इससे हिन्दी उपन्यास की भावधारा अन्तमु खी होती गई। जैनेन्द्र इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय आदि ने व्यक्ति का ही अध्ययन आरम्भ कर दिया। व्यक्ति और मानवता का कल्याण व्यक्ति के ही मनन में दबी हुई अभिलाषा के परिशोधन और मस्करण में समझा जाने लगा।

इसके विपरीत मानवतावादी दृष्टि रखने वाले उपन्यासकारों ने व्यक्ति के स्थान पर सामूहिकता को महत्त्व दिया। किन्तु परम्परागत रूढ़ियों का खण्डन करके उनसे व्यक्ति को मुक्त करके नए सामाजिक विधान में व्यक्ति को नव-समाज का अङ्ग बनाया गया। इस रूप में हिन्दी उपन्यास की मनोभूमि का क्रमिक विकास संकुचित पारिवारिक सामाजिक घेरे से अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत और व्यापक सामाजिक और उससे भी आगे विश्वमानवतावादी प्रगति के सोपान पर पहुँचने का परिचायक है। व्यक्तिवादी उपन्यासों की वैयक्तिकता में भी मानवतावादी दृष्टिकोण दिखाई देता है हमारे उपन्यासकार अधिकाधिक उदार संस्कृति के पोषक होते गए हैं।

आरम्भिक उपन्यासों में भावों का अत्यन्त सीमित प्रकाशन होता था। प्रेमचन्द के 'सेवासदन' में ही सर्वप्रथम मानवीय संवेदनाओं का व्यापक और उदात्त रूप दृष्टिगोचर हुआ। प्रेमचन्द के उपन्यासों का बीज मंत्र घृणा ही कहा जा सकता है यही कारण है कि उनके उपन्यासों में बीभत्स रस अपने विस्तृत उदात्त रूप में प्रकट हुआ है। जीवन की बुराइयों तथा दुष्ट अत्याचारी व्यभिचारी और भ्रष्टाचारी पात्रों के प्रति हमारी तीव्र घृणा जगाकर प्रेमचन्द ने समाज-सुधार की अद्भुत प्रेरणा दी है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में प्रेम घृणा करुणा हास्य वात्सल्य साहस-उत्साह आदि सभी प्रकार के उदात्त भाव रस की चरम स्थिति को पहुँचे हैं। उनकी सफलता का सबसे बड़ा रहस्य यही है कि वे इन मानवीय संवेदनाओं का सफल चित्रण

कर पाये हैं। जीवन की समस्याओं को उन्होंने भाव-संवेदनाओं में डुबोकर ही प्रस्तुत किया है। इसी से उनके उपन्यासों में रस-परिपाक पूर्ण सफलता से हुआ है जो उपन्यासों की सफलता का रहस्य है। हिन्दी उपन्यासों में शृङ्गार रस के अतिरिक्त *बीभत्स रस का भी बहुत व्यापक और सुन्दर प्रकाशन हुआ है। सामाजिक बुराइयों* को हमारे लेखकों ने खोल कर रख दिया है। बीभत्स रस के अनेक आलम्बन प्रस्तुत हुए हैं। मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित प्रगतिवादी उपन्यासों में पूँजीपति सामन्त और अन्य धुर्धुआ मनोवृत्ति के लोग तथा उनके अत्याचार और अमानुषीय कार्य हमारी घृणा के आलम्बन बने हैं। अन्य सामाजिक रचनाओं में भी बीभत्स रस का प्रसार अनेक सामाजिक एवं वैयक्तिक बुराइयों के प्रकाशन में प्रकट हुआ है। जिन उपन्यासों में भाव-संवेदनाओं का समुचित प्रकाशन नहीं हो पाया है वे सफल उपन्यास नहीं माने जाते। हिन्दी के सभी प्रसिद्ध उपन्यासों—जैसे प्रेमचन्द के उपन्यास वृन्दावनलाल वर्मा के 'कचनार' 'गढ़ कुंडार' 'विराटा की पद्मिनी' 'मृगनयनी' आदि जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' आदि इलाचन्द्र जोशी के 'सन्यासी' 'सुबह के भूले' 'जहाज का पंछी' आदि—में भावों और रसों का व्यापक गहन एवं उदात्त प्रकाशन ही उनकी सबसे बड़ी शक्ति है।

हिन्दी उपन्यासों में भाषा-शैली की दृष्टि से भी विकास की अनेक मंजिलें दिखाई देती हैं। आरम्भिक उपन्यासों में भाषा-शैली का भी सुष्ठु रूप नहीं मिलता। कथा-साहित्य की कोई एक आदर्श भाषा-शैली निश्चित नहीं हो पाई थी। कुछ उपन्यासों में जैसे—अमेद्रकिशोर के 'कम्मलिनी' आदि तथा देवीप्रसाद वर्मा के 'सुन्दर सरोजिनी (सन् १८९३) आदि में संस्कृत-गर्भित अस्वाभाविक भाषा का प्रयोग हुआ है। घटना-प्रधान तिलस्मी जासूसी उपन्यासों में सीधी-सादी भाषा का प्रयोग हुआ पर उनकी उर्दू की रवानी और चलतापन हिन्दी में ठीक तरह घुल मिल कर प्रकट नहीं हुई। प्रेमचन्द ने ही उर्दू की विशेषताओं को हिन्दी की प्रकृति में ढालकर हिन्दी भाषा को स्वाभाविकता सजीवता सरलता प्रवाहात्मकता मुहावरेदानी और चुस्ती प्रदान की। उन्होंने भाषा की अभिव्यञ्जना शक्ति को खूब बढ़ाया। प्रेमचन्द ने कथा-साहित्य के लिए एक आदर्श भाषा-शैली का निर्माण किया। जितने ही लेखक में आज तक मामूली व्यक्तिगत भिन्नता के साथ प्रेमचन्द की ही शैली को अपनाया गया है। प्रसादजी ने भी अपने उपन्यासों में नाटकों की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक परिष्कृत भाषा का प्रयोग किया। राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह तथा उग्रजी आदि ने कुछ आलंकारिक विचारात्मक व्यञ्जना प्रधान भाषा का सुन्दर प्रयोग किया है। रांगेयराघव निराला गुरुदत्त आदि के उपन्यासों में सुन्दर जन-भाषा का प्यारा रूप मिलता है। जैनेन्द्र की भाषा में भाव-नीति का-सा मजा

माना है। इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय की भाषा प्रौढ़ साहित्यिक तत्सम-बहुला भाषा होती है। वर्णनात्मक विश्लेषणात्मक भावात्मक व्याख्यात्मक हास्य-व्यंग्यात्मक आदि अनेक शैलियों का सुन्दर विकास हमारे उपन्यासों में हुआ है।

इस प्रकार हिन्दी उपन्यासों के संक्षिप्त शिल्प विकास के अध्ययन से स्पष्ट हुआ होगा कि प्रत्येक तत्व की दृष्टि से इस विकास-क्रम में प्रेमचन्द का अभूतपूर्व योग है। वे हमारे उपन्यास को कला की प्रौढ़ता के सोपान पर ले जाने वाले सर्वप्रथम उपन्यासकार हैं। वह हिन्दी के ही नहीं समग्र भारतीय साहित्य के श्रेष्ठ प्रगतिशील साहित्यकार हैं। उन्होंने हमारे कथा-साहित्य को नया जीवनवादी मोड़ प्रदान किया। कथा-साहित्य को ही नहीं उनकी प्रगतिशील दृष्टि का प्रभाव साहित्य की सभी विधाओं पर पड़ा। साहित्य में यथार्थवादी दृष्टि का समावेश हुआ। समूचे हिन्दी साहित्य ने ही करवट बदल ली। जन जीवन पर जितना अधिक प्रभाव आधुनिक काल में प्रेमचन्द की रचनाओं का पड़ा है उतना शायद ही किसी एक अन्य भारतीय साहित्यकार का पड़ा हो। निश्चय ही रविबाबू शरत् मुन्शी आदि श्रेष्ठतम भारतीय कथाकारों की तुलना में भी इस दृष्टि से प्रेमचन्द भारी बैठते हैं।



३

उपन्यासों का कोटिक्रम

और

प्रेमचन्द के उपन्यास



साहित्य की इस विधा (उपन्यास) का इतना नाना विध विकास हो चुका है और हो रहा है कि इसका समुचित वर्गीकरण एक कठिन समस्या ही है। भिन्न भिन्न दृष्टि से उपन्यासों के भिन्न-भिन्न रूप हैं। अतः अध्ययन की सुविधा के लिए हम चार प्रकार से उपन्यासों के रूप-रूप उनकी भिन्न-भिन्न शैलियां और प्रवृत्तियों का अध्ययन कर सकते हैं—१ रचना तत्वों की दृष्टि से २ वर्ण्य विषय की दृष्टि से ३ वर्णन शैली की दृष्टि से और ४ यथार्थ और आदर्श के आधार पर।

१ रचना-तत्वों की दृष्टि से – यद्यपि उपन्यास में कथानक चरित्र-चित्रण संवाद भाव रस उद्देश्य देशकाल-वातावरण आदि सब तत्व सामान्यतः रहते ही हैं किन्तु तो भी नई उपन्यासों में कथानक या घटना अथवा चरित्र चित्रण या कथोपकथन अथवा उद्देश्य या भाव रस आदि किसी एक तत्व की प्रधानता दिखाई देती है। अतः तत्व विशेष की प्रधानता के आधार पर उपन्यासों की कोटियाँ इस प्रकार होती हैं (क) कथानक या घटना प्रधान उपन्यास (ख) चरित्र-प्रधान उपन्यास (ग) घटना चरित्र समन्वित उपन्यास (घ) देशकाल-वातावरण प्रधान उपन्यास (ङ) उद्देश्य प्रधान और (च) भाव-प्रधान उपन्यास।

(क) कथानक प्रधान उपन्यास जिन रचनाओं में कथानक और घटनाओं का आयोजन इस प्रकार होता है कि पाठक घटनाओं के वैचित्र्य और आकस्मिकता तथा तज्जन्य उत्सुकता व कौतूहल में ही लीन रहता है उन्हें कथानक या घटना प्रधान उपन्यास कहते हैं। हिन्दी में आरम्भिक युग में ऐसे उपन्यास अनेकों लिखे गये। हिन्दी के तिलस्मी जासूसी एवं साहसिक उपन्यास बाबू जी के जासूसी एवं साहसिक उपन्यासों से आगे नहीं पहुँच सके। रूसी लेखक दस्तायवस्की का 'अपराध एवं दण्ड' (Crime And Punishment) भी जासूसी उपन्यास है किन्तु उसमें मानवता का मापदण्ड जिस खूबी से पोषा गया है वह दृष्टि हिन्दी-लेखकों में नहीं

है। राहुल सांकृत्यायन का 'शैतान की आँख' (सन् १९५४ ई०) इस दृष्टि से अच्छा उपन्यास है। ऐसे साहसिक सजीव उपन्यास हिन्दी में ढूँढे से ही दो-चार मिल जायें तो बहुत है। इसमें तिलस्म का-सा आनन्द है और साथ ही बौद्धिक सतर्कता उद्देश्य की उच्चता चित्रण की यथार्थता तथा विस्मयोत्पादन शैली उसे उच्चकोटि का साहसिक उपन्यास सिद्ध करती है।

प्रेमचन्दजी के 'वरदान' 'प्रतिज्ञा' 'कायाकल्प' आदि गोदान-पूर्व के कुछ आरम्भिक उपन्यासों में भी कुछ-कुछ कथानक की प्रधानता पाई जाती है। फिर भी उनमें चरित्र-चित्रण का प्रमाण रहता ही है। वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों में घटनाओं का वैचित्र्य खूब पाया जाता है किन्तु साथ ही उनमें भी चरित्र चित्रण का आकर्षण रहता है। वैसे ऐतिहासिक होने के कारण वे ऐतिहासिक देशकाल वातावरण-प्रधान उपन्यास हैं। किन्तु साथ ही उनमें घटनाओं की विशेषता भी रहती है और कुछ चरित्र भी सजीव हो जाते हैं। अतः उनके उपन्यासों को चरित्र-सापेक्ष कथानक-वातावरण प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है। उनके 'गढ़कुण्डार' में घटनाओं और वातावरण दोनों की प्रधानता है। 'मृगनयनी' में चरित्र चित्रण अन्य उपन्यासों की अपेक्षा अधिक उभरा हुआ है। अतः उसे यद्यपि घटना चरित्र-सापेक्ष वातावरण-प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है तो भी कथा-चरित्र की सापेक्षता उसमें उस प्रकार की सामञ्जस्यपूर्ण नहीं है जैसी 'गोदान' में है। प्रेमचन्द के 'गोदान' में घटना चरित्र-वातावरण आदि सब तत्वों का सुन्दर सामञ्जस्य प्रस्तुत हुआ है।

(ख) चरित्र-प्रधान उपन्यास—जिन उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की विशेषता प्रमुख रहती है और लेखक का उद्देश्य आदि से अन्त तक चरित्रों के अन्तर्द्वन्द्व और मानसिक घात प्रतिघात को प्रकट करके चरित्र की विशिष्टताओं का प्रकाशन ही रहता है उन्हें चरित्र-प्रधान उपन्यास कहा जाता है। घटना-प्रधान उपन्यासों में घटनाएँ महत्त्व पाती हैं और वे ही पात्रों को भिन्न भिन्न परिस्थितियों में डालकर उनके चरित्रों की कुछ रेखाएं प्रकट करती हैं पात्रों की चारित्रिक विशिष्टता से घटनाओं की उत्पत्ति नहीं होती। इसके विपरीत चरित्र-प्रधान उपन्यासों में चरित्र-चित्रण महत्त्व पाता है और पात्र ही परिस्थितियों और कथानक का निर्माण करते हैं। कथा संकोच अन्तर्द्वन्द्व मनोविज्ञान की प्रधानता पात्रों की भीड़ का अभाव व्यक्ति-वैचित्र्य आदि चरित्र-प्रधान उपन्यासों की सामान्य विशेषताएँ होती हैं। इलाचन्द्र जोशी जैनेन्द्र और अज्ञेय के उपन्यास चरित्र प्रधान उपन्यास ही हैं।

(ग) तात्त्विक दृष्टि से तीसरे प्रकार के उपन्यास होते हैं घटना-चरित्र-सापेक्ष —

३
उपन्यासों का कोटिक्रम
और
प्रेमचन्द के उपन्यास



साहित्य की इस विधा (उपन्यास) का इतना नाना विध विकास हो चुका है और हो रहा है कि इसका समुचित वर्गीकरण एक कठिन समस्या ही है। भिन्न भिन्न दृष्टि से उपन्यासों के भिन्न-भिन्न रूप हैं। अतः अध्ययन की सुविधा के लिए हम चार प्रकार से उपन्यासों के रङ्ग-रूप उनकी भिन्न-भिन्न शैलियों और प्रवृत्तियों का अध्ययन कर सकते हैं—१ रचना तत्त्वों की दृष्टि से २ कथ्य विषय की दृष्टि से ३ कथन-शैली की दृष्टि से और ४ यथार्थ और आदर्श के आधार पर।

१ रचना-तत्त्वों की दृष्टि से—यद्यपि उपन्यास में कथानक चरित्र-चित्रण संवाद भाव रस उद्देश्य देशकाल-वातावरण आदि सब तत्त्व सामान्यतः रहते ही हैं किन्तु तो भी कई उपन्यासों में कथानक या घटना अथवा चरित्र-चित्रण या देश काल-वातावरण अथवा उद्देश्य या भाव-रस आदि किसी एक तत्त्व की प्रधानता दिखाई देती है। इस तत्त्व विशेष की प्रधानता के आधार पर उपन्यासों की कोटियाँ इस प्रकार होती हैं—(क) कथानक या घटना प्रधान उपन्यास (ख) चरित्र-प्रधान उपन्यास (ग) घटना चरित्र समन्वित उपन्यास (घ) देशकालवातावरण-प्रधान उपन्यास (ङ) उद्देश्य-प्रधान और (च) भाव-प्रधान उपन्यास।

(क) कथानक प्रधान उपन्यास—जिन रचनाओं में कथानक और घटनाओं का आयोजन इस प्रकार होता है कि पाठक घटनाओं के वैचित्र्य और आकस्मिकता तथा तज्जन्य उत्सुकता व कौतूहल में ही लीन रहता है उन्हें कथानक या घटना प्रधान उपन्यास कहते हैं। हिन्दी में आरम्भिक युग में ऐसे उपन्यास अनेकों लिखे गये। हिन्दी के तिलस्मी-जासूसी एवं साहसिक उपन्यास अब भी के जासूसी एवं साहसिक उपन्यासों के स्तर तक नहीं पहुँच सके। रूसी लेखक दस्तायवस्की का 'क्राइम एण्ड पनिशमेंट' (Crime And Punishment) भी जासूसी उपन्यास है किन्तु उसमें मानवता का भाव-रस जिस खूबी से घोला गया है वह दृष्टि हिन्दी-लेखकों में नहीं

है। राहुल सांकृत्यायन का 'शैतान की आँख' (सन् १९५४ ई०) इस दृष्टि से अच्छा उपन्यास है। ऐसे साहसिक सजीव उपन्यास हिन्दी में ढूँढे से ही दो-चार मिल जायें तो बहुत है। इसमें तिलस्म का-सा आनन्द है और साथ ही बौद्धिक सतर्कता उद्देश्य की उच्चता चित्रण की यथार्थता तथा विश्वासोत्पादक शैली उसे उच्चकोटि का साहसिक उपन्यास सिद्ध करती है।

प्रेमचन्दजी के 'वरदान' 'प्रतिज्ञा' 'कायाकल्प' आदि गोदान-पूर्व के कुछ प्रारम्भिक उपन्यासों में भी कुछ-कुछ कथानक की प्रधानता पाई जाती है। फिर भी उनमें चरित्र चित्रण का प्रयास रहता ही है। वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों में घटनाओं का वैचित्र्य खूब पाया जाता है किन्तु साथ ही उनमें भी चरित्र चित्रण का आकर्षण रहता है। वैसे ऐतिहासिक होने के कारण वे ऐतिहासिक तत्कालीन वातावरण प्रधान उपन्यास हैं। किन्तु साथ ही उनमें घटनाओं की विशेषता भी रहती है और कुछ चरित्र भी सजीव हो जाते हैं। अतः उनके उपन्यासों को चरित्र-सापेक्ष कथानक-वातावरण-प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है। उनके 'गढ़कुण्डार' में घटनाओं और वातावरण दोनों की प्रधानता है। 'मृगनयनी' में चरित्र चित्रण अन्य उपन्यासों की अपेक्षा अधिक उभरा हुआ है। अतः उसे यद्यपि घटना-चरित्र-सापेक्ष वातावरण-प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है तो भी कथा-चरित्र की मनोरमता उसमें उस प्रकार की सामञ्जस्यपूर्ण नहीं है जैसी 'गोदान' में है। प्रेमचन्द के 'गोदान' में घटना-चरित्र-वातावरण आदि सब तत्त्वों का सुन्दर सामञ्जस्य प्रस्तुत हुआ है।

(ख) चरित्र-प्रधान उपन्यास—जिन उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की विशेषता प्रमुख रहती है और लेखक का उद्देश्य आदि से अन्त तक चरित्रों के अन्तर्द्वन्द्व और मानसिक घात-प्रतिघात को प्रकट करके चरित्र की विचित्रताओं का प्रकाशन ही रहता है उन्हें चरित्र-प्रधान उपन्यास कहा जाता है। घटना-प्रधान उपन्यासों में घटनाएँ महत्त्व पाती हैं और वे ही पात्रों को भिन्न भिन्न परिस्थितियों में डालकर उनके चरित्रों की कुछ रेखाएँ प्रकट करती हैं पात्रों की चारित्रिक विशिष्टता से घटनाओं की उत्पत्ति नहीं होती। इसके विपरीत, चरित्र-प्रधान उपन्यासों में चरित्र-चित्रण महत्त्व पाता है और पात्र ही परिस्थितियों और कथानक का निर्माण करते हैं। कथा सङ्कोच अन्तर्द्वन्द्व मनोविज्ञान की प्रधानता पात्रों की भीड़ का अभाव व्यक्ति-वैचित्र्य आदि चरित्र-प्रधान उपन्यासों की सामान्य विशेषताएँ होती हैं। इलाचन्द्र जोशी जैनेन्द्र और अज्ञेय के उपन्यास चरित्र प्रधान उपन्यास ही हैं।

(ग) तात्त्विक दृष्टि से तीसरे प्रकार के उपन्यास होते हैं घटना-चरित्र-सापेक्ष —

सामञ्जस्यपूर्ण। इनमें कथा और चरित्र-चित्रण दोनों का समान महत्त्व रहता है। कथा चरित्रों पर प्रभाव डालती है और चरित्र कथा को विकसित करते हैं। दोनों एक दूसरे के पूरक सिद्ध होते हैं। प्रेमचन्द का 'गोदान' इस कोटि का सुन्दर उदाहरण है। उनके 'सेवा-सदन' 'निर्मला' 'गबन' 'कर्मभूमि' 'प्रेमाश्रम' तथा 'रङ्गभूमि' भी इसी कोटि में आते हैं। 'गोदान' में आकर तो प्रेमचन्दजी ने कथानक और चरित्र-चित्रण का अद्भुत सुन्दर संयोग प्रस्तुत किया है। हिन्दी में ऐसे सामञ्जस्यपूर्ण उपन्यास प्रचुर मात्रा में लिखे गए हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क यशपाल भगवतीप्रसाद वाजपेयी रांगेयराघव भगवतीचरण वर्मा विष्णुप्रभाकर आदि के कुछ सुन्दर उपन्यास तथा इलाचन्द्र जोशी का 'जहाज का पंछी' घटना-चरित्र समन्वित रचनाएँ हैं।

(घ) वातावरण-प्रधान उपन्यासों में देशकाल-वातावरण का सजीव चित्रण रहता है और तत्सम्बन्धी सामाजिक धार्मिक राजनीतिक नैतिक आदि परिस्थितियाँ लोगों के रीति रिवाज खान पान घर-स्थान आदि का सजीव चित्रण करना लेखक का उद्देश्य रहता है। ऐतिहासिक उपन्यासों में वातावरण की सजीवता और भी आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण हो जाती है। वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों में बुन्देलखण्ड का वातावरण सजीव हो उठा है। लेखक का उद्देश्य भी अतीत संस्कृति को तात्कालिक जीवन को प्रकाशित करके उसमें से कुछ मणियाँ चुनने का रहा है। किन्तु ऐतिहासिक उपन्यास ही वातावरण प्रधान हों ऐसी बात नहीं। सामाजिक उपन्यास भी वातावरण-प्रधान हो सकते हैं होते हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों में वातावरण अत्यन्त सजीव रहता है। वातावरण प्रधान उपन्यासों में ऐतिहासिक सत्य का पुट रहता ही है। उनमें चाहे पात्रों के नाम और घटनाएँ सत्य न हों सांस्कृतिक वातावरण के रूप में उनका ऐतिहासिक महत्त्व रहता है। प्रेमचन्द के उपन्यास यद्यपि कल्पित कथानकों पर ही आधारित हैं किन्तु उनमें कम-से-कम पिछले पचासों वर्षों के भारतीय जीवन का जो यथार्थ चित्रण है वह बड़ी-बड़ी इतिहास की पुस्तकों में भी नहीं मिल सकता। अतः उनका ऐतिहासिक महत्त्व सब दिन बना रहेगा। ऐतिहासिक उपन्यास भी दो तरह के होते हैं—एक शुद्ध ऐतिहासिक अर्थात् जिनमें घटना तथा पात्रों की सत्यता रहती है, दूसरे वे जिनमें केवल वातावरण की सत्यता रहती है—जैसे वृन्दावनलाल वर्मा का 'विराटा की पद्मिनी'। कहना न होगा कि प्रेमचन्द के उपन्यास सैकड़ों वर्षों के पश्चात् भी इस दूसरी कोटि के ऐतिहासिक उपन्यास माने जायेंगे।

हिन्दी में पिछले दस-बारह वर्षों में आंचलिक उपन्यासों का भी प्रचलन हुआ है। ये उपन्यास शुद्ध वातावरण प्रधान हैं। इनमें जनपदीय संस्कृति भाषा-बोली रीति-नीति खान-पान व्यवहार तथा अन्य सब परिस्थितियों का सजीव चित्रण

रहता है। 'मैला आँचल' जैसे उपन्यासों में तो एक तरह थैकरे के (Vanity Fair) 'वैनेटी फेयर' की तरह समाज ही हीरो बना हुआ है।

(ङ) हिन्दी में भाव-प्रधान उपन्यासों की संख्या गिनती की है। वास्तव में उपन्यास का कलेवर बड़ा होने से इसमें भावुकता का इतना विस्तार अस्वाभाविक ही हो जाता है। भाव प्रधानता के साथ उपन्यास-कला का सहज विकास सम्भव नहीं है। आरम्भ में व्रजनन्दन सहाय आदि के जो दो-चार उपन्यास लिखे हैं वे अस्वाभाविकता के दोष से मुक्त नहीं हैं। आज भाव-प्रधान उपन्यास विशेष नहीं लिखे गए। वैसे उपन्यास में भावों और रसों की सृष्टि रहती ही है। प्रसादजी का 'तितली' सुन्दर भाव-पूर्ण उपन्यास है। भाव-प्रधान उपन्यासों का एक रूप पिछले वर्षों में हास्य प्रधान उपन्यासों का विकसित हुआ है। निरालाजी के 'बिल्लेसुर बकरिहा' तथा 'कुल्ली भाट' सामाजिक व्यंग्य-प्रधान उपन्यास हैं। इसी प्रकार द्वारकाप्रसाद का 'मुसाहब-बेमरज़ल' अमृतलाल नागर का 'सेठ बाँकेमल' आदि हास्य-रस के उपन्यास हैं। परन्तु भाव-प्रधान उपन्यासों की जो एक विशेषता भावात्मक शैली होती है वह इनमें नहीं है। अतः इन्हें भी सच्चे अर्थों में भाव-प्रधान उपन्यास नहीं कह सकते। सच तो यह है कि उपन्यास में भावुकता का दूर तक समावेश होना ही कठिन है।

(च) उद्देश्य को प्रमुखता देकर भी उपन्यास लिखे जाते हैं। पर उनमें कला का ह्रास अवश्यम्भावी है। हिन्दी के आरम्भिक उपन्यासों में उपदेश और सुधार का उद्देश्य स्पष्ट रहने के कारण कलात्मकता का अभाव रहा है। वैसे तो प्रत्येक रचना सोद्देश्य लिखी जाती है पर जब उद्देश्य की प्रधानता हो जाती है—उद्देश्य रस का सहारा लेकर प्रकट नहीं होता—तो औपन्यासिक आनन्द को हानि पहुँचती है। हिन्दी के अनेक प्रगतिवादी उपन्यासों में बीच-बीच में उद्देश्य अलग-सा उभर आ पड़ता है जिसके कारण सरसता में कमी आ जाती है। 'बाबा बटेसरनाथ' जैसी रचनाओं को तो उद्देश्य-प्रधान ही कहा जा सकता है। गुरुदत्त के अधिकांश उपन्यासों में उद्देश्य कथारस या भावरस में घुलकर ही प्रकट हुआ है फिर भी कहीं-कहीं जहाँ वह अलग-सा उभर गया है वहीं उपन्यास की रोचकता मिट गई है। फिर भी इनके उपन्यासों को उद्देश्य प्रधान नहीं कहा जा सकता। प्रेमचन्द के उपन्यासों में उद्देश्य प्रायः कथारस या भाव-संवेदनाओं का रूप लेकर ही प्रकट हुआ है। कहीं कहीं किसी उपन्यास में किसी एक-आध स्थान पर इस बात का अपवाद भले हो अन्यथा प्रेमचन्द का उद्देश्य प्रच्छन्न (कथा का रूप बना) ही प्रकट हुआ है। 'गोदान' में तो उद्देश्य सर्वथा सरस है और महान् है।

२—वर्ण्य विषय की दृष्टि से उपन्यास की कोई सीमा नहीं। धार्मिक-पौराणिक

विषयों पर भी उपन्यास लिखे जा सकते हैं यद्यपि हिन्दी में प० गौरीशंकर मिश्र के 'बलिदान का मन्दिर' (१६४१ ई०) और 'जयदेव' (१६४२ ई०) आदि एक-दो अधीत धार्मिक उपन्यास ही लिखे गए हैं। सामाजिक विषयों पर ही अधिक उपन्यास लिखे गए हैं जिनमें समाज की भिन्न-भिन्न समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार पारिवारिक विषय पर पारिवारिक उपन्यास वैयक्तिक समस्याओं से सम्बन्धित वैयक्तिक उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास मनोवैज्ञानिक जासूसी साहसिक आदि अनेक विषयों पर भिन्न भिन्न प्रकार के उपन्यास लिखे गए हैं। प्रेमचन्द के उपन्यास सामाजिक हैं क्योंकि उनमें समाज की विविध समस्याओं का सजीव चित्रण हुआ है। यद्यपि 'कर्मभूमि' आदि में कुछ राजनैतिक पुट भी आ गया है पर प्रेमचन्द के किसी उपन्यास को राजनैतिक नहीं कहा जा सकता। श्री वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास ऐतिहासिक सामाजिक हैं। इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय के वैयक्तिक-मनोवैज्ञानिक कहे जा सकते हैं।

१—उपन्यासों का वर्गीकरण शैली की दृष्टि से भी किया जाता है। हिन्दी उपन्यासों में अनेक शैलियों का विकास हुआ है।

(क) वर्णन विवरणात्मक शैली—शुद्ध वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हिन्दी के प्रारम्भिक तिलस्मी जासूसी ऐय्यारी के घटनाप्रधान उपन्यासों में हुआ। तब सारी कहानी लेखक के वर्णन और घटना विवरण के रूप में ही प्रकट की जाती थी। संवाद-शैली का प्रयोग भी थोड़ा होता था और विश्लेषण की भी आवश्यकता नहीं होती थी। वस्तु-चित्रण या पूर्ण विवरण सब लेखक या उसके नायक कथाकार के अधीन रहता था।

(ख) वर्णन-विश्लेषणात्मक शैली—प्रारम्भिक उपन्यासों के बाद हमारे उपन्यासों में कोरा वर्णन या विवरण ही नहीं रहा जीवन की व्याख्या भी प्रस्तुत की जाने लगी। प्रेमचन्द के 'वरदान' 'प्रतिज्ञा' 'कायाकल्प' में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग अधिक रहा है। किन्तु 'सेवासदन' से 'गोदान' तक पहुँचते-पहुँचते प्रेमचन्द जीवन के पूर्ण व्याख्याता बन गये। अतः उनकी अन्य सब रचनाओं में वर्णन-विश्लेषणात्मक शैली का ही प्रयोग हुआ है। वे घटनाओं और वस्तु का विवरण और चित्रण करने के साथ-साथ जीवन की व्याख्या या विश्लेषण भी प्रस्तुत करते जाते हैं। 'गोदान' में इस समन्वित शैली का परम उत्कर्ष पाया जाता है। यशपाल चतुरसेन शास्त्री भगवतीचरण वर्मा भगवतीप्रसाद वाजपेयी गुरुदत्त आदि की रचनाओं में भी इसी शैली का प्रयोग हुआ है। वर्माजी की 'मृगनयनी' में यद्यपि वर्णनात्मक शैली का अधिक प्रयोग हुआ है, पर विश्लेषण-व्याख्या भी बीच-बीच में पाई जाती है।

(ग) विश्लेषणात्मक शैली—प्रेमचन्दोत्तर काल के हमारे कुछ उपन्यासों में मनो

वैज्ञानिक मूढ़ता आई। अतः वर्णन-प्रधान शैली के स्थान पर विश्लेषण-प्रधान शैली की आवश्यकता प्रतीत हुई। इलाचन्द्र जोशी अज्ञेय और जैनेन्द्र ने विशेष रूप से इसी शैली को अपनाया। जोशीजी के सभी उपन्यास विश्लेषण प्रधान शैली में लिखे गए हैं। इनमें घटनाओं का वर्णन मामूली होता है पर पात्रों की मन स्थितियों अन्त र्द्वन्द्वों तथा परिस्थितियों का विश्लेषण अधिक रहता है।

(घ) संवाद-प्रधान शैली—पहले भी कहा जा चुका है कि आरम्भ में कुछ उपन्यास पारसी नाटक मण्डलियों के प्रभाव से नाटकीय शैली में भी लिखे गए थे जैसे—रामलाल का 'मुमबदन उर्फ रजिया बेगम' (सन् 1912) नयमयोपाल का 'उर्वसी (1925 ई०) आदि। बाद में यह शैली कुछ वर्णन शैली को साथ लेकर चली। वृन्दावनलाल वर्मा के कुछ उपन्यासों में वर्णनयुक्त संवाद प्रधान शैली के ही दर्शन होते हैं। उनका 'कचनार' इसका सुन्दर उदाहरण है उनकी समस्त कथा-सामग्री छोटे छोटे सुन्दर संवादों के रूप में प्रकट हुई है। बीच-बीच में वर्णनशैली भी है पर संवाद शैली मुख्य है।

कथा कहने के ढङ्ग भी बहुत होते हैं। एक है इतिहासकार की भाँति द्रष्टा रूप में कथा कहने का ढङ्ग। इस प्रणाली में लेखक स्वयं सब प्रकार के वर्णन विवरण और विश्लेषण देता है। यह प्रणाली अपेक्षाकृत सरल होती है। प्रेमचन्द के सब उपन्यास इसी शैली में लिखे गये हैं। कथा-पद्धति का दूसरा रूप है आत्म-कथात्मक पद्धति। इसमें एक या एकाधिक पात्र अपनी कथा 'मैं' शैली में प्रस्तुत करते हैं। इस शैली का सफल निर्वाह लेखक से सतर्कता चाहता है। इससे कथा और भी विश्वसनीय बन जाती है। लेखक बीच में नहीं आता। जैनेन्द्र के 'सुखदा' 'व्यतीत' अज्ञेय का 'शेखर' जोशीजी के 'प्रत्यागत' 'जिप्सी' आदि में एक प्रमुख पात्र अपनी कथा कहता चलता है। अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' और इलाचन्द्र जोशी के 'पर्दे की रानी' में एकाधिक पात्र अपनी-अपनी परस्पर सम्बद्ध कहानी कहते हैं। मनोवैज्ञानिक चरित्र-प्रधान उपन्यासों में इस शैली का विशेष प्रयोग हुआ है।

तीसरी शैली है—पत्र-शैली। इसका अधिक प्रचलन हिन्दी में नहीं हुआ। वैसे भी इस शैली में कथा चरित्र चित्रण आदि उपन्यास-कला के अङ्ग अधूरे ही रह जाते हैं। पेचन शर्मा उग्र का 'चन्द हसीनों के खतूत' प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' का उपन्यास 'पाप और पुण्य' (1930 ई०) इसी शैली की रचनाएँ हैं।

चौथी प्रणाली है दैनन्दिनी (डायरी) वाली। यह भी आत्मकथा शैली का ही एक रूप है क्योंकि डायरी लिखने वाला 'मैं' शैली ही अपनाता है। हिन्दी में यह शैली भी विशेष प्रचलित नहीं हुई। कुछ उपन्यासों में—जैसे, इलाचन्द्र जोशी के 'संन्यासी' (पुत्रामयी) और 'निर्वासित' में—पात्रों की डायरी से काम लिया गया है

पर उनकी शैली समग्रतः डायरी जैसी नहीं है। इस शैली में शायद एकमात्र 'शोभित-छपथ' नामक उपन्यास लिखा गया है।

इसके अतिरिक्त कथा और भी अनेक रूपों में प्रस्तुत की जाती है। कुछ उपन्यासों में असम्बद्ध घटनाओं के रूप में कथा प्रकट की जाती है घटनाओं का पूर्वापर सम्बन्ध नहीं होता विभिन्न व्यक्तियों या सामाजिक वर्गों से सम्बन्धित जीवन अलग-अलग झाँकियों के रूप में प्रकट किया जाता है। या तो ये विभिन्न झाँकियाँ एक नायक के कारण अलग-अलग जुड़ी रहती हैं या एक ही उद्देश्य से सम्बन्ध रखती हैं। इलाचन्द्र जोशी के 'जहाज का पंछी' में यह ढङ्ग बहुत सुन्दर रूप में अपनाया गया है। उसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के जीवन की झाँकियों को एक नायक द्वारा दर्शाया गया है। एक और ढङ्ग पात्रों के आधार पर कथा-शैली के प्रयोग का होता है। इसमें लेखक दो-तीन पात्रों को लेता है और उनकी बारी-बारी कथा प्रकट करता हुआ अन्त में किसी एक परिस्थिति में उनको मिला देता है। इस प्रकार की कथा उपसंहार में सम्बद्ध हो जाती है। राजा राधिकारमण का 'राम रहीम' इसका सुन्दर उदाहरण है।

असम्बद्ध घटनाओं की उपर्युक्त शैली से मिलती जुलती विभिन्न कहानियों के रूप में उपन्यास लिखने की पद्धति भी हिन्दी में पिछले कुछ वर्षों से प्रचलित हुई है। हिन्दी में यह एक बड़े साहस का प्रयोग है। विश्व साहित्य में भी इस शैली का प्रयोग विशेष नहीं हुआ। श्री धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' तथा शिवप्रसाद मिश्र रुद्र का 'बहती गंगा' इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं। इसमें परस्पर स्वतन्त्र कहानियों में कौशल के साथ सम्बन्ध-सूत्र जोड़ दिया जाता है। 'बहती गंगा' में काशी की दो सौ वर्षों की जीवनधारा को सत्रह तरंगों में प्रकट किया गया है। लेखक का कथन है—"ये तरङ्गें हैं एक-दूसरे से अलग परस्पर स्वतन्त्र परन्तु धारा और तरङ्ग-न्याय से आपस में बँधी हुई।"

समय विपर्यय (Time-shift) पद्धति का भी कुछ उपन्यासों की घटनाओं के प्रस्तुत करने की दृष्टि से प्रयोग हुआ है। इसमें कालक्रम के अनुसार क्रमिक रूप में कथा-प्रसङ्ग और घटनाएँ प्रस्तुत नहीं की जातीं। जोशीजी के 'पर्दे की रानी' में पहले निरंजना के हास्टल-प्रवेश की कथा प्रस्तुत की गई है फिर अगले प्रकरण में उसकी पूर्वकथा पर प्रकाश डाला गया है। जैनेन्द्र की 'कल्याणी' समय विपर्यय का सुन्दर उदाहरण प्रकट करती है।

कुछ उपन्यास चेतना-प्रवाह पद्धति पर भी लिखे गये हैं। हिन्दी में यद्यपि जेम्स ज्वायस के 'यूलिसिस' वर्जिनिया वुल्फ के 'लाइट हाउस' जैसा चेतना प्रवाह नहीं मिलता तो भी अज्ञेय प्रभाकर माचवे आदि ने इसका कुछ प्रयोग किया है।

भगवती का उपन्यास परन्तु इस पद्धति का अच्छा आभास देता है।

इस प्रकार वर्णन-शैली की दृष्टि से कथा-शिल्प में हमारे उपन्यासकारों ने अनेकानेक प्रयोग किए हैं। कहना न होगा कि प्रेमचन्द ने इस दिशा में कोई प्रयोग नहीं किया। उनके उपन्यासों में कथा का सीधा-सादा रूप ही पाया जाता है। उसी को उन्होंने रोचक ढङ्ग से प्रस्तुत किया है। कथा में रोचकता का गुण होना ही उपन्यास की पहली शर्त होती है, प्रयोग-चमत्कार दिखाना नहीं। अतः प्रेमचन्द के सामने यही उद्देश्य था। प्रयोगों के लिए उनके पास समय नहीं था, न उन्हें आवश्यकता ही थी। जीवनानुभूतियों की इतनी विपुल रोचक सामग्री उनके पास थी कि उसे चाहे जिस ढङ्ग से प्रस्तुत कर देते, प्रभाव उत्पन्न किये बिना न रहती। अतः कथा-शिल्प के प्रयोगों के बिना भी उनके उपन्यास प्रयोगवादियों से अधिक सफल हैं।

४. यथार्थ और आदर्श की दृष्टि से कुछ रचनाएँ अति यथार्थवाद के रूप में लिखी गई हैं, जैसे उग्र जी तथा ऋषभचरण जैन आदि के कुछ उपन्यास। आरम्भ में कुछ आदर्शवादी रचनाएँ भी हुईं। किन्तु प्रेमचन्द ने कथा-साहित्य में यथार्थ और आदर्श का सामञ्जस्य प्रस्तुत करके एक स्वस्थ राह दिखाई। उनका 'सेवासदन' इस दिशा में नया मोड़ था। 'गोदान' ने स्वस्थ यथार्थवाद की ओर और भी उत्तम नया मोड़ प्रस्तुत किया। आजकल इसी स्वस्थ यथार्थवाद या आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को ही अपनाना उचित समझा जाता है। यशपाल, सुमित्रानन्दन पन्त, भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, उपेन्द्रनाथ अश्क, जैनेन्द्र आदि सबमें जीवन की स्वस्थ प्रेरणाएँ देने वाला यथार्थवाद या आदर्शोन्मुख यथार्थवाद पाया जाता है। प्रेमचन्द के उपन्यास सामाजिक यथार्थवाद के सच्चे निदर्शक हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से हिन्दी उपन्यास की भिन्न भिन्न कोटियाँ और प्रेमचन्द के उपन्यासों का कोटिक्रम स्पष्ट हुआ होगा। उपन्यास की शिल्प-टेकनीक समझने की दृष्टि से भी यह प्रकरण उपयोगी रहा होगा, ऐसी आशा है। प्रेमचन्द के उपन्यास ऐतिहासिक वर्णन-विस्मयात्मक शैली में रचे गए घटना-चरित्र वातावरण-समन्वित आदर्शोन्मुख यथार्थवादी सामाजिक उपन्यास हैं। 'गोदान' में शैली-शिल्प का चरमोत्कर्ष पाया जाता है।

४

प्रेमचन्द की औपन्यासिक चेतना का क्रमिक विकास



गोदान पूर्व के उपन्यास

प्रेमचन्द की पहली रचना (अप्राप्य) के सम्बन्ध मे पहले कहा जा चुका है कि मामू के मटना प्रसङ्ग को उन्होंने किस प्रकार प्रहसन का रूप दिया। इससे ही उनकी समाज सापेक्ष दृष्टि का पता चल जाता है। हिन्दी में 'सेवासदन' के प्रकाशन से पूर्व प्रेमचन्द उर्दू में कई उपन्यास और कहानियाँ लिख चुके थे। इनमें 'रूठी रानी' 'हमखुरमा-व-हमसवाब' (१८६८ ई०) 'प्रतापचन्द्र' 'श्यामा' (१६०१ ई०) 'वरदान' (१६ २ ई०) 'प्रेमा' 'कृष्णा (१६०२ ई) 'हम खुर्मा व हम सवाब' (१६ ५ ई०) और 'प्रतिज्ञा (१६०६ ई) नामक उपन्यासों का पता चलता है। 'रूठी रानी' ऐतिहासिक आधार पर लिखा गया है। इसमें अतीत इतिहास की हमारी बुराइयों को प्रकट करते हुए, राजपूतों की आपसी फूट और ईर्ष्या बहु विवाह की खराबियाँ राजदरबारों के द्वेष-भरे षड्यन्त्र सामन्तीय व्यवस्था में नारी की शोचनीय दशा आदि पर प्रकाश डाला गया है। प्रेमचन्द नारी की शोचनीय दशा के प्रति आरम्भ से ही संवेदनशील रहे हैं। उन्होंने कहा है — 'बेटी बिन सींगो की गाय है। माता-पिता उसकी रक्षा करते हैं और जिसके पल्ले चाहे बाँध देते हैं।

'प्रतापचन्द्र' और 'वरदान' एक ही रचना के दो रूप हैं तथा 'प्रतिज्ञा' 'प्रेमा' और 'हम खुर्मा व हम सवाब' भी एक ही विषय की अलग-अलग रचनाएँ हैं। अन्तिम अप्रकाशित रही और अब अप्राप्य है। इसी प्रकार सम्भवतः 'श्यामा' और 'कृष्णा' भी एक ही रचना के दो नाम प्रचलित हो गये होंगे। ये दोनों भी अप्राप्य हैं।

'वरदान' (१६०२ ई०) की कहानी असफल प्रेम की कहानी है। पर प्रेमचन्द इसमें विफल प्रेमी प्रताप के प्रेम का उदात्तीकरण करके उसे समाज-सेवी बना देते हैं। इससे प्रतीत होता है कि प्रेमचन्द आरम्भ से ही समाज-सेवा का आदर्श अपना कर चले हैं। इस रचना मे हमारी परम्परागत वैवाहिक पद्धति के दोष को

प्रकट किया गया है। प्रताप गरीब लड़का है विरजन अमीर घराने की है। बालपन के साहचर्य से विकसित दोनों का स्वाभाविक प्रेम समाज की दीवार से टकरा कर रह जाता है। अमीर की लड़की का विवाह गरीब से कैसे हो सकता है? दोनों छटपटाते रह जाते हैं। शरत्चन्द्र के 'देवदास' जैसी करुण परिस्थिति इसमें पाई जाती है। पर जहाँ प्रेमचन्द देवदास की तरह प्रताप को निकम्मा और शराबी न बनाकर देशसेवी बनाने का प्रशंसनीय कार्य हाथ में लेते हैं वहाँ वह कथा को भली प्रकार निभा नहीं सके। इसी से 'देवदास' की तुलना में यह रचना बहुत हल्की प्रतीत होती है।

यह रचना संयोग तथा घटनाओं पर आधारित एक साधारण रचना है। आरम्भिक रचना का हल्का होना कोई हीनता की बात नहीं। इसमें कथा शिथिल है चरित्र-चित्रण की कमी है और कई अस्वाभाविक परिस्थितियाँ पाई जाती हैं। विवाहोपरान्त विरजन की मानसिक स्थिति को प्रेमचन्द मनोवैज्ञानिक ढंग पर प्रकट नहीं कर सके। वह एक साथ ही कमलाचरण (अपने पति) और प्रताप दोनों से प्रेम करती प्रतीत होती है। प्रताप के वियोग में वह बीमार हो जाती है और उसके आने पर ही अच्छी होती है। किन्तु इसी के साथ यह भी दिखाया गया है कि विरजन कमला के प्रति भी प्रेमपूर्ण हृदय रखती है। यह स्थिति मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दोषपूर्ण ही है।

इस दोष का मुख्य कारण है प्रेमचन्द की आदर्शवादी दृष्टि। वास्तव में प्रेमचन्द एक ओर तो विरजन को कमला के प्रति अपना धर्म निभाने का परम्परागत आदर्श पालने का आग्रह रखकर चले हैं दूसरी ओर प्रताप के चरित्र को ऊँचा रखने के मोह में भी भटक गए हैं। इसी से दोनों के चरित्रों में अस्वाभाविकता-सी आ गई है। प्रताप के सम्बन्ध में दिखाया गया है कि वह पाँच-सात मिनट माधवी से बात होते ही कहने लगता है कि यदि तुमने मेरे लिये योगिनी बनना स्वीकार कर लिया है तो मैं भी तुम्हारे लिए इस संन्यास और वैराग्य (अब वह बालाजी नाम से वीतरागी बना हुआ है) को त्याग सकता हूँ। किन्तु बाद में वह पीछे हट जाता है। कमला के मरने पर प्रताप और विरजन का मिलाप भी इसी आदर्श के हेतु नहीं कराया गया। इस प्रकार प्रेमचन्द की आदर्शवादिता इसमें परिहास बनकर रह गई है। यहाँ आदर्श यथार्थ के लिए भटक रहा है। सामाजिक परिवेश भी इस रचना में बहुत सीमित है। फिर भी इस रचना के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्द के पास समाज की बुराइयों और विकृतियों के बारे में कहने को बहुत-कुछ है पर वह कथारस और भाव रस में डुबाकर अभी उन बातों को कह नहीं पा रहे हैं। इसी से कोरा उल्लेख कर रहे हैं। विरजन के पत्रों तथा अन्य स्थलों पर ये सीधे उल्लेख देखे जा सकते हैं। विरजन एक पत्र में लिखती है— "क्या सुनती थी और

क्या दयती है । टूटे-फूटे फूस के झोंपड़े मिट्टी की दीवारें घरों के सामने कूड़े-करकट के बड़े-बड़े ढेर, य दृश्य देखकर जी चाहता है कि कहीं चली जाऊँ ! मनुष्यों को देखो तो उनकी शोचनीय दशा है । हड्डियाँ निकली हुई हैं । वे विपत्ति की मूर्तियाँ और दरिद्रता क जीवित चित्र हैं । किसी के शरीर पर एक बेफटा वस्त्र नहीं है और ऐसे भाग्यहीन कि रात-दिन पसीना बहाने पर भी कभी भरपेट रोटियाँ नहीं मिलतीं।" इसी प्रकार अन्य पत्रा में गवई गाँवों की बुरी हालत महाजनों के शोषण साहूकारों जमींदारों के अत्याचारों का उल्लेख हुआ है । इसी प्रकार प्रतापचन्द नीची जाति के लोगों मे बढ़ता है उनसे सहानुभूति प्रकट करता है । कहीं प्रेमचन्द रिश्वतखोर थानेदार की काली करतूतों का उल्लेख करते हैं कहीं अप्र व कलक्टर से मिलने के लिए जाने वाले डिप्टी श्यामचरण को अपमानित अनुभव कराके भारतीयों का आत्म गौरव जगाने की कोशिश की गई है ।

इस प्रकार प्रेमचन्द के पास सामाजिक सामग्री बहुत दिखाई देती है । पर वह यहाँ उसे कथा रस के रूप में प्रस्तुत नहीं कर सके । सब कथन ऊपरी उल्लेख-से हो गए हैं । वह इन्हें कथा रस और भाव-संवेदनाओं में डुबाने की राह ढूँढ रहे हैं जो उन्हें 'सेवासदन' आदि अगले उपन्यासों में मिल गई ।

प्रतिज्ञा (१९०६ ई०)

'वरदान' की अपेक्षा प्रतिज्ञा एक सुलझी हुई सुन्दर रचना है । इसमे विधवा नारी की समस्या है । इसका भी सामाजिक परिवेश सीमित ही है । इसमें प्रेमचन्द अस्वाभाविकता के दाप से बहुत-कुछ बच गए हैं । इस उपन्यास का सम्बन्ध प्रेमचन्द के व्यक्तिगत जीवन से भी है । इस समय प्रेमचन्द विधवा-समस्या पर विचार-मग्न थे । इसीका परिणाम है कि सन् १९ ५ मे उन्होंने शिवरानीदेवी नामक एक विधवा से विवाह करके अपने गार्हस्थ्य को सुखी बनाया । ऐसा लगता है कि अपने उपन्यास की एक बहुत बड़ी यथार्थ कमी को उन्होंने जीवन की इस घटना से पूरा किया है । वह इस प्रकार कि 'प्रतिज्ञा' में विधवा पूर्णा कहीं ठिकाना न पाकर, कमलाप्रसाद के आश्रय को भी कलुषित जान कर, अमृतराय के विधवाश्रम मे चली जाती है । पूर्णा विधवा है और समझदार है । उसका विवेक पुनर्विवाह के पक्ष में है । अमृतराय युवा है और उसका संकल्प है कि विधवा से ही शादी करेगा । ऐसी अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करके भी प्रेमचन्द ने पूर्णा और अमृतराय को नहीं मिलाया । समाज के सामने इस प्रकार का साहसपूर्ण हल प्रस्तुत करते हुए भी प्रेमचन्द केवल संकेतों तक रह गए । शायद उनका आदर्शवाद आड़े आ गया । वह इसे यथार्थ रूप देने का साहस नहीं दिखा सके । सम्भवत अपने उपन्यास की इसी कमी को उन्होंने शिवरानी देवी से विवाह करके पूरा किया है ।

कला की दृष्टि से यह रचना 'वरदान' से एक कदम आगे है। इसमें पूर्णा और कमलाप्रसाद के मानसिक संघर्षों का अच्छा चित्रण हुआ है यद्यपि प्रेमचन्द का मनोविश्लेषण यहाँ भी सामाजिक ऊपरी है अर्थात् पात्रों की मनोवृत्तियों से वे उतना ही सरोकार रखते हैं जितने से सामाजिक पहलुओं पर प्रकाश पड़ सके। पात्रों के वैयक्तिक अन्तर्द्वन्द्व से उन्हें कोई मतलब नहीं। यही कारण है कि अमृतराय सुमित्रा दीनानाथ आदि का चरित्र-चित्रण विशेष सजीव नहीं बन सका। उपन्यास की कथा यद्यपि 'वरदान' से अधिक सुलझी हुई है तथापि 'निर्मला' जैसी सुगठित एवं रोचक नहीं है।

सेवासदन (सन् १९१६)

प्रेमचन्द के 'सेवासदन' ने हिन्दी-उपन्यास साहित्य में नई चेतना नया भिन्न नई दृष्टि—एक प्रकार से नया मोड़ उपस्थित किया। सर्वप्रथम इस रचना में सामाजिक समस्याओं का व्यापक और गहरा अध्ययन प्रकट हुआ। इसमें ही सर्वप्रथम समाज का कङ्काल पूरी तरह दिखाई दिया। इसमें प्रेमचन्द का मुख्य ध्यान वेश्या समस्या पर रहा। पर उसके साथ उसकी कारणभूत तथा अन्य अनेक बुराइयों का पर्दाफाश किया गया है।। समाज की किन बुराइयों से हमारी सुमन जैसी कुल कन्याएँ वेश्याएँ बनती हैं, यह अत्यन्त सजीवता और मनोवैज्ञानिकता के साथ प्रकट किया गया है। किस प्रकार समाज की एक बुराई दूसरी को जन्म देती है और इस प्रकार सामाजिक बुराइयों का घटाटोप जीवन को अवरुद्ध कर देता है, यह प्रेमचन्द ने अच्छी तरह दर्शाया है।

सुमन एक अच्छे कुल की कन्या है जो माता-पिता के लाड़-प्यार में पली है। उसके पिता दारोगा कृष्णचन्द्र पुलिस इन्स्पेक्टर हैं—बड़े ईमानदार, सज्जन पुरुष जो एक पैसा रिश्वत नहीं लेते और इसी से अपने विभाग के सभी पुलिस-कर्मचारियों अफसरों और मातहतों की नजरों में खटकते हैं। प्रेमचन्द ने यहाँ पुलिस के भ्रष्टाचार पर अच्छा प्रकाश डाला है। पुलिस विभाग का माहौल ही ऐसा है कि इसमें रिश्वत न लेने वाला ईमानदार न कभी सुख से नहीं रह सकता। दारोगा कृष्णचन्द्र अपनी प्यारी पुत्री के लिए वर की तलाश करते हैं। जहाँ-कहीं योग्य वर देखते हैं दहेज की भारी माँग होती है। दहेज कहाँ से दें ? उन्होंने तो कभी एक पैसा भी रिश्वत का नहीं लिया। समस्या उपस्थित हो जाती है। अब उन्हें पछतावा होता है। ऐसे समाज में साधु बने रहने से क्या लाभ ? वह चाहते तो अब तक लाखों रुपया रिश्वत से जमा कर सकते थे। दहेज की समस्या उन्हें अब रिश्वत लेने को तैयार करती है। समाज की एक बुराई दूसरी को जन्म देती है। रिश्वत लेने का अवसर भी तुरन्त उपस्थित हो जाता है क्योंकि समाज में चोरों डाकुओं लोभकों और अन्यायियों की कमी नहीं है। इन सब से रिश्वतें उड़ाने के अवसर पुलिस वालों

को हरदम प्राप्त रहते हैं।

यहाँ प्रेमचन्द ने महन्त रामदास के प्रसङ्ग-द्वारा धर्म के ढोंग और सामन्तीय शोषण का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। महन्त रामदास बाँकेबिहारी के नाम पर गरीबों का शोषण करता है। उसके पास मथारे की भूमि है। असामी खेती करते हैं। वह मुफ्त की खाता है गरीब असामियों का शोषण करता है। मुफ्त की कमाई से उसने कई मुसण्डे पाल रखे हैं जिससे गरीब किसानों को भयभीत रखता है। १० प्रतिशत सूद खाता है। बाँकेबिहारी के नाम पर पीटने वैस जिसवाने बेदखल कराने यहाँ तक कि नरक भिजवा देने का रौब भी उसके पास है। वह जबरदस्ती चन्दा वसूल करता है। और बेचारे चेतू अहीर को न दे सकने के कारण विरोध करने पर, इतना पिटवाता है कि बेचारा तड़प-तड़प कर मर जाता है। दारोगा कृष्णचन्द्र को अवसर मिल जाता है। महन्त से तीन हजार रुपया रिश्वत लेकर मामला को रफा दफा कर देते हैं। प्रेमचन्द की दृष्टि समाज की सभी बुराइयों पर सूक्ष्मता से जाने लगी है। दारोगा ने रुपये स्वयं हजम करने चाहे। अपने सिपाहियों को कुछ न दिया। महन्त का कारिन्दा जो दारोगा कृष्णचन्द्र को रुपयों की थैली देता है अपनी बखशीश मा चलानी चाहता है। पर इस मामले में अनभ्यस्त दारोगा किसी को हिस्सा नहीं बाँटता। अत शिकायत हो जाती है और छापा पड़ने पर दारोगा के घर से रिश्वत के रुपये बरामद हो जाते हैं। दारोगा को सजा हो जाती है।

इस परिस्थिति में सुमन का विवाह एक अधेड़ उमर के दुहाजू से ही होता है क्योंकि अच्छा वर पाने के लिए गङ्गाजली (सुमन की माता) के पास दहेज देने की सामर्थ्य नहीं थी। फूल-सी कन्या एक निर्धन कुरूप अधेड़ दुहाजू व्यक्ति के साथ बाँध दी जाती है।

प्रेमचन्द ने सुमन की उन मनोवैज्ञानिक पारिवारिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है जिनके कारण उसे दालमण्डी का कोठा सजाना पड़ता है। घर में दरिद्रता के कारण उसकी इच्छाएँ घुटी-घुटी रहती हैं। उसके द्वार के सामने गली-मुहल्ले के शोहदे और चञ्चल युवक चक्कर लगाने लगते हैं। वह सब से बचती है। जीवन की विषम परिस्थितियों से समझौता करना चाहती है। पर पारिवारिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ उसके पवित्र संस्कारों को झकझोरती जाती हैं। उसके भारतीय कुल-कन्या के संस्कारों पर विकृत सामाजिक परिस्थितियों की पे-दर-पे चोट पड़ती है। उसके घर के सामने ही भोलीबाई नामक एक वेश्या का ठाठ-बाट है। वह उसके ठाट देखती है। पर उसे वेश्या से घृणा है। उसका संस्कार कहता है कि गरीब होते हुए भी वह वेश्या से बहुत ऊँची है। पर एक दिन जब वह देखती है कि वेश्या के यहाँ मुजरे में शहर के सभी धनीमानी लोग आये हैं और

यहाँ तक कि उसका पति भी उसमें सम्मिलित हुआ है तो उसका मन ईर्ष्या से भर जाता है। उसका पति उससे कहता है कि जो धनी लोग वेश्या के यहाँ जाय वे भ्रष्ट होने से ही अच्छे आदमी नहीं कहे जा सकते। वह पति की बात मान लेती है। परन्तु जब वह भगवान् के मन्दिर में भी वेश्या का सम्मान देखती है और पार्क में बैंच पर बैठने के कारण चौकीदार उसका अपमान करता है और भोलीबाई को सलाम करता है तो वह उत्तेजित हो जाती है। उसके स्वाभिमान को एक ठोकर और लगती है। जब पद्मसिंह शर्मा-जैसे सज्जन वकील भी अपने यहाँ वेश्या भोली बाई का मुजरा कराते हैं तो उसका आत्मविश्वास टूक-टूक हो जाता है। वह सोचती है कि वेश्या का इतना सम्मान ! क्या भोलीबाई से वह रूप में कम है? क्या वह गाना-बजाना सीखकर वैसा सम्मान नहीं पा सकती?

उधर उसका पति सदा ही भय से भरा रहता है। अधेड़ व्यक्ति अपनी सुन्दर पत्नी के बारे में सहज ही शंकालु हो जाता है। उस रात जब वह अपनी सखी सुभद्रा के घर से बारह बजे लौटती है तो पति धक्के मारकर उसे घर से बाहर निकाल देता है। यह चरम स्थिति है। सुमन भी सोचती है कि आखिर उसका क्या दोष है जो उसका पति इस प्रकार का व्यवहार करता है? वह कौन से गहने गढ़वा कर लाता है? कहाँ के कपड़े पहनाता और पकवान खिलाता है कि इस प्रकार रौब जताये? जब घर के द्वार उसके लिए बन्द हो जाते हैं तो वह अनिश्चित भविष्य के पीछे भागी जाती है। भोलीबाई स्थिति को ताड़ जाती है। वह सुमन को बुलाती है। अपने पास वेश्या का जीवन बिताने के लिए रखना चाहती है। प्रेमचन्द ने यहाँ फिर उसके कुल-कन्या के संस्कारों की प्रबलता दिखाई है। वह भोलीबाई के पास न रहकर, एक अलग कोठरी में रहने लगती है, सिलाई आदि का काम-धन्धा करके अपना निर्वाह करना चाहती है। पर वाह रे समाज ! तू कब किसी असहाय अबला को सुरक्षित छोड़ता है? लोफरे और गुण्डे सुमन का जीना मुश्किल कर देते हैं। आखिर उसे भोलीबाई की शरण लेनी पड़ती है और गाना सिखा, संगीत आदि सीखकर दालमण्डी का कोठा सजाना पड़ता है।

प्रेमचन्द ने समाज के वीभत्स रूप का बड़ा ही सजीव चित्रण इस उपन्यास में किया है। हम पहले कह चुके हैं प्रेमचन्द के उपन्यासों का बीजभाव घृणा है। 'सेवासदन' वीभत्स रस-प्रधान उपन्यास है। सामाजिक कुरीतियों बुराइयों तथा तत्सम्बन्धी बुरे व्यक्तियों के प्रति हमारी घृणा इसमें स्थान-स्थान पर जागृत होती है। दहेज वेश्या गमन रिश्वतखोरी पुलिस वालों के हथकण्डे धार्मिक ढोंग और नायक अमीर लोगों की विलास-भावना संकुचित दृष्टि विवाह-शादी में वेश्या के नाच-गान आदि पर अत्यधिक खर्च झूठी कुल-मर्यादा के लिए बारात वापिस लौटाना (शान्ता के विवाह

प्रसङ्ग पर) नारी के एक बार पङ्क में फँस जाने पर उसे सदा कलङ्किनी मानने की मनोवृत्ति जाति-पाँति के बन्धन छुआछूत आदि अनेक सामाजिक बुराइयों को प्रेमचन्द ने बीभत्स रस के रूप में प्रस्तुत किया है। इन सब समस्याओं को कथानक और भावरस (बीभत्स रस) में गूंथ कर प्रकट किया गया है यही इस रचना की सबसे बड़ी शक्ति है।

वेश्या-समस्या के सम्बन्ध में प्रेमचन्द अपने युग से आगे दृष्टिपात नहीं कर सके हैं। उन्होंने वेश्या-समस्या का हल वेश्याओं को नगर से दूर बसाने और उनके सुधार के रूप में ही ढूंढा है। यद्यपि वह यह संकेत भी देते हैं कि धन वा धनी लोग ही इन वेश्याओं को पालते हैं। पर इस समस्या का आर्थिक पहलू वे स्पष्ट नहीं कर सके हैं। फिर भी हमारी कुल-कन्याओं के वेश्या बनने में सामाजिक और पारिवारिक परिस्थितियों का उत्तरदायी ठहराने में वह पूरी तरह सफल हुये हैं। साथ ही वेश्याओं —विशेष रूप से वेश्याओं की सन्तानों—के लिए नारी-सदन की स्थापना भी एक महत्वपूर्ण सुझाव कहा जा सकता है। प्रेमचन्द की रचना साफ शब्दों में पुकार रही है कि समाज का यह कुरूप बदलो तभी कल्याण सम्भव है।

इस रचना में सुमन और पद्मसिंह शर्मा—इन दो पात्रों का चरित्र-चित्रण जितनी सफलता से प्रकट हुआ है वह प्रेमचन्द को संसार का महान् उपन्यासकार कहने के लिये पर्याप्त है। इनके अतिरिक्त सदन शान्ता विट्ठलदास गजाधर सुभद्रा आदि पात्रों का चरित्र भी पर्याप्त सजीव है। दारोगा कृष्णचन्द्र के चरित्र-परिवर्तन के पर्याप्त मनोवैज्ञानिक कारण प्रेमचन्द नहीं प्रकट कर सके। इसी प्रकार गजानन्द के चरित्र का अन्तिम अंश भी बहुत-कुछ हवाई हो गया है।

कथा शिल्प में भी प्रेमचन्द को अद्भुत सफलता मिली है। यद्यपि इस रचना में भी म्यूनिसिपल कमेटी के सदस्यों का अत्यधिक वाद-विवाद आदि प्रसङ्ग मराठी के से होयये हैं और कथा के स्वाभाविक विकास-क्रम और रस में बाधा पहुँचाते हैं तथापि यह दोष बहुत अखरने वाला नहीं।

प्रेमचन्द ने इसमें भी समाप्ति आदर्शवाद में ही की है पर वह आदर्शवाद कोरा काल्पनिक समझौता आदर्शवाद नहीं है। कुल मिलाकर 'सेवासदन' प्रेमचन्द का आगे की भी कई रचनाओं से अच्छा उपन्यास है। हिन्दी उपन्यास साहित्य में तो वह युग-प्रवर्तनकारी रचना है ही।

प्रेमाश्रम (सन् १९२२)

प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द सर्वप्रथम गाँव की ओर उन्मुख हुए। हिन्दी साहित्य में ही नहीं अपितु सम्भवतः सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में सर्वप्रथम इ... ...मींदार और किसानों के सङ्घर्ष का खुलकर चित्रण हुआ। इस दृष्टि

'प्रेमाश्रम' 'गोदान' की भूमिका कहा जा सकता है। इसमें शोषक और शोषित का संघर्ष 'गोदान' से किसी प्रकार कम नहीं है। अन्तर यही है कि 'प्रेमाश्रम' में जमींदार (ज्ञानशंकर) की कथा प्रमुख है, किसानों की परिस्थितियाँ और कथा-प्रसङ्ग इससे सम्बन्धित है, जबकि 'गोदान' में किसान (होरी) की कथा प्रमुख है और जमींदार आदि की परिस्थितियाँ और कथा प्रसङ्ग उसके सम्बन्ध से प्रकट हुए हैं। यही कारण है कि ग्राम-जीवन की वैसी मर्मान्तिक तड़पन 'प्रेमाश्रम' में प्रकट नहीं हो सकी जो 'गोदान' में है। पर यह मानना पड़ेगा कि 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द अपने युग से आगे हैं। १९२०—२१ ई० में जबकि यह उपन्यास लिखा गया था देश में ग्राम-आन्दोलन या किसान-आन्दोलन विशेष प्रचलित नहीं हुए थे। कांग्रेस-द्वारा सन् १९२८ से पहले किसी किसान-आन्दोलन का सङ्गठन नहीं हुआ था। देश में साम्यवादियों के मोर्चे भी बाद में जमने शुरू हुए। प्रेमचन्द को गांधीजी का मानस पुत्र कहा जाता है। पर मैं समझता हूँ कि 'प्रेमाश्रम' में जहाँ प्रेमशंकर की अवतारणा गांधीजी के प्रभाव में हुई है वहाँ जमींदार-किसान के सङ्घर्ष की रूप-रेखा प्रेमचन्द की अपनी मौलिक दृष्टि-सृष्टि है।

आरम्भ में ही किसान के मन का विद्रोह प्रकट किया गया है। जब जमींदार का आदमी १० छटांक के बाजार-भाव की बजाय, जबरदस्ती रुपये सेर के हिसाब से घी के दाम देता है और मनोहर के विरोध करने पर कहता है—'जब जमींदार की जमीन जोतते हो तो उसके हुक्म के बाहर नहीं जा सकते। तो मनोहर स्पष्ट शब्दों में कहता है—'जमीन कोई सेंतमेंत में जोतते हैं? उसका लगान देते हैं। एक किस्त भी बाकी पड़ जाए तो नालिश होती है।' '' न कारिन्दा कोई लाट है न जमींदार कोई हौआ है। यहाँ कोई दबैल नहीं है। जब कौड़ी-कौड़ी लगान चुकाते हैं तो धौंस क्यों सहें।

मनोहर का बेटा बलराज नई पीढ़ी का और भी उग्र नवयुवक है। वह मरने मारने तक की चुनौती देता है। प्रेमचन्द ने कृषक-सङ्घर्ष का यह स्रोत रूस-अमरीका की क्रान्तियों से प्राप्त किया है। उस युग में कोई किसान रूसी-क्रान्ति की बात करके भारत में कृषक-मजदूर के राज्य की आकांक्षा शायद ही प्रकट कर सका हो। यह स्थिति लगभग सन् १९३० के पहले सम्भव नहीं लगती। तो भी प्रेमचन्द ने आगामी युग की आहट लेते हुए बलराज से कहलाया है—'तुम लोग तो मेरी हँसी उड़ाते हो मानो काश्तकार कुछ होता ही नहीं वह जमींदार की बेगार ही करने के लिए बनाया गया है। लेकिन मेरे पास जो पत्र आता है उसमें लिखा है कि रूस देश में काश्तकारों का ही राज है वह जो चाहते हैं करते हैं। उसी के पास कोई और देश बलगारी है। वहाँ अभी हाल की बात है काश्तकारों ने राजा को गद्दी से उतार

दिया है और अब किसानों और मजदूरों की पंचायत राज करती है। और वह बड़ी पीढ़ी के लोगों से साफ-साफ कह देता है कि तुम सहते रहे हम नहीं सह सकते— 'क्यों न बोलूं तुम तो दो-चार दिन के मेहमान हो जो कुछ पड़ेगी वह तो हमारे ही सिर पड़ेगी। जमींदार कोई बादशाह नहीं हैं कि चाहे जितनी जबरदस्ती करें और हम मुंह न खोलें। इस जमाने में तो बादशाहों का भी इतना अख्तियार नहीं जमींदार किस गिनती में हैं।

निश्चय ही बलराज का यह रूप-स्वरूप प्रेमचन्द की ही मानस-सृष्टि है। यह अपने युग से आगे की झलक है। सच तो यह है कि 'गोदान' में भी प्रेमचन्द विद्रोह का ऐसा तना हुआ उग्र रूप नहीं दिखा सके।

इतने पर भी कहना पड़ता है कि प्रेमचन्द इस संघर्ष के हल के लिए गांधीजी की ओर ही देखते हैं। यद्यपि उन्होंने कहलवाया है कि 'सत्याग्रह में अन्याय को दमन करने की शक्ति है। यह सिद्धान्त भ्रमपूर्ण सिद्ध हुआ' परन्तु हृदय-परिवर्तन समझौता अहिंसात्मक क्रान्ति सत्याग्रह आदि साधनों से ही उनका आदर्श पात्र प्रेमशङ्कर संघर्ष करता है और प्रेमचन्द की सुखद कल्पना से विजयी होता है। क्योंकि अन्त तक आते-आते सब का हृदय-परिवर्तन हो जाता है। मायाशङ्कर अपनी रियासत छोड़ देता है। किसानों में उसे बांट दिया जाता है अभियुक्त छूट जाते हैं। इर्फान अली इजादहुसैन ज्वालासिंह डा प्रेमनाथ आदि सब का मन अपनी स्वार्थवृत्ति के कारण ग्लानि से भर जाता है सब का परिवर्तन हो जाता है। लखनपुर एक आदर्श ग्राम बन जाता है। *निश्चय ही प्रेमचन्द का यह आदर्शवाद गांधीयुग की* एक सुखद कल्पना थी जो न अपने युग की वास्तविकता थी और न आगामी युग की। यह आदर्शवादी अन्त प्रेमचन्द का एक सामान्य ढङ्ग ही बन गया। प्रेमचन्द की सभी रचनाओं में बहुत से दुष्ट पात्र अन्त तक पहुंचते-पहुंचते पश्चात्ताप की अग्नि में जलते हुए अपनी सदाशयता को खोजते प्रतीत होते हैं। 'गोदान' में आदर्शवादी परिणति न होते हुए भी पात्रों के चरित्र चित्रण में यह आदर्शवादी परिवर्तन अवश्य पाया जाता है। मातादीन मालती खन्ना आदि के चरित्रों में यह प्रवृत्ति स्पष्ट है। 'प्रेमाश्रम' में तो यह बहुत ही अधिक है। उपर्युक्त पात्रों के अतिरिक्त गायत्री श्रद्धा आदि और यहां तक कि स्वयं ज्ञानशङ्कर पछताते प्रतीत होते हैं।

इस रचना में प्रेमचन्द का सामाजिक अध्ययन 'सेवा-सदन' से बढ़ा-चढ़ा ही है। इसमें मुख्य चित्रण जमींदार का ही है और उद्देश्य है जमींदारी-पद्धति के दुष्परिणाम प्रकट करना। प्रेमचन्द जमींदारी के सभी पहलुओं—प्रभाव ऐश्वर्य शोषण अन्याय अधिकार मिथ्या विलास-लोलुपता आदि—पर प्रकाश डालते हुए अन्त में इस पद्धति को मृत्यु-दण्ड देते हैं।

'प्रेमाश्रम' में जमींदार के सभी रूपों पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है। कम से-कम चार रूप स्पष्ट हैं। एक रूप है प्राचीन जटाशंकर का जिसमें औद्योगिक युग की चतुराई के स्थान पर सामन्तीय जमींदार की दया और उदारता थी। जटाशंकर मर चुके थे। उनके समय की बात ही और थी। जब साल दो साल की लगान बाकी पड़ जाती थी मुदा मालिक कभी कुड़की बेदखली नहीं कराते थे। लड़कियों के ब्याह के लिए उनके यहाँ से लकड़ी चारा और पचीस रुपया बँधा हुआ था। जब वह अपने लड़कों की तरह पालते थे तो रैयत भी हँसी-खुशी उनकी बेगार करती थी। अब वह बातें हो गईं। जमींदार का जीवन भी सरल ही था। न उसे डालियाँ देनी होती थीं न किसी अफसर की खुशामद करनी पड़ती थी। उनकी आवश्यकताएँ भी सीमित थीं। अतः असामियों पर अत्याचार करने की जरूरत नहीं थी।

अब रह गए हैं प्रभाशंकर जिनका न प्रभाव है न हाथों में शक्ति है न धन। किन्तु वो पुरानी शान रखना चाहते हैं। असामियों पर अत्याचार करना उन्हें पसन्द नहीं है। अधिक दौड़ धूप नहीं कर सकते। नए औद्योगिक वातावरण से उनका मेल नहीं खाता। नई पीढ़ी के ज्ञानशंकर ने उनकी बोलती बन्द कर दी है। यह दूसरे प्रकार के जमींदार का रूप है। पहले जमींदार अपनी स्वाभाविक मौत मर गए थे ये जीवित होते भी प्रभावहीन संघर्षहीन जड़ बने हुए हैं। ये अपनी परम्परा में बँधे हुए हैं और नई पूँजीवादी या बुद्धिवादी जमींदारी से दूर हैं।

प्रेमचन्दजी ने तीसरे प्रकार के जमींदार का विस्तृत चित्रण किया है। यह है ज्ञानशंकर। यह औद्योगिक-भौतिक युग का जमींदार है और वैज्ञानिक ढंग से शोषण करता है। वह नई परिस्थितियों के अनुसार सोच समझकर अपने स्वार्थों की रक्षा करता है और रूप बदलता है। पुलिस और हाकिमों से अपना रसूख बनाता है। रिश्वत डालियाँ देता है। ठाठ-बाट रखता है। नैतिक दृष्टि से बहुत खोखला है। विलासी है पर साथ ही पूरा अधिकार-लोलुप। अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए हर तरह का स्वाँग रचा करता है। यह जमींदार पूरा हृदयहीन जमींदार है। अपने असामियों पर अत्याचार करते भी नहीं हिचकता। इसके पतन की विस्तृत कहानी ही 'प्रेमाश्रम' का मुख्य उपजीव्य है। प्रेमचन्द ने अन्त में इस जमींदार को भी हताश दशा में मृत्युवरण के लिए बाध्य किया है। उसका बेटा मायाशंकर ही उससे मुँह मोड़ लेता है। जिसके लिए उसने अपना ईमान बेचा अनेक हेर-फेर और कुकर्म किए वही उससे अलग हो जाता है।

मायाशंकर चौथा रूप है जो बदलती हुई परिस्थितियों को समझ लेता है। जिसने गांधीवाद या समाजवाद से समझौता करने में ही अपना तथा कृषक-वर्ग का कल्याण समझ लिया है। वह स्वेच्छा से अपनी रियासत किसानों को दे देता है और

नाम पाता है। प्रेमचन्द जमींदारों का ऐसा ही हृदय-परिवर्तन चाहते हैं।

'प्रेमाश्रम' में जमींदार के एक और रूप का उल्लेख किये बिना बात अधूरी रह जायगी। यह पाँचवाँ रूप है राय कमलानन्द का। यह विचारों की दृष्टि से 'गोदान' के रायसाहब अमरपालसिंह की तरह एकदम समझदार और प्रगतिशील हैं। राय कमलानन्द और 'गोदान' के रायसाहब में अद्भुत साम्य है। राय कमलानन्द अपने वर्ग के दोषों की वैसी ही स्वीकारोक्ति करते हैं जैसी 'गोदान' के रायसाहब अमरपालसिंह। ज्ञानशंकर से वह स्पष्ट कहते हैं कि इस रियासत पर मेरा क्या अधिकार है? यह मेरे पिताजी को अंग्रेजों की सहायता के बदले में मिली थी। मैंने अपने परिश्रम से प्राप्त नहीं की। "हम केवल लगान वसूल करने के लिए रखे गये हैं। इसी कमाई के लिए हम एक-दूसरे के खून से अपने हाथ रंगते हैं। ... 'जमींदार के हाथों किसानों की बड़ी दुर्दशा होती है। मैं स्वयं इस विषय में सर्वथा निर्दोष नहीं हूँ। बेगार लेता हूँ। डाँड़ बाँध भी लेता हूँ। बदलगामी या एजाफा का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देता। असामियों पर अपना रोब जमाने के लिए अधिकारियों की खुशामद भी करता हूँ।

इस जमींदारी को बुरा समझते हुए भी राय कमलानन्द इसे छोड़ नहीं सकते यही तो विडम्बना है। इस प्रथा के दोषों से निकलना उनके लिए मुश्किल है। वह स्वयं कहते हैं— 'तुम कहोगे यह सब कोरी बकवाद है। रियासत इतनी बुरी चीज है तो उसे छोड़ क्यों नहीं देते। हाँ यही तो रोना है कि इस रियासत ने हमें विलासी आलसी और अपाहिज बना दिया। हम अब किसी काम के नहीं रहे।

यह जमींदार सारी राजनैतिक और राष्ट्रीय स्थिति को समझता-बूझता है। अपने वर्ग की कुप्रवृत्तियों को अच्छी तरह जानता है और उनकी निन्दा भी करता है। पर तो भी उसमें फँसा हुआ है। वह न तो ज्ञानशङ्कर ही रहा है और न मायाशङ्कर बन पाया है।

इस प्रकार 'प्रेमाश्रम' में जमींदारों के भिन्न भिन्न रूप प्रस्तुत करके प्रेमचन्द ने इस प्रथा के दुष्परिणामों का प्रकाश किया है और स्पष्ट शब्दों में इस वर्ग के अस्तित्व को अनावश्यक और अनिष्टकारी सिद्ध किया है।

'प्रेमाश्रम' में कथा प्रबन्ध वैसा नहीं हो पाया जैसा 'सेवासदन' में था। इसका कारण है कार्यक्षेत्र का फैलाव। इसमें प्रेमचन्द ने अनेक चित्र दिये हैं और उनमें कुछ अनावश्यक या असम्बद्ध भी हैं। अनेक स्थानों पर वाग्विस्तार अधिक है। कुछ कथा प्रसङ्ग भी अविश्वसनीय और अनावश्यक हैं। जैसे तेजशङ्कर और पद्मशङ्कर के भैरव-विधान और बलिदान की कथा, राय कमलानन्द के जहर खाने पर भी कुछ असर न होने की बात, [illegible] की हरकतें, सनातन धर्म सभा का अधिवेशन आदि

प्रसङ्ग और घटनाएं ऐसी ही हैं। इसी फैलाव के कारण कथा-सङ्गठन में शिथिलता आई है और रोचकता की हानि हुई है।

कुछ पात्रों के चरित्र चित्रण में भी मनोवैज्ञानिक दोष दिखाई देते हैं। राय कमलानन्द की सांसारिक प्रवृत्ति त्याग और भोग-दोनों में ही दिखाई देती है। ज्ञानशंकर की आत्महत्या के बारे में तो हिन्दी जगत में पर्याप्त आलोचना हो चुकी है। पात्रों की इतनी हत्याएँ भी लेखक की कुशलता पर धब्बा ही हैं। इस पर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि इसी 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द की विचार-दृष्टि गम्भीर हुई है, सामाजिक परिवेश भी बढ़ा है, कृषक जीवन की समस्याओं और जमींदार-प्रथा का सर्वप्रथम विशद चित्रण हुआ है, वहाँ कला-शिल्प में 'सेवासदन' से विकास की सम्भावना दिखाई नहीं देता। प्रेमाश्रम में कथारस और भावरस-सामंजस्य की कुछ कमी रह गई अन्यथा यह रचना भी प्रेमचन्द के 'गोदान' के स्तर की सिद्ध होती। कुछ लोग इसे प्रेमचन्द का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास मानते हैं। एक आलोचक का कथन उल्लेखनीय है— प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कृति कौन सी है यह प्रश्न जब उठता है तो लोग 'गोदान' और 'कायाकल्प' के साथ 'प्रेमाश्रम' का नाम भी लेते हैं। प्रश्न विवादास्पद तो अवश्य है और तीनों उपन्यासों की अपनी अलग अलग विशेषताएँ हैं किन्तु समाहित प्रभाव, चरित्र चित्रण की कलात्मकता और मनोवैज्ञानिकता एवं कथासंगठन की दृष्टि से 'प्रेमाश्रम' को ही विशिष्टतम यह कृति मानती हूँ।[1]

डा० राजेश्वर गुरु का उपर्युक्त कथन बहुत भ्रान्तिपूर्ण है। हमारे जाने शायद ही किसी ने 'कायाकल्प' को प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ रचना कहा हो। दूसरे, राजेश्वर गुरु ने 'प्रेमाश्रम' को जिस आधार पर प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ रचना माना है शायद वही उसकी दुर्बलता के अङ्ग हैं। 'प्रेमाश्रम' में समाहित प्रभाव फैलाव के कारण वैसा नहीं रहा है जैसा 'गोदान' में। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से तो यह रचना कई रचनाओं से पीछे है। इसी प्रकार मनोवैज्ञानिकता और कथा-सङ्गठन भी 'प्रेमाश्रम' के प्रशंसनीय तत्त्व नहीं हैं जिनकी बिना पर उसे अन्य रचनाओं से श्रेष्ठ माना जा सके। मजे की बात यह है कि अपने कथन की पुष्टि उन्होंने 'विद्र स्वरूपी' (?) के नाम पर करना चाही है।

वास्तव में 'प्रेमाश्रम' की शक्ति उसके कला शिल्प में नहीं है, उसमें तो वह दुर्बल है। बल्कि उसकी शक्ति है उसके बीभत्स रस-प्रधान होने में। प्रेमचन्द ने जमींदारी प्रथा के बीभत्स रूप का विशद चित्रण किया है। रूस के नाम से चौंकने वाले आधुनिक आलोचकों से हम निवेदन करते हैं कि जरा हमारे कथन की ओर ध्यान दें। 'प्रेमाश्रम' इसलिए महान् है कि उसका उद्देश्य महान् है। उद्देश्य की

१. प्रेमचन्द : एक अध्ययन (लेखक—डा० राजेश्वर गुरु)—पृ० ९२—९३।

महानता अपने में कुछ न होती यदि वह उग्र रूप में न होती। यह उग्र-रूप भ महानता बीभत्स रस का स्वरूप लेकर प्रकट हुई है। ज्ञानशङ्कर का दुश्चरित्र अन्या अत्याचार, निर्दयता गायत्री को फँसाना राय कमलानन्द को जहर देना आदि कुछ अफसरों की रिश्वत-खोरी तथा गरीबों से अन्याय अफसरों के साथ आए टिड्डी चपरासियों आदि की ज्यादतियाँ कारिन्दों की मनमानी आदि अनेकों विषम आद से अन्त तक हमारे घृणा भाव को जगाते और तीव्र करते हैं। इन सब शोषकों प्रति पाठक घृणा से भर जाता है और गरीबों के प्रति करुणा और सहानुभूति मन जाता है। यही प्रेमचन्द की सफलता है। यही उद्देश्य की सिद्धि है। यही रस-का बीभत्स रस-अनुभूति है। यदि इसमें कलात्मक दोष (जो ऊपर बताये गए हैं) न मा तो 'प्रेमाश्रम' प्रेमचन्द की 'गोदान' की टक्कर की रचना बन जाती।

निर्मला (सन् १९२३ ई०)

'निर्मला' प्रेमचन्द का एक छोटा—उनके सब उपन्यासों में छोटा—सामाजि उपन्यास है। इसमें मूल समस्या है अनमेल विवाह और उसके भयङ्कर दुष्परिणाम इसमें नारी-जीवन की करुणापूर्ण कहानी है। यह रचना करुणरस प्रधान है। प्रेम चन्दजी ने हमारी वैवाहिक पद्धति के दोषों को अपनी रचनाओं में खूब प्रकट किया है। विवाह हमारे यहाँ एक ढकोसला बन गया है। रुपया की थैलियों से सौदे तय किये जाते हैं। लड़के-लड़की के स्वभाव आकृति प्रकृति वय आदि का कोई मिलान जरूरी नहीं है। समाज में दहेज की प्रथा से अनर्थ हो रहा है। इसी के कारण एक पन्द्रह वर्षीया कलिका—निर्मला—का विवाह उसकी विधवा माता को एक ४ से भी अधिक वय के कुरूप तोंदू, दुहाजू किन्तु सम्पन्न वकील बाबा तोताराम से करना पड़ता है। इस सामाजिक समस्या के कारण पारिवारिक जीवन की अनेक विषमताएँ उत्पन्न होती हैं। तोताराम के तीन बच्चों की विमाता के रूप में निर्मला को बच्चों से पूरा स्नेह होने पर भी लांछित किया जाता है। उस वृद्ध मनुष्य की कोप-दृष्टि और ईर्ष्या का शिकार बनना पड़ता है। वृद्ध पति के संशय और विषम परिस्थितियों से घर तबाह हो जाता है।

'निर्मला' में भाव-सघनता खूब पाई जाती है। कथा-सङ्गठन की दृष्टि से भी यह रचना उत्तम है। कुछ अस्वाभाविक संयोगों और अमनोवैज्ञानिक स्थितियों का दोष अवश्य पाया जाता है। सामाजिक परिवेश भी सीमित है। पर सीमित पारि वारिक-सामाजिक परिवेश में प्रेमचन्द ने संवेदनाओं की गहराई भरने का बहुत सफल प्रयास किया है। यही इस रचना की विशेषता है।

रङ्ग-भूमि (सन् १९२४ ई०)

'रंगभूमि' प्रेमचन्द का सबसे बड़ा उपन्यास है। कुछ लोग इस उपन्यास को

ोदान' से भी ऊँची रचना मानते हैं। परन्तु हम समझते हैं कि 'रंगभूमि' में ोदान जैसी संवेदना की सघनता नहीं पाई जाती। उसका बड़ा कलेवर ही उसके भाव को बिखरा रहा है। हाँ इसमें सन्देह नहीं कि प्रेमचन्द की दृष्टि इस रचना में बहुत व्यापकता लिए हुए है। इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने पहली बार देशी रियासतों की बिगड़ी स्थिति, राजाओं के अत्याचार और अन्याय को प्रमुख करके इस ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया। देशी रियासतों में बेचारे किसानों की और भी बुरी अवस्था है। प्रेमचन्द ने पीड़ित प्रजा के साथ अपनी सच्ची सहानुभूति दिखाई है।

रंगभूमि में ही पहली बार प्रेमचन्द ने पूँजीवाद के भयानक और पूँजीवादी पद्धति के दोषों को प्रकट किया है। यह पूँजीवादी पद्धति सामन्तवाद या जमींदारी पद्धति से भी अधिक हानिकारक और खतरनाक है। सामन्तवाद ने दयनीय अवस्था ही बनाई थी पर यह पूँजीवाद तो अस्तित्व के लिए ही खतरा बनकर आया है। गरीबों की झोपड़ियों को उजाड़ कर यह कल-कारखाने बना रहा है। गाँवों का सरल निष्कपट और उच्च नैतिक जीवन नष्ट करके यह पूँजीवाद उसे कलुषित कर रहा है। पूँजीपति जानसेवक सूरदास की जमीन लेना चाहता है—सिगरेट का बड़ा कारखाना खोलना चाहता है। सूरदास विरोध करता है। राजा महेन्द्रपाल भी अपने स्वार्थ की खातिर जानसेवक की तरफदारी करता है और जमीन दिलाने में उसका सहायक एवं सूरदास का प्रतिद्वन्द्वी बन जाता है। सूरदास कहता है— सरकार, बहुत ठीक कहते हैं, मुहल्ले की रौनक जरूर बढ़ जायगी (मिल लगने से), रोजगारी से लोगों को फायदा भी खूब होगा। लेकिन जहाँ यह रौनक बढ़ेगी वहाँ ताड़ी-शराब का भी तो परचार बढ़ जायगा, कसबियाँ भी तो आकर बस जायेंगी, परदेसी आदमी हमारी बहू-बेटियों को घूरेंगे। कितना अधरम होगा। दिहात के किसान अपना काम छोड़कर मजूरी के लालच से दौड़ेंगे, यहाँ बुरी-बुरी बातें सीखेंगे और बुरे आचरण अपने गाँव में फैलायेंगे। देहातों की लड़कियाँ बहुएँ मजूरी करने आयेंगी और यहाँ पैसे के लोभ में अपना धरम बिगाड़ेंगी। यही रौनक शहरों में है। वही यहाँ हो जायगी।

सन् १९२४ के इस उपन्यास पर गांधीवादी प्रभाव सर्वाधिक नजर आता है। सूरदास गांधीवाद का ही प्रतिरूप है। यह मशीनी औद्योगीकरण और पूँजीवाद का विरोध करता है, नगरों के वासनामय दूषित वातावरण से ग्रामों के शान्ति-पूर्ण पवित्र वातावरण को उत्तम समझता हुआ ग्राम-संस्कृति की रक्षा करना चाहता है। संघर्ष में उसका मार्ग गांधीवादी है। सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, असहयोग, आत्म-त्याग आदि ही उसके साधन हैं। वह बुरी ताकतों के साथ संघर्ष करता है। और इस संघर्ष में यद्यपि असफल रहता है पर हार नहीं मानता। सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन में भी गांधीजी देश को स्वराज्य दिलाने में भले ही असफल रहे हों पर

उन्होंने साथ नहीं छोड़ा हतोत्साह नहीं हुए, मन का नहीं हारा। शायद इसमें भूमिका में प्रेमचन्द ने सूरे के संघर्ष को प्रस्तुत किया है। वह अपने संघर्ष में हार जाता है पूंजीवाद की विजय होती है। गाँव की धरती पर पूंजीपति का सिर स्थापित हो जाता है मजूरों का नैतिक पतन होता है जुआ शराब का दूषण फैलने लगता है सारा आन्दोलन विफल हो जाता है। पर खिलाड़ी सूरा कहता है— मैं जीते मैं हारा। यह बाजी तुम्हारे हाथ रही। मुझसे खेलते नहीं बना। तुम मँजे हुए खिलाड़ी हो। दम नहीं उखड़ता। खिलाड़ियों को मिलाकर खेलते हो और तुम्हारा उत्साह भी खूब है। हमारा दम उखड़ जाता है हाँफने लगते हैं और खिलाड़ियों को मिलाकर नहीं खेलते। आपस में झगड़ते हैं गाली-गलौज मार-पीट करते हैं कोई किसी की नहीं मानता। हम हारे तो क्या मैदान से भागे तो नहीं, रोये तो नहीं धाँधली तो नहीं की। फिर खेलेंगे जरा दम लेने दो। हार-हार कर तुम्हीं से खेलना सीखेंगे और एक-न-एक दिन हमारी जीत होगी—अवश्य होगी।

पिछड़ते हुए कमजोर का मरते हुए सत्याग्रही का कितना दृढ़ आत्म-विश्वास है! निश्चय ही प्रेमचन्द ने भारतीय राजनैतिक संघर्ष को इस रचना-द्वारा आत्मबल प्रदान किया था। जीवन को खेल की बाजी समझ कर खेलना प्रेमचन्द का जीवन-दर्शन बन गया था।

प्रेमचन्द ने जिस शहरी सभ्यता और विकासमान् पूंजीवाद की झाँकी अपने 'गोदान' में प्रकट की है उसका पूर्व रूप और पूर्वाभास हम 'रङ्गभूमि' में प्राप्त हो जाता है। 'रङ्गभूमि' में भी शहरी सभ्यता का विकास हो रहा है। शहर अमीरों के रहने और क्रय-विक्रय का स्थान है। उसके बाहर की भूमि उनके मनोरञ्जन और विनोद की जगह है। उसके मध्यभाग में उनके लड़कों की पाठशालाएँ और उनकी मुकदमेबाजी के अखाड़े होते हैं जहाँ न्याय के बहाने गरीबों का गला घोंटा जाता है। शहर के आसपास गरीबों की बस्तियाँ होती हैं। गाँवों की पुरातन पवित्रता, आत्मनिर्भरता और संस्कृति समाप्त हो रही है। शहर का पूंजीपति गाँवों की जमीन पर अपने कारखाने बना रहा है। गाँव का सामूहिक जीवन बिखर रहा है और किसान मजदूर बनता जा रहा है। पूंजीपति अत्यधिक मुनाफा कमा रहा है। उसका जादू चल रहा है। उसके पास तर्क-बुद्धि भी है। वह कहता है— हमारी जाति का उद्धार कला कौशल और उद्योग की उन्नति में है। इस सिगरेट के कारखाने से कम से-कम एक हजार आदमियों के जीवन की समस्या हल हो जायगी और शर्तों के सिर से उनका बोझ टल जायगा। इस पूंजीपति जानसेवक को भ्रम में बड़ा भ्रम है!

परन्तु प्रेमचन्द अन्त के संघर्ष को अवश्य प्रकट करते हैं। 'गोदान' में किसानों की मिल जल जाती है। उसके पारिवारिक जीवन में अशांति मिलती है।

प्रेमचन्द ने दिखाया है कि धन ही अनेक बुराइयों की जड़ बनता है। इसी प्रकार 'रङ्गभूमि' का आलोचक भी अनुभव करता है कि यह कारखाना एक असाध्य रोग ही लग गया है। इसके कारण पारिवारिक अशांति उत्पन्न हुई। सारा कुनबा बिखर गया लड़की सोफ़िया घर से चली गई लड़का प्रभुसेवक विरोधी हो गया। शहर में बदनामी हुई। शहर और गाँव में इस कारखाने के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा हो गया है। कारीगर और कुली भी काम छोड़कर अपने घर जाने की धमकी देते रहते हैं।

देशी रियासतों की बुरी अवस्था को भी प्रेमचन्द ने अच्छी तरह दर्शाया है। ब्रिटिश रेजिडेन्ट के सामने राजा की दशा गुलामों-जैसी है। इनमें कोई दम नहीं रहा है। स्वयं राजा अपनी हालत बताता हुआ कहता है— 'हमारी दशा साधारण अपराधियों से भी गई-बीती है। उन्हें तो सफ़ाई देने का अवसर दिया जाता है हमसे कौन सफ़ाई लेता है? हमारे लिए न कोई कानून है न कोई धारा। जो अपराध चाहा लगा दिया। जो दण्ड चाहा दे दिया। न कहीं अपील है न फ़रियाद।

इन राजाओं और रियासती कर्मचारियों का एक और चित्र क्रान्तिकारी वीरपालसिंह प्रस्तुत करता है— 'ये लोग (राज्य-कर्मचारी) प्रजा को दोनों हाथों लूट रहे हैं। इनमें न दया है न धर्म चोरी कीजिए डाके डालिए, घरों में आग लगाइए कोई आपसे न बोलेगा। बस कर्मचारियों की मुट्ठी गरम करते रहिये। दिनदहाड़े खून कीजिए, पर पुलिस का पूरा कर दीजिए, आप बेदाग छूट जायँगे। आपके बदले कोई बेकसूर फाँसी पर लटका दिया जायगा' ...'यह समझ लीजिए कि हिंसक जन्तुओं का एक गोल है। सबके सब मिलकर शिकार करते हैं और मिल जुल कर खाते हैं। राजा है वह कार का उल्लू' ... 'या तो सिंहासन की सैर करेगा या यहाँ अंग्रेजों के साथ शिकार खेलेगा सारे दिन उन्हीं की जूतियाँ सीधी करेगा। इसके सिवा उसे कोई काम नहीं। प्रजा जिये या मरे, उसकी बला से।

प्रेमचन्द की 'रङ्गभूमि' की एक बड़ी विशेषता इस बात में है कि यही रचना राजनैतिक संघर्ष के लिए सर्वाधिक प्रेरक सिद्ध हुई। जन-साधारण में असन्तोष और विद्रोह की भावना जगाने का सर्वाधिक उपक्रम इसी रचना में पाया जाता है। सूरा विनय प्रभुसेवक सोफ़िया आदि कितने ही कर्मवीर जनता को जागृत करते हैं। अन्याय का डट कर मुकाबिला करने की हिम्मत रखते हैं। पशुबल के सामने आत्म बल प्रदर्शित करते हैं। प्रभुसेवक रिश्वतखोर कर्मचारियों जालिम जमींदारों स्वार्थी अधिकारियों पर सदैव ताक लगाये रहने लगते हैं। 'उनका विचार था कि प्रजा में असन्तोष पैदा करना भी सेवकों और नेताओं का कर्त्तव्य है।"

'रङ्गभूमि' के अन्त में डा० गोयनका स्पष्ट शब्दों में अंग्रेज गवर्नर से कहते हैं— "आज मेरे दिल से यह विश्वास उठ गया जो गत चालीस वर्षों से जमा हुआ था कि

गवर्नमेण्ट हमारे ऊपर व्यापार-वाणिज्य का शासन करना चाहती है।— —इस तरह हम साफ दिखाई दे रहा है कि केवल हमको चौपट करने, हमें भिखारी बनाने के लिए, हमारा अस्तित्व मिटाने के लिए, हमारी सभ्यता और हमारे मनुष्यत्व की हत्या करने के लिए, हमको अनन्तकाल तक चक्की का बैल बनाये रखने के लिए हमारे ऊपर राज्य किया जा रहा है।

प्रेमचन्द धर्म के ढोंग का हर स्थान पर भण्डाफोड़ करते हैं। 'रङ्गभूमि' में सोफ़िया और प्रभुसेवक दोनों धार्मिक पाखण्ड की खिल्ली उड़ाते हैं। उनके माता-पिता का धर्म दिखावा है, बाहरी धार्मिक रूप मात्र पाखण्ड है। पिता जॉनसेवक सातवें दिन गिरजा जाते हैं पर वहाँ भी धन के देवता की मूर्ति का ही ध्यान करते हैं। दादा ईश्वरसेवक ईश्वरभक्ति का दम्भ रखता है पर है परले दरजे का धूर्त और कंजूस।

'रङ्गभूमि' में एक खटकने वाली बात यह है कि प्रेमचन्द ने प्रायः सभी निकट के सम्बन्धी पात्रों में विरोध प्रस्तुत किया है। कहीं पत्नी पति से भिन्न है जैसे राजा महेन्द्रकुमारसिंह असत् पक्ष के हैं तो उनकी पत्नी इन्दु उनके सर्वथा विरुद्ध सत् पक्ष की है। यही बात भरत और उसकी पत्नी सुभागी के बारे में कही जा सकती है। कहीं माँ-बाप के विरोधी बेटा-बेटी दिखाये गए हैं जैसे सोफ़िया और प्रभुसेवक अपने माता पिता की विचारधारा और कार्यों के सर्वथा विरुद्ध हैं—माँ-बाप असत् पक्ष के हैं तो बेटा-बेटी सत् पक्ष के। महेन्द्रकुमारसिंह के विरुद्ध उनका साला विनय खड़ा है। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे उदाहरण जीवन में पर्याप्त मिलते हैं पर एक उपन्यास में ऐसे अनेक दृश्य प्रस्तुत करना कुछ अस्वाभाविक-सा प्रतीत होने लगता है। चरित्र-चित्रण में कुछ अन्य कमियाँ भी पाई जाती हैं। कभी प्रेमचन्दजी अपने आदर्शों और सिद्धान्तों के मोह में चरित्र को इतना अतिरञ्जित रूप दे देते हैं जो अमनोवैज्ञानिक-सा बन जाता है। रानी जाह्नवी आदर्श माता है, सन्देह नहीं पर उसका आदर्श यहाँ तक चला जाता है कि अपने पुत्र की मृत्यु के पश्चात् उसका उत्साह दुगुना हो गया। वह पहले से कहीं ज्यादा क्रियाशील हो गई। उनके रोम रोम में असाधारण स्फूर्ति का विकास हुआ। यह स्थिति उसके मातृत्व की हत्या ही कर देती है। इसी प्रकार सोफ़िया की माता का कामा रूप अतिरंजित है जो एक माता के लिए स्वाभाविक नहीं लगता।

दूसरी कमजोरी है विस्तार। जैसा कि पहले कहा जा चुका है इस विस्तार के कारण प्रभाव बिखर गया है, सघन प्रभाव नहीं उत्पन्न हो सका। न तो वे पूँजीवाद के घिनौने रूप को अच्छी तरह प्रस्तुत कर सके और न ही देशी रियासतों की आन्तरिक दशा और राजा-प्रजा के शोषक-शोषित रूप का मार्मिक चित्रण कर पाये।

पूँजीवादी पद्धति का जैसा मार्मिक चित्रण 'गोदान' में है और रियासतों की आन्तरिक परिस्थिति और राजा प्रजा के सम्बन्ध का जैसा सजीव चित्रण 'कायाकल्प' में है वह 'रङ्गभूमि' में नहीं प्रकट हो सका। सच तो यह है कि फैलाव के कारण प्रेमचन्द आत्मनियन्त्रण को पूरी तरह नहीं रख सके। यही कारण है कि न तो पूँजीवाद के प्रति पूरी तरह घृणा जागृत होती है और न ही सोफिया आदि का बलिदान इतना करुणाजनक बन पाता है। फिर भी 'रङ्गभूमि' में बीभत्स रस और करुण रस का पर्याप्त प्रसार पाया जाता है।

कायाकल्प (सन् १९२८)

कथा-प्रबन्ध की दृष्टि से 'कायाकल्प' प्रेमचन्दजी की सर्वाधिक शिथिल और जटिल रचना है। 'रङ्गभूमि' में तो फिर भी सूरदास के मङ्गल की आधिकारिक कथा निर्दिष्ट थी तथापि विनय और सोफी की प्रासङ्गिक कथा भी पर्याप्त विस्तृत थी पर 'कायाकल्प' में केन्द्रीय कथा सर्वथा अनिर्दिष्ट है। रानी देवप्रिया के जन्मजन्मान्तर और कायाकल्प ने उसे जटिल भी बना दिया है। फिर भी प्रेमचन्द ने इस रचना में जीवन के उद्देश्यों को स्पष्ट और निर्दिष्ट रखा है। इसमें प्रेमचन्द मुख्य तथ्य तो यह सिद्ध करना चाहते हैं कि सच्ची मानसिक शान्ति प्रेम में है वासना में नहीं। वासना सदा अतृप्त और बेचैन रहती है। रानी देवप्रिया के जीवन में यही सिद्ध होता है। उसे मानो युग-युग की वासना-पिपासा है। वह अतृप्ति की अग्नि में जलती रहती है। कमला के रूप में वह शङ्खधर को पाती है। पर जैसे ही दोनों वासना के आलिङ्गन में आबद्ध होते हैं शङ्खधर की जीवन-लीला समाप्त होने लगती है। वह कहता है—'प्रिये फिर मिलेंगे। यह लीला (वासना तृप्त करने के लिए बार-बार जन्म लेने और मिलन की लीला) उस दिन समाप्त होगी जब प्रेम में वासना न रहेगी।" वह देवप्रिया जो विनोद और विलास को ही सब कुछ मानती थी अतृप्त वासना की तृप्ति देने के लिए महेन्द्र विक्रमसिंह और शङ्खधर रूप में कई पतियों को नए-नए जन्मों में पाती है और भूखी रहती है, यही इस वासना से विरत हो जाती है और तपस्विनी बन जाती है। उसकी मोह-तृष्णा नष्ट हो जाती है। वह जीवन-मुक्त हो जाती है। तृष्णाओं और वासनाओं से मुक्ति ही तो जीवन-मुक्ति है यही तो सच्चा कायाकल्प है।

इस विलास-वासना का कारण है धन-सम्पत्ति। धन-सम्पत्ति से ही विलास वासना सूझती है। प्रेमचन्द ने इस सम्बन्ध में देशी राज्यों की 'काजल-कोठरी' का चित्र प्रस्तुत किया है। 'रङ्गभूमि' में प्रेमचन्द ने राजाओं के विलासपूर्ण जीवन का उल्लेख-मात्र किया था यहाँ 'कायाकल्प' में उनकी विलासिता का नग्न चित्र प्रस्तुत किया है। रानी देवप्रिया के लिए रियासत भोग-विलास का साधन मात्र है। अपने वैयक्तिक विलास के लिए उन्हें जितने रुपये चाहियें रियासत के मैनेजर का कर्तव्य

है कि तुरन्त जुटाये—चाहे प्रजा से चोरी करे अथवा प्रजा का गला काट कर दे। रानी को इससे कोई मतलब नहीं। जनता पर क्या बीतती है, इसे जानने की उसे जरूरत ही नहीं। इसी प्रसङ्ग में प्रेमचन्दजी ने जनता के निर्मम शोषण की करुण कहानी प्रकट की है। कितनी घोर विषमता है—एक ओर विलास का नग्न नृत्य हो रहा है दूसरी ओर किसान मजदूर भूखे मर रहे हैं। जिनके श्रम पर राजा-सामन्त गुलछर्रे उड़ाते हैं उन्हें एक जून भी पेट भरने को भोजन नहीं मिलता तन ढकने को कपड़ा नहीं प्राप्त होता।

प्रेमचन्दजी ने धर्म और सम्पत्ति के अनर्थ का नग्न प्रदर्शन किया है। कायाकल्प में स्पष्ट दिखाया है कि यह धन-सम्पत्ति और अधिकार या वैभव किस प्रकार मनुष्य को बदल देता है। उसका नैतिक पतन हो जाता है। राज्याधिकार पाने के पूर्व राजा विशालसिंह अत्यन्त उदार विचारों के सज्जन और जनवादी व्यक्ति थे। परन्तु गद्दी पर बैठने के पश्चात् वह गिरगिट की तरह रंग बदल जाते हैं। गरीब जनता से उत्सव का नजराना वसूल किया जाता है बेगार भी जाती है। चक्रधर स्पष्ट शब्दों में कहता है— राजा साहब की जात से लोगों को कैसी-कैसी आशाएँ थीं लेकिन अभी गद्दी पर बैठे छः महीने भी नहीं हुए और आपने भी वही पुराना ढङ्ग अख्तियार कर लिया। प्रजा से डण्डों के जोर से रुपये वसूल किये जा रहे हैं और कोई फरियाद नहीं सुनता।

और जब विरोध बढ़ता है तो यह शोषक बौखला उठता है— 'प्रजा मेरे पैरों की धूल है। मुझे अधिकार है कि उसके साथ जैसा उचित समझूँ वैसा सलूक करूँ। किसी को हमारे और हमारी प्रजा के बीच में बोलने का हक नहीं। इस पर चक्रधर उसे फटकारता हुआ कहता है— 'आपको अपने मुँह से ये शब्द निकालते हुए शर्म आनी चाहिए थी। अगर सम्पत्ति से इतना पतन हो सकता है तो मैं कहूँगा कि इससे बुरी चीज संसार में कोई नहीं। आपके भाव कितने पवित्र थे आप कहते थे मैं प्रजा को अपने पास बेरोकटोक आने दूँगा। मेरे कर्मचारी उसकी ओर टेढ़ी निगाह से भी देखेंगे तो उनकी शामत आ जायगी। ये सारी बातें क्या आपने भूल गये? और इतनी जल्दी?

यही नहीं सम्पत्ति या अधिकार का नशा इस चक्रधर पर भी चढ़ता है जो इतना आदर्श नेता बना हुआ है। रियासत से सम्बन्ध हो जाने पर उसकी मनोवृत्ति भी बदलने लगती है। वही चक्रधर जो बेगार और शोषण के विरुद्ध लड़कर जेल जाता है वही अब बेगार न मिलने पर क्रुद्ध हो जाता है। जब उसकी मोटर फँस जाती है और वह उसे ठेल कर ले चलने के लिए किसानों को आज्ञा देता है तो उसकी जबरदस्ती का विरोध करने वाले एक किसान पर वह अत्याचार कर बैठता है

स धमकी देता है और उसका हाथ तोड़ डालता है। उसके इस आचरण को देखकर स पर श्रद्धा रखने वाला धर्मसिंह आश्चर्य चकित होकर कह उठता है— 'यह तुम कैसे बदल गए? अगर आँखों से न देखा होता तो मुझे कभी विश्वास न आता। शायद तुम्हें कोई ओहदा या जायदाद मिल गई।

चक्रधर अनुभव करता है कि रियासत की बू कितनी गुप्त और अलक्षित रूप से उसमें समा रही है। 'जीवन में यह पहला ही अवसर था कि उन्होंने एक निर्बल प्राणी पर हाथ उठाया था। आह मुझ पर भी प्रभुता का जादू चल गया। अब मुझे अनुभव हो गया कि इस वातावरण (रियासत के सामन्तीय विलासपूर्ण) में रहकर मेरे लिए अपनी मनोवृत्तियों को स्थिर रखना असाध्य है।' और एक रात वह चुपचाप राजा विशालसिंह के महल को त्याग देता है।

प्रेमचन्द ने इस पद्धति को ही दोषी माना है। प्रेमाश्रम 'रङ्गभूमि' तथा 'कायाकल्प' आदि सब रचनाओं में उन्होंने व्यक्तियों को दोषी ठहराने की बजाय सामन्तीय और जमींदारी पद्धति को ही दोषी ठहराया है। राजा विशालसिंह के प्रसङ्ग में भी यही बात प्रकट की गई है। राजा साहब बुरे नहीं थे परिस्थितियाँ उन्हें विवश करती हैं। वह कहते हैं— 'ईश्वर जानता है मेरे मन में प्रजाहित के कैसे-कैसे हौसले थे। मैं अपनी रियासत में रामराज्य का युग लाना चाहता था पर दुर्भाग्य से परिस्थिति कुछ ऐसी होती जाती है कि मुझे वे सभी काम करने पड़ते हैं जिनसे मुझे घृणा थी। न जाने वह कौन-सी शक्ति है जो मुझे अपनी आत्मा के विरुद्ध आचरण करने के लिए मजबूर कर देती है। वह शक्ति कोई अलौकिक नहीं है, यही पद्धति है। राजा साहब कहते हैं कि 'मैं हिंसक जन्तुओं से घिरा हुआ हूँ।' प्रेमचन्द ने क्या रायकमलानन्द और क्या राजा साहब अमरपालसिंह सबके मुख से यही कहलवाया है कि यह सारी पद्धति ही दूषित है।

पर विचित्र बात यह है कि जब प्रेमचन्द के सामने समस्या के हल का प्रश्न आता है तो वह गान्धीवादी प्रभाव से वर्ग-समन्वय पर विश्वास जताने लगते हैं। उनके विनय सूरदास चक्रधर अमरकान्त आदि सब नेता वर्ग-समन्वय के हामी हैं। चक्रधर स्पष्ट शब्दों में कहता है—"मैंने प्रजा को उनके अधिकार अवश्य समझाए हैं। लेकिन यह कभी नहीं कहा कि राजा को संसार में रहने का कोई हक नहीं—।' किन्तु प्रेमचन्द चाहे या हम चाहें उनकी रचनाएँ ही चिल्ला-चिल्ला कर कह रही हैं कि इस पद्धति के आमूल परिवर्तन के बिना स्थिति सुधर नहीं सकती। जब रोग जड़ से ऊपर तक है तो किसी प्रकार के बीच-बचाव या समझौते हृदय-परिवर्तन से काम नहीं चलेगा। सब कुछ बदलना होगा। हम भी मन्मथनाथ गुप्त के इस मत से सहमत हैं कि एक लेखक प्रधान रूप से अपनी रचना में जो उद्देश्य रखता है, वह

आवश्यक नहीं कि उनकी रचना से वही ध्वनित हो। सक्षेप में प्रेमचन्द वर्ग समन्वय और समझौते-हृदय-परिवर्तन को—गांधीवादी दृष्टिकोण को अपनाकर चले हैं। पर उनकी रचनाओं में क्रान्ति की स्पष्ट ध्वनि प्रकट होती है।

'कायाकल्प' में प्रेमचन्द ने हिन्दू मुसलिम धार्मिक साम्प्रदायिकता और झगड़ों का भी सजीव चित्रण किया है। 'काया-कल्प' की रचना के समय देश में साम्प्रदायिक दङ्गों का जोर था। हिन्दू मुसलमानों में आये दिन झगड़ा होता था। इस कलह का राजनीतिक प्रश्न एक विकट समस्या बन गया था। सारा देश साम्प्रदायिकता की अग्नि में झुलस रहा था। स्वराज्य और समाज-सुधार की बातें पीछे पड़ गई थीं। धर्मान्धता की आँधी ने अच्छे-अच्छों की आँखों में धूल झोंक दी थी। 'ज़रा-ज़रा-सी बात पर दोनों दलों के सिर-फिरे जमा हो जाते और दो चार के अङ्ग भङ्ग हो जाते। कहीं बनिये ने डण्डी मार दी और मुसलमानों ने उसकी दूकान पर धावा कर दिया। कहीं किसी जुलाहे ने किसी हिन्दू का घड़ा छू लिया और मुहल्ले में फौजदारी हो गई। एक मुहल्ले में मोहन ने रहीम का कनकौवा लूट लिया और इसी बात पर मुहल्ले के हिन्दुओं के घर लुट गये। दूसरे मुहल्ले में दो कुत्तों की लड़ाई पर सैकड़ों आदमी घायल हुए क्योंकि एक मोहन का कुत्ता था दूसरा सईद का। नित्य के रगड़े झगड़े साम्प्रदायिक संग्राम के क्षेत्र में खींच लाये जाते थे। दोनों ही दल मज़हब के नशे में चूर थे। सुबह को ख्वाजा साहब हाकिम ज़िला को सलाम करने जाते शाम को बाबू यशोदानन्दन। दोनों अपनी राज भक्ति का राग अलापते।

प्रेमचन्द ने साम्प्रदायिकता के इस भूत की भी खूब खबर ली है। धर्म के पाखण्ड की भी खिल्ली उड़ाई है। प्रेमचन्द इस सारी स्थिति के लिए भी व्यक्तियों को जिम्मेवार न ठहराकर धर्म के नशे और शासन को दोषी ठहराते हैं। बाबू यशोदानन्दन और ख्वाजा महमूद दोनों अपने कालेज-जीवन में उदार विचारों के पक्षपाती छात्र-नेता थे। पर अब पन्द्रह वर्षों के बाद साम्प्रदायिकता की हवा में बहकर दोनों साम्प्रदायिक नेता बन जाते हैं एक-दूसरे के खून के प्यासे आमने-सामने खड़े हो जाते हैं। दोनों अपने अपने वर्गों को भड़काते हैं। सारे दंगे फिसाद के बाद ख्वाजा महमूद कहते हैं— 'खुदा गवाह है मैंने हमेशा इत्तहाद की कोशिश की। अब भी मेरा यह ईमान है कि इत्तहाद ही से इस बदनसीब कौम की निजात होगी। यशोदा भी इत्तहाद का उतना ही हामी था जितना मैं शायद मुझ से भी ज्यादा। लेकिन खुदा जाने वह कौन-सी ताकत थी जो हम दोनों को बरसरे-जङ्ग रखती थी। हम दोनों दिल से मेल करना चाहते थे पर हमारी मर्जी के खिलाफ कोई गैबी ताकत हमको लड़ाती रहती थी। निश्चय ही यह गैबी ताकत 'धर्म' का नशा और

अंग्रेजी शासन था जो हिन्दू मुसलमानों को लड़ाकर ही अपने राज्य की नींव दृढ़ करना चाहता था। धर्म का पञ्जा भी बहुत कड़ा था।

कायाकल्प में जन्म जन्मान्तरवाद और अलौकिक चमत्कार सभी वैज्ञानिक दृष्टि से संदिग्ध ही है। यदि रानी देवप्रिया और उसके पतियों के भिन्न भिन्न जन्मों की बात एक रूपक मात्र भी मान लें तो प्रेमचन्द की यह रचना भी अत्यन्त सफल सिद्ध होती है। यदि कथा के चमत्कारी अंशों को रूपक मात्र मान लिया जाय तो कथा-संगुठन में शिथिलता होते हुए भी कथा में रोचकता मौजूद है। इस रोचकता का सबसे बड़ा कारण है रस-परिपाक। वीभत्स शृङ्गार और करुण रसों की सुन्दर त्रिवेणी इस रचना की बड़ी शक्ति है।

गबन (सन् १९३० ई०)

'गबन' में प्रेमचन्द ने मध्यवित्त वर्ग के यथार्थ जीवन और मनोवृत्तियों का चित्रण किया है। प्रेमचन्द ने पहली बार 'गबन' में इस वर्ग की समस्याओं को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया है। इस वर्ग की वास्तविक आय कम है पर अपनी झूठी शान रखने के लिये इस वर्ग के लोग अपनी हैसियत से बहुत अधिक खर्च करते हैं और आय तथा व्यय के असंतुलन को बेईमानी रिश्वत झूठ दगा-फरेब आदि उपायों से पूरा करना चाहते हैं। मुन्शी दीनदयाल अपनी लड़की जालपा की शादी महाशय दयानाथ के पुत्र रमानाथ से करते हैं। दीनदयाल दिल खोलकर खर्च करते हैं क्योंकि उनका वेतन चाहे केवल पाँच रुपये था पर 'ऊपर की आमदनी' का कोई हिसाब नहीं था। दूसरी ओर रमानाथ सुन्दर सजीला जवान है। उसके पिता महाशय दयानाथ बड़े ईमानदार आदमी हैं। उन्होंने कभी एक पैसा भी रिश्वत का नहीं लिया। वह ऐसी पाप की कमाई से घृणा करते हैं। पर लड़का नई रोशनी का फैशनेबुल युवक है। वह अभी बेकार है पर यार-दोस्तों में बैठने-उठने के कारण उसकी खाने-उड़ाने की इच्छा प्रबल हो चुकी है। वह शादी में खूब खर्च करा देता है। दयानाथ भी उसकी तथा अपनी पत्नी की बातों में आकर हैसियत से बहुत बढ़-चढ़कर खर्च कर देते हैं। सराफ से उधार गहने आ जाते हैं। दिखाने के लिए और भी कई तरह का खर्च खूब बढ़-चढ़कर किया जाता है। यही खर्च उनके लिए समस्या बन जाता है।

रमानाथ अपनी पत्नी जालपा से घर की स्थिति छिपा कर रखता है। वह उसमें बहुत डींग उड़ाता है—बहुत धन है जायदाद है बैंकों में रुपया पड़ा है। वह अपनी पत्नी को खुश रखने के लिए उसकी फरमाइशें पूरा करना चाहता है। सराफ के तकाजे होने से उसे अपनी पत्नी के जेवर चुराने पड़ते हैं। स्वयं जेवर चुरा कर बाप-बेटा उड़ाते यह हैं कि जेवर चोर चुरा ले गये। इस वर्ग के कृत्रिम जीवन

की बहुत सुन्दर झाँकी प्रेमचन्द ने प्रस्तुत की है। इस उपन्यास की मुख्य समस्या नारी का आभूषण-प्रेम नहीं है जैसा कि कुछ आलोचक कहा करते हैं। आभूषण प्रेम तो गौण बात है। जालपा के मन में चन्द्रहार की लालसा बचपन से थी और इसमें संदेह नहीं कि उसके जेवर चले जाने पर वह निर्जीव-सी उदास रहने लगी थी और जब रमानाथ फिर सराफ से उसके लिये कंगन और हार उधार लाता है तभी वह प्रसन्न होती है। परन्तु इस सारी परिस्थिति के पीछे पति द्वारा वास्तविकता से दुराव है। यदि उसे मालूम हो जाता कि जेवर उधार में आए हैं और घर की वास्तविक स्थिति वह नहीं जो रमानाथ शेखी में बताया करता था तो वह कभी जेवरों के लिए आग्रह न करती।

रमानाथ स्वयं अपने जाल में फँसता है। अपने जीवन को वह कितना आडम्बरपूर्ण और कृत्रिम बना लेता है! वह अपनी शान रखने के लिए फैशन करता है, अपनी पत्नी को भ्रम में रखता है। अपनी पत्नी को अपना वेतन अधिक बताता है। रिश्वत खूब उड़ाता है। रतन के सामने अपनी झूठी शान जताता है। हेरा-फेरी से अपनी बात रखना चाहता है। रतन ने कंगन बनवाने के लिए जो रुपये दिये थे उन्हें सराफे में देकर अपनी साख रखना चाहता है। रतन को झूठ बोल-बोल कर टालता जाता है। पर जब रतन की शंका बढ़ जाती है वह कड़ा तकाजा करती है तो वह चुङ्गी के रुपयों में से रतन को दे देता है और सरकारी गबन के भय से भाग जाता है।

प्रेमचन्द ने मध्यवर्ग के खोखले जीवन की सजीव झाँकी प्रकट की है। इस आडम्बरपूर्ण कृत्रिम और दिखावटी जीवन का निभाने के लिए इस वर्ग के लोगों को कितने स्वाँग रचने पड़ते हैं। किसी भी प्रकार का पाप-कर्म ये कर सकते हैं बशर्ते कि वह छिपा रहे। चोरी रिश्वतखोरी झूठ फरेब हेरा-फेरी गबन सब-कुछ सम्भव है। यद्यपि रमानाथ की समस्या व्यक्ति की समस्या है पर यह समूचे मध्यवर्ग पर भी लागू होती है। प्रेमचन्द ने उपर्युक्त मुख्य समस्या के अतिरिक्त ब्रिटिश पुलिस-पद्धति के हथकण्डों का इस रचना में खूब पर्दाफाश किया है। पुलिस किस प्रकार झूठे गवाह बनाती है निर्दोष व्यक्तियों आदि को फँसाती है। गवाहों को प्रलोभन देकर, उनका नैतिक पतन करके अपने जाल में फँसाया जाता है। रिश्वत का बाजार गरम है। सत्याग्रहियों और देशभक्तों को कुचला जाता है। देवीदीन खटीक के जवान बेटे स्वदेशी आन्दोलन में पुलिस की गोलियों का शिकार हुए थे। प्रेमचन्दजी ने इस रचना में भी अनमेल विवाह का एक करुण परिणाम प्रस्तुत किया है। रतन नवयुवती एक सम्पन्न वृद्ध वकील की पत्नी है। यद्यपि वह अपने पति से सन्तुष्ट है और उसकी अतृप्त लालसा खाने-पहनने से दबी रहती है पर प्रेमचन्द ने दो रूपों में उसकी करुण

स्थिति में रस भरा है। पहली स्थिति है उसके अभावग्रस्त मातृत्व का चीत्कार। दूसरी है वृद्ध और रोगी पति की शीघ्र मृत्यु और उसका परिणाम।

यहाँ प्रेमचन्द ने हिन्दू विधवा रतन की असहाय दशा दर्शा कर समाज को विचारने के लिए बाध्य कर दिया है। पति की मृत्यु के बाद उसके अधिकार छिन जाते हैं। उसका भतीजा ही छल-कपट से सारी सम्पत्ति हड़प कर जाता है और वह एकदम कंगाल हो जाती है। यह इस समय वैवाहिक पद्धति का दुष्परिणाम तथा हमारे समाज में नारी की दयनीय दशा का करुणापूर्ण चित्र है।

गबन में भी प्रेमचन्द ने पूर्णतया यथार्थ से आरम्भ करके आदर्श में परिणति की है। अन्त तक पहुँचते-पहुँचते सब पात्र आदर्शवादी बन जाते हैं। रमानाथ अपनी पत्नी जालपा के प्रभाव से बदल जाता है। वह अपना बयान बदल देता है और निर्दोष अभियुक्तों को छुड़ा लेता है। वह पुलिस के प्रलोभन को ठुकरा देता है। यहाँ तक कि जोहरा वेश्या भी बदल जाती है। वह अपनी वेश्यावृत्ति छोड़कर सेवा और त्याग का जीवन बिताने लगती है। प्रेमचन्द ने रतन जोहरा रमानाथ जालपा देवीदीन आदि सब पात्रों को अन्त में सेवा और त्याग का आदर्श जीवन बिताते दिखाया है। ये सब अपना एक आदर्श संसार बनाते हैं जहाँ छल-कपट असत्य अन्याय आदि के स्थान पर सेवा सत्य अहिंसा और प्रेम का राज्य है। किन्तु 'गबन' में यह आदर्श परिणति किसी प्रकार की अस्वाभाविकता या असङ्गति प्रतीत नहीं होती। वास्तव में प्रेमचन्द ही नगर के प्रपंचात्मक जीवन से ऊब कर अपने प्रिय ग्राम-जीवन के सरस शान्तिपूर्ण वातावरण में आते प्रतीत होते हैं।

कथा-सङ्गठन की दृष्टि से भी 'गबन' प्रेमचन्द की सफल कृति है। इसमें अनावश्यक विस्तार या भरती के प्रसंगों का कोई दोष नहीं है। चरित्र-चित्रण भी बहुत सफल है। जालपा और रमानाथ के अतिरिक्त देवीदीन के चरित्र चित्रण में प्रेमचन्द ने बहुत कमाल किया है। जोहरा के चरित्र-परिवर्तन में यदि मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व और अधिक प्रकट होता तो अच्छा रहता। उसकी बाद में हत्या तो बहुत अस्वाभाविक है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि 'गबन' कला की दृष्टि से प्रेमचन्द की पर्याप्त सफल रचना है।

प्रेमचन्द ने धर्म के मर्म को अपने सब उपन्यासों में किसी-न-किसी तरह सफल प्रस्तुत किया है। पूँजी को वह सब बुराइयों की जड़ मान रहे हैं। आज की पूँजीवादी व्यवस्था में धन ही धर्म बना हुआ है। इस पूँजीवादी संस्कृति में वास्तविक धर्म लुप्त हो गया है, टका-धर्म ही चालू है। धर्म के ढकोसले को प्रेमचन्द जहाँ तहाँ सर्वत्र फटकारते रहे हैं। देवीदीन एक पूँजीवादी मिल मालिक के धर्म की पोल खोलता हुआ कहता है— उसे पापी कहना चाहिए, महापापी! दया तो

उनके पास से होकर ही नहीं निकली। उसकी लूट भी मिल है। मजदूरों के साथ जितनी निर्दयता इस मिल में होती है और कहीं नहीं होती। आदमियों को हण्टरों से पिटवाता है हण्टरों से। चरबी-मिला घी बेचकर उसने लाखों कमा लिये। कोई नौकर एक मिनट की भी देर करे तो तुरन्त तलब काट लेता है। अगर साल में दो चार हजार दान न करते तो पाप का धन पचे कैसे?

'गबन' में प्रेमचन्द ने नेताओं की भी खबर ली है। आज जबकि राजनीतिक भ्रष्टाचार हमारी एक प्रमुख समस्या बन गया है और नेता लोगों के स्वार्थों के कारण हमारे स्वराज्य की सुख-कल्पना अधूरी सिद्ध हो रही है तो हमें प्रेमचन्द का सन् १९३० का यह कथन कितना सत्य प्रतीत होता है। देवीदीन कहता है— इन बड़े बड़े आदमियों के किये कुछ न होगा। इन्हें बस रोना आता है। बड़े-बड़े देश-भक्तों को बिना विलायती शराब के चैन नहीं आता। उनके घर में जाकर देखो तो एक भी देसी चीज न मिलेगी। दिखाने को दस-बीस कुरते गाढ़े के बनवा लिये घर का और सब सामान विलायती है। विलायती शराब उड़ाओ विलायती मोटरें दौड़ाओ विलायती मुरब्बे और अचार चखो विलायती बर्तनों में खाओ विलायती दवाइयाँ पीओ पर देश के नाम को रोये जाओ। एक बार यहाँ एक बड़ा भारी जलसा हुआ। एक साहब बहादुर खड़े होकर खूब उछले-कूदे। जब वह नीचे आये तब मैंने उनसे पूछा साहब सच बताओ जब तुम सुराज का नाम लेते हो तब कौन सा रूप तुम्हारी आँखों के सामने आता है। तुम भी बड़ी तलब लोगे तुम भी अँग्रेजों की तरह बँगलों में रहोगे। पहाड़ों की हवा खाओगे अँग्रेजी ठाठ बनाये घूमोगे इस सुराज से देश का क्या कल्याण होगा? तुम्हारी और तुम्हारे भाई-बन्दों की जिन्दगी भले आराम और ठाठ से गुजरे पर देश का तो कोई भला न होगा। बस बगलें झाँकने लगे। तुम दिन में पाँच बेर खाना चाहते हो और वह भी बढ़िया माल। गरीब किसान को एक जून चबेना भी नहीं मिलता। अभी तुम्हारा राज नहीं है तब तो तुम भोग विलास पर इतना मरते हो जब तुम्हारा राज हो जायगा तब तो तुम गरीबों को पीसकर पी जाओगे।

'गबन' के अध्ययन से प्रमाणित हो जाता है कि प्रेमचन्द मूलतः सामाजिक उपन्यासकार हैं। उन्होंने व्यक्ति की समस्याओं को भी सामाजिक समस्याओं के रूप में अपनाया है। यद्यपि 'गबन' की मुख्य कथा का सामाजिक परिवेश सीमित है पर प्रेमचन्द प्रासंगिक रूप से समाज की अनेक झाँकियाँ प्रस्तुत करने में नहीं चूके हैं।

कर्मभूमि—(सन् १९३२) 'कर्मभूमि' भी कथा-संगठन की दृष्टि से प्रेमचन्द की शिथिल रचना है। इसमें शहर की और गाँव की दो अलग अलग कथाएँ हैं और दोनों का सम्बन्ध-सूत्र 'गोदान' की कथा की तरह अत्यन्त क्षीण है। इस उपन्यास में

प्रेमचन्द ने अछूत-समस्या को प्रमुखता दी है। इसके साथ ही निम्नाग (शोषित) की समस्या जुड़ी हुई है। मन्दिरों में बेचारे अछूतों-चमारों की छाया भी नहीं पड़ने दी जाती। उनका सबसे पीछे अलग बैठना भी नागवार मालूम देता है। पुजारी और ब्रह्मचारी माला फेर लेते हैं। उनकी उपस्थिति धर्मध्वजों को असह्य हो गयी। कई आदमी जूते लेकर उन गरीबों पर पिल पड़ते हैं। भला इससे बढ़कर और अधर्म क्या हो सकता है? ये राम सबको पूज्य हैं! इनकी छाया प्रसाद पर पड़ती है! डा० शान्ति-कुमार इन भक्तों को धिक्कारते हैं — 'वाह रे ईश्वरभक्तो! वाह क्या कहना है तुम्हारी भक्ति का! जो जितने जूते मारेगा भगवान् उस पर उतने ही प्रसन्न होंगे और तुम (चमारों से) तुम्हें इतनी खबर नहीं कि यहाँ मन्दिर में महाजनों के भगवान् रहते हैं तुम्हारे भगवान् कहीं किसी झोंपड़े में या पेड़ तले होंगे। कैसा करारा व्यंग्य है! साथ ही स्पष्ट है प्रेमचन्द अछूतों की समस्या को केवल जाति भेद (वर्ण भेद) ही नहीं मानते अपितु अर्थ विषमता भी इसके मूल में स्वीकार करते हैं।

प्रेमचन्द ने धर्म का सामन्तीय शोषक रूप 'सेवासदन' में महन्त रामदास का चित्रण करके प्रकट किया था। 'कर्मभूमि' में भी महन्त आशारामगिरि मठाधीश बने हुए हैं। प्रेमचन्द ने उनके राजसी ठाठ का बहुत सुन्दर चित्रण किया है। अमरकान्त मुश्किल से ही महन्त महाराज के दर्शन कर पाता है। सोने की कुर्सी और मखमल के गद्दे पर महन्त महाराज विराजमान होते हैं। उनके विलासपूर्ण भण्डार को देखकर अमरकान्त मन में कहता है — 'ठाकुरजी के नाम पर घर का कितना अपव्यय होता है।' इस महन्त की जमींदारी में भी गरीब किसानों पर अत्याचार ढाये जाते हैं जबरदस्ती लगान वसूल किए जाते हैं। धर्म का यह रूप भी पूँजी और सत्ता के सामन्तीय शोषण से भरा है। इसके विरुद्ध जनता का असन्तोष भड़कता है। इन दुश्चरित्र पण्डे-पुजारियों और महन्तों की पोल खोलता हुआ एक अछूत चौधरी कहता है —"यहाँ के पण्डे-पुजारियों के चरित्र सुनो तो दाँतों-तले उँगली दबाओ पर ये यहाँ के मालिक हैं और हम भीतर कदम नहीं रख सकते।

प्रेमचन्द के कितने ही आलोचकों ने प्रेमचन्द को आदर्शवादी मानकर उनके गांधीवादी आदर्शवाद की खिल्ली उड़ाई है। पर हमें तो 'कर्मभूमि' प्रेमचन्द की यथार्थ रचना प्रतीत होती है। इसमें सन्देह नहीं कि 'कर्मभूमि' में उपदेश हृदय परिवर्तन और अहिंसा आदि सब तत्त्व गांधीवादी हैं। किन्तु प्रेमचन्द ने इनका प्रयोग इसीलिए किया है कि देश की तात्कालिक राजनीति का ऐसा ही रूप था। एक वस्तुवादी कलाकार के नाते प्रेमचन्द ने जो-कुछ देखा जिस रूप में देखा वही चित्रित कर दिया। गांधीजी के प्रभाव से देश-भर की नेतागिरी का यही रूप बना

हुआ था। जिस नीति ने गांधी-इरविन पैक्ट को जन्म दिया जिस नीति ने भगतसिंह और उनके साथियों को फांसी दिया जाना न्याय-सङ्गत माना जिस नीति के कारण स्वार्थी और ढोंगी पूंजीपति और जमींदार भी राष्ट्र भक्त बन गए उसी नीति का उच्चस्वर तो प्रेमचन्द ने अपनी रचना में प्रस्तुत किया है। उनका आदर्श पात्र अमर कान्त संघर्ष में पड़ता है शोषित जनता को जगाता है। महन्त के अत्याचारों के विरुद्ध लोग सङ्गठित हो जाते हैं। जनता उत्तेजित हो जाती है। स्वामी आत्मानन्द तैयार करते हुए कहते है— 'आओ आज हम सब चलकर महन्तजी का मकान और ठाकुरद्वारा घेर लें और जब तक वह लगान बिल्कुल न छोड़ दें कोई उत्सव न होने दें।" लोग कर गुजरने को तैयार हो जाते हैं। पर अमरकान्त सिर पीट लेता है और इस उत्तेजित जनता को ठण्डा करता हुआ कहता है— 'जिस रास्ते पर तुम जा रहे हो वह उद्धार का रास्ता नहीं है सर्वनाश का रास्ता है।" निश्चय ही उस युग का नेता उस समय यही कर रहा था। वह हर स्थान की उत्तेजित जनता को समझौते से शान्त करने में प्रयत्नशील था। विद्रोहियों और क्रान्तिकारियों को वह आग्नेय नेत्रों से देखता था अवांछित प्राणी समझता था। अमरकान्त भी आत्मानन्द के बारे में यही सोचता है। 'सचमुच आत्मानन्द आग लगा रहा है। अगर वह गिरफ्तार हो जाय तो इलाके में शान्ति हो जाय। स्वामी साहसी है यथार्थ वक्ता है देश का सच्चा सेवक है लेकिन इस वक्त उसका गिरफ्तार हो जाना ही अच्छा। क्या उस समय के कांग्रेसी नेताओं और स्वयं महात्मा गांधी की विद्रोहियों और साहसी क्रान्तिकारियों के प्रति यही मनोवृत्ति नहीं थी? प्रेमचन्द ने जो देखा वही चित्रित कर दिया। उस समय इसी समझौतावादी नीति का बोलबाला था। एक तरह से यह तर्क-बुद्धि पर भी खरी उतर रही थी। *विद्रोह और सशस्त्र क्रान्ति से अंग्रेजी शासन को हटाना* असम्भव-सा प्रतीत हो रहा था। इसीसे गांधीजी ने सत्याग्रह समझौता और वर्ग समन्वय का रास्ता अपनाया था। उन्हें अंग्रेजों की शक्ति का भय था। यही भय प्रेमचन्द के अमरकान्त को है और इसी भय से वह जनता के आवेश को ठण्डा करता है— अगर धैर्य से काम लोगे तो सब-कुछ हो जायगा। हुल्लड़ मचाओगे तो कुछ न होगा। उल्टे और दबा दिए जाओगे। प्रेमचन्द आरम्भ से ही सुलह-शान्ति की नीति को अपनाये हुए थे जिसे उन्होंने टाल्सटाय से लिया गांधी से लिया। और उसी नीति का जादू वह प्रत्यक्ष देख रहे थे अतः उसी का चित्रण उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है।

प्रेमचन्द ने आज की शिक्षा की भी आलोचना की है। 'हमने तालीम को भी एक व्यापार बना लिया है। कचहरियों में पैसे का राज है। यहाँ उससे कहीं कठोर यही नियम। देर से आइये तो जुर्माना किताबें न खरीद सकिये तो जुर्माना

कोई अपराध हो जाय तो जुर्माना। शिवालय क्या है जुर्मानालय है। और ऐसे शिवालयों से पैसे पर प्राण देने वाले पैसे के लिए गरीबों का गला घोंटने वाले पैसे के लिए आत्मा को बेच देने वाले छात्र निकलते हैं तो आश्चर्य क्या है ?" यह महँगी तालीम गरीबों के लिए तो असम्भव ही है। इसमें जितना खर्च करो उतना ही बड़ा ओहदा मिलता है। और वातावरण भी इसका तड़क भड़क और फैशन का है। स्वयं हमारे अध्यापक फैशन के गुलाम हैं। 'सादा जीवन और उच्च विचार' का सिद्धान्त यहाँ से कोसों दूर है।

'कर्म-भूमि' में भारतीय नारी के जागरण का अङ्कनाद भी पाया जाता है। सुखदा सकीना और नैना जाग्रत भारत की नारियाँ हैं।

कला की दृष्टि से कथा की शिथिलता के अतिरिक्त प्रेमचन्द ने चरित्र-चित्रण में भी कुछ भूलें की हैं। मुन्नी और सकीना के परिवर्तन में मनोवैज्ञानिक आधार पर्याप्त पुष्ट नहीं है। कुछ अन्य पात्रों का चरित्र चित्रण भी सजीव नहीं बन सका।

इस प्रकार प्रेमचन्द के 'गोदान' से पूर्व के उपन्यासों के उपर्युक्त संक्षिप्त अध्ययन से उनकी औपन्यासिक चेतना तथा मनोविकास का परिचय हुआ होगा। प्रेमचन्द की सामाजिक चेतना कितनी व्यापक थी यह उनके भिन्न भिन्न उपन्यासों में व्यक्त सामाजिक समस्याओं से स्पष्ट हो जाता है। उन्होंने हमारे जीवन की प्राय समस्त बुराइयों को अपनी रचनाओं में उभार कर रख दिया। समस्याओं के हल के जो-जो सुझाव या संकेत उन्होंने दिये हैं, उनसे चाहे कोई सहमत न हो—और मैं समझता हूँ कि प्रेमचन्द स्वयं अपने सुझावों और संकेतों से अन्त तक आते-आते सहमत नहीं रहे थे—पर समस्याओं के कारणों की खोज-बीन में उन्होंने कोई कसर नहीं उठा रखी। एक वस्तुवादी कलाकार के नाते वह जो कुछ जीवन में अनुभव करते गये उसे अपने उपन्यासों में उतारते गए। 'गोदान' में उनकी समाज-चेतना और कला ने विकास की एक और मंजिल तय की। 'सेवासदन' मोड़ का एक पत्थर था—न केवल प्रेमचन्द के मनोविकास का और औपन्यासिक चेतना का बल्कि समग्र हिन्दी साहित्य का मोड़ का पत्थर था— प्रेमाश्रम दूसरा मोड़ था जिसने कृषक जीवन और जमींदारी पद्धति का खाका प्रस्तुत किया 'रङ्गभूमि' तीसरा मोड़ बना जिसने पूँजीवाद और सामन्तशाही के विरुद्ध संघर्ष की राजनैतिक चेतना उत्पन्न की और 'गोदान' चौथा मोड़ है जिसमें हम उनकी कला और सामाजिक चेतना दोनों में विकास की नई दिशा पाते हैं जो न केवल प्रेमचन्द की औपन्यासिक चेतना का नया मोड़ है, अपितु समग्र हिन्दी साहित्य की दिशा-परिवर्तनकारी रचना कही जा सकती है।

●

५

गोदान में नया मोड़—कला का चरमोत्कर्ष

पिछले दोषों का परिहार

'गोदान' प्रेमचन्द की अन्तिम पूर्ण रचना है और निर्विवाद-रूप से सर्वश्रेष्ठ है। इसमें प्रेमचन्द की कला अपने चरम विकास पर है। प्रेमचन्द के इससे पूर्व उपन्यासों में कला और चिन्तन-सम्बन्धी जो कुछ दोष रह गए थे प्रेमचन्द ने उन *दोषों का परिहार भी इस रचना में किया है। यही नहीं, 'गोदान' हिन्दी साहित्य की* एक युग-प्रवर्तनकारी रचना है।

आलोचकों ने प्रेमचन्द की उपन्यास-कला पर कई आक्षेप किये हैं। शुक्लजी ने कहा था—प्रेमचन्द समाज सुधारक का चश्मा लगाकर आते हैं। प्राय: समीक्षकों को यह बात खटकती है कि प्रेमचन्द समाज से चुन करके अपने उपन्यासों को एक विशेष वस्तु के काल्पनिक [illegible]—किसी आश्रम [illegible] या सुधार के यूटोपियन (utopian) पूर्ण द्वारा अथवा [illegible]-हृदय परिवर्तन के द्वारा समाप्त करते हैं। फलत: उपन्यासों के [illegible] एक ही वस्तु का प्रचारात्मक सा हो गया।

श्री नन्ददुलारे वाजपेयी के निम्न आक्षेप हैं—(१) प्रेमचन्द का कोई स्वतन्त्र स्वानुभूत दर्शन नहीं है। केवल सामयिकता का आग्रह है। (२) उनके सामाजिक संघटन में कल्पना का अभाव है। कल्पना के अभाव के साथ उनमें तीव्र बौद्धिक दृष्टि और उसके फलस्वरूप निर्मित होने वाले व्यवस्थित जीवन-दर्शन का अभाव है। प्रेमचन्दजी किसी तात्त्विक निष्कर्ष तक नहीं पहुँचे। (३) उनका कहना है कि "समय ने प्रेमचन्द का उतना साथ नहीं दिया जितना प्रेमचन्द ने समय का दिया है। अर्थात् स्पष्ट-रूप में वाजपेयीजी ने कहा है कि प्रेमचन्द की रचनाएँ सामयिक हैं। वे सामयिक आँधी के साथ उड़ते देखे जा सकते हैं। आँधी से ऊपर उठकर स्वच्छ वातावरण में वे स्थिति का अध्ययन नहीं कर सकते और न उसके परिणाम हमें अवगत करा सकते हैं। (४) घटनाओं-बाहुल्य और वर्णनों का अनावश्यक विस्तार उनमें बहुत अधिक है। इसलिए उनकी कला में स्थूलता आ गई है। (५) चरित्र का निर्माण सूक्ष्म मनोगतियों की पहचान और कला का सौष्ठव

मिए तैयार हो जाती है और पाठक भी यही चाहता है कि जनता अपना असन्तोष उग्र रूप में प्रकट करे, वहाँ प्रेमचन्द अमरकान्त-द्वारा शान्ति का पाठ पढ़ा कर सारे उत्साह और जोश को ठण्डा कर देते हैं। यह रस-दोष नहीं तो क्या है? ऐसी स्थितियाँ 'कायाकल्प' और 'रङ्गभूमि' में भी एकाधिक स्थानों पर पाई जाती हैं।

'गोदान' में न सुधारवादी दृष्टि है न प्रचारवादी। यहाँ न किसी आश्रम की स्थापना हुई है और न ही किसी गान्धीवादी नेता की अवतारणा। यहाँ प्रेमचन्द की दृष्टि यथार्थवादी सत्य से ओतप्रोत है। यहाँ होरी के त्राण के लिए किसी लीडर की कल्पना नहीं की गई। उसे अपनी जीवन-नौका को स्वयं खेने दिया है। 'गोदान' एक शुद्ध यथार्थवादी कलाकृति है। यहाँ प्रेमचन्द गान्धीवादी विचारधारा से आगे स्वानुभूत जीवन-दर्शन प्रस्तुत करते हैं। मेहता का जीवन-दर्शन उनकी तीव्र बौद्धिक दृष्टि का परिचायक है जिसके अभाव का आक्षेप आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लगाया था। यह दर्शन केवल गान्धीजी-द्वारा सिखाया गया वचन नहीं है। चिन्तन और मनन का निक्षेपण इसमें पाया जाता है। 'गोदान' को सामयिक रचना भी कदापि नहीं कहा जा सकता। प्रेमचन्द ने उसके सामयिक रूप को युग-युग के मानवीय सत्य का रूप दिया है। यद्यपि सामयिकता का बहुत बड़ा दोष उनकी पूर्व की रचनाओं में भी नहीं है, फिर भी आन्दोलनों का एक जैसा रूप समस्याओं की समान रूप रेखा मेवामीरी का एक-जैसा रूप कुछ रचनाओं में एकरसता का दोष अवश्य उत्पन्न करता है। 'गोदान' में यह बात नहीं है।

श्री इलाचन्द्र जोशी ने 'गोदान' से बहुत पहले प्रेमचन्द पर 'मनोविज्ञान के कच्चे' होने का दोष लगाया था। यह बात भी कुछ अंशों तक सत्य है। कई स्थानों पर प्रेमचन्द ने चरित्र चित्रण-सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक भूल की थी। कई पात्रों के चरित्र परिवर्तन में वह पर्याप्त मनोवैज्ञानिक कारण नहीं दिखा सके। जैसे 'कर्मभूमि' के मुन्नी सकीना सलीम 'गबन' की जोहरा 'सेवासदन' में कृष्णचन्द्र आदि पात्रों का चरित्र-परिवर्तन ऐसा ही है। 'निर्मला' में रंगीलीबाई पहले तो बड़े जोर से कहती है कि हम निर्मला से अपने पुत्र का विवाह नहीं करेंगे किन्तु निर्मला की माता का पत्र पढ़ कर वह तुरन्त विधवा के प्रति उदारता दिखा कर और निर्मला का हाथ लेने का आग्रह करने लगती है। यह स्थिति अमनोवैज्ञानिक ही है। इन तरह की भूलें पहले उपन्यासों में कई स्थानों पर दिखाई देता है। 'प्रेमाश्रम' में ज्ञानशङ्कर की आत्महत्या तो अमनोवैज्ञानिक है ही अन्य पात्रों की इतनी हत्याओं में भी कोई तुक नहीं दिखाई देती। प्रेमचन्द ने कई स्थानों पर अपने आदर्शों या तर्कों के विरुद्ध पड़ने वाले पात्रों की अस्वाभाविक हत्याएँ कराई हैं। कहीं-कहीं समस्या को न सुलझता पाकर आत्महत्या करा देते हैं। 'रङ्ग भूमि' में विनय और सोफी की हत्याएँ ऐसी ही हैं।

'प्रेमाश्रम' के राय कमलानन्द और 'कायाकल्प' की देवप्रिया-जैसे विचित्र पात्र भी किसी किसी रचना में ऐसे हैं जो शायद ही कहीं इस धरती पर दिखाई दें। राय कमलानन्द प्रचण्ड लूलूमती गरमी में भी मोटा ऊनी कम्बल ओढ़ते हैं। 'गरमी में आग तापते हैं भाग पीते हैं। विष को वह दूध-सी समझता है। 'जाड़े में हिमकणों का सेवन' करता है।

'रङ्गभूमि' के पात्रों में एक और अस्वाभाविकता यह दीखती है कि कई निकट तम सम्बन्धी पात्रों को जानबूझकर विरोधी पक्षों में खड़ा कर दिया गया है। राजा महेन्द्रकुमारसिंह सरकार पक्ष के हैं उनकी पत्नी इन्दु सत् पक्ष की। भैरो और उसकी पत्नी का भी यही हाल है। विनय और उसके बहनोई महेन्द्रकुमारसिंह जानसेवक और उसके बेटा-बेटी में भी यही विरोध और विषमता है। यह कुछ अस्वाभाविक-सा लगता है। मानो अपने उद्देश्य की सरल पूर्ति के लिए लेखक ने जान-बूझकर ऐसी सृष्टि कर भी हो। 'गोदान' में ऐसी अस्वाभाविकता प्राय नहीं है। चरित्र-चित्रण पर इस रचना में प्रेमचन्द ने बल दिया है। पहले उपन्यासों में कुछ पात्रों का चरित्र विषम समस्या के नीचे दब गया था। परन्तु गोदान में ऐसा कुछ नहीं। 'गोदान' में प्रेमचन्द के चरित्र चित्रण की विशेषताएँ हमने आगे प्रकट की हैं। उनकी मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म दृष्टि पात्रों के व्यक्तित्व को उभारने का सफल प्रयत्न 'गोदान' में पाया जाता है। यहाँ पात्र केवल वर्गगत नहीं हैं उनमें व्यक्तित्व की सजीव रेखाएँ हैं।

प्रेमचन्द ने अपने आरम्भिक जीवन में घटना-वैचित्र्य-प्रधान उपन्यास और किस्से खूब पढ़े थे। यद्यपि वह उस रास्ते पर न चले और जीवन की यथार्थ अनुभूतियों को ही उन्होंने अपने उपन्यासों में अपनाया पर फिर भी आरम्भिक रचनाओं में कथा-वैचित्र्य और अद्भुत घटना-चक्र प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति उनमें थोड़ी बहुत उसी प्रभाव से बनी रही। उनकी रचनाओं के अध्ययन से यह सामान्य धारणा अवश्य बनती है कि वह अपने कथानकों में वैचित्र्य उत्पन्न करने के फेर में जहाँ-तहाँ अवश्य पड़ते रहे हैं। 'कायाकल्प' तो इस प्रवृत्ति का विचित्र उदाहरण है। 'प्रेमाश्रम' 'निर्मला' 'कायाकल्प' आदि रचनाओं में आकस्मिक घटनाओं और संयोगों (Coin-cidents) से उन्होंने बहुत काम चलाया है। उस आरम्भिक युग में सम्भवत यह चमत्कारी ढङ्ग अच्छा समझा जाता था। 'निर्मला' में बाबू उदयभानलाल की मृत्यु के संयोग को कथा विकास का आधार बनाया गया है। पर प्रेमचन्द इन संयोगों को बहुत बार स्वाभाविक ढङ्ग से प्रस्तुत नहीं कर सके। बाबू उदयभानलाल की मृत्यु के संयोग से लगता है कि जैसे लेखक ने अपनी कथा की आवश्यकता-पूर्ति के लिए जबरदस्ती की है। 'प्रेमाश्रम' की आकस्मिक हत्याएँ भी इस दोष से मुक्त नहीं हैं। 'गोदान' में इतिक संयोग और आकस्मिक घटनाएँ नहीं हैं। प्राय सब घटनाओं के मूल में मानव चरित्र की स्वाभाविक विचित्रता है। इसमें पात्र ही घटनाओं को जन्म

की आशङ्का उन्हें हरदम उद्विग्न कर रही है। कुछ पन्नों के बाद ही पाठक के सामने अनिष्ट प्रस्तुत हो जाता है। इस तरह के कितने ही उदाहरण प्रेमचन्द के उपन्यासों से दिये जा सकते हैं।

परन्तु 'गोदान' में अवश्य तो ऐसे संकेत हैं ही नहीं, प्रेमचन्द ने पुरानी आदत छोड़ दी है। यदि कहीं कोई एकाध है भी तो वह अकारण और अस्वाभाविक तो बिल्कुल नहीं है। एक उदाहरण देखिए—होरी ने गाय ली है। उसकी चिर अभिलाषा पूरी हो रही है। वह उल्लास से भरा है। वह गाय को द्वार के आगे बाँधना चाहता है। ऐसी गाय को देखकर ही तो लोगों को मालूम होगा यह होरी महतो का घर है। यह पुरुष का मनोविज्ञान है। पर धनिया के भीरु नारी हृदय का सजीव मनोविज्ञान भी प्रकट हुआ है। गाय के आने से धनिया अपने उल्लास को दबाये रखती है। इतनी बड़ी सम्पदा अपने साथ कोई बड़ी बाधा न लाये यह आशङ्का उसके हृदय में कम्पन डाल रही थी। मानो वह भगवान को भी धोखा देना चाहती थी। भगवान् को भी दिखाना चाहती थी कि इस गाय के आने से उसे इतना आनन्द नहीं हुआ कि ईर्ष्यालु भगवान् कोई नई विपत्ति न भेज दें। होरी गाय को बाहर बाँधना चाहता है पर वह ज़िद करके गाय को सात परदों के भीतर छिपाकर रखना चाहती है, भीतर बाँधती है। कहीं किसी की नजर न लग जाय। दातादीन गाय देखने आते हैं। होरी खूब प्रशंसा करता हुआ गाय के नीचे का दूध बताता है। तब धनिया बाहर आकर कहती है—"अरे! इतना कहाँ है!" उसका नारी-हृदय कितना सजीव है! उसे नजर लग जाने का डर है। दातादीन उसकी बात भाँप कर जाते हुए कहते हैं—बाहर न बाँधना इतना कह देते हैं।

इस प्रसङ्ग से यद्यपि भावी अनिष्ट की कुछ आशङ्का या आभास पाठक को होने लगता है पर यह कितना मनोवैज्ञानिक है! अकारण तो कुछ कहा ही नहीं गया। धनिया का 'नजर' से डरने वाला स्वाभाविक नारी-हृदय कितना मनोवैज्ञानिक सत्य लेकर आया है! दातादीन का कथन भी कार्य-कारण रूप से प्रकट हुआ है। इससे पाठक के मन में कोई पूर्व धारणा दृढ़ नहीं हो पाती। प्रसङ्ग अतीव रोचक बना रहता है।

इनके उपन्यासों में घटनाओं की पुनरावृत्ति भी होती है। 'सेवासदन' में सुमन गङ्गा में डूबने जाती है और फिर लौट आती है। रूपचन्द्र डूबने जाते हैं और डूब जाते हैं। 'प्रेमाश्रम' में भी गङ्गा डूबने चलती है, प्रेमशङ्कर उसे बचा कर लौटा लाते हैं। ज्ञानशङ्कर एक बार तो पानी से निकल आता है पर दूसरी बार नदी में डूबकर ही सदा के लिए हृदय-दाह को शान्त कर लेता है। 'प्रेमाश्रम' में प्रेमशङ्कर को जेल जानी पड़ती है। 'रङ्गभूमि' में विनय जेल होता है, 'कायाकल्प' में चक्रधर के

मन्त्र में सक्रीन घुमती है और 'कर्मभूमि' में शान्तिकुमार बायम होते हैं—सबके सब एक ही सी परिस्थिति में पड़कर—जनता और जनता के ऊपर अत्याचार करने वालों के बीच में पड़कर। कर्मभूमि में अद्दिन मदामा और अभियोग का स्थिति-चित्र प्राय वैसा ही है जैसाकि 'गबन' 'कायाकल्प' और 'प्रेमाश्रम' में।[1] श्री जनार्दन प्रसाद झा के इस कथन में भी पर्याप्त सत्यता है और जैसा कि हम कह चुके हैं यह पुनरावृत्ति उनकी विशेष गांधीवादी दृष्टिकोण के कारण ही विशेष रूप से आई है। परन्तु 'गोदान' की सम्पूर्ण विषय-सामग्री नई है समस्त घटनाएँ नवीन हैं। कहीं पर भी ऐसा आभासित नहीं होता कि प्रेमचन्द ने पुरानी बातें ही दोहराई हैं। पहले उपन्यासों में पात्रों की चरित्र-परम्परा भी एक-सी थी। अपने सिद्धान्तों मनोवृत्ति और प्रवृत्ति के नाते अधिकांश पात्र एक जैसे हैं। चरित्र-निरूपण एक ही ढर्रे का है। परन्तु 'गोदान' में यह दोष भी पर्याप्त मात्रा में दूर हुआ है।

प्रेमचन्द की सामाजिक दृष्टि भी गोदान में सर्वाधिक बढ़ी चढ़ी है। समाज की समस्याओं का जितना अधिक व्यापक और गहन रूप 'गोदान' में है वैसा पहले की किसी एक रचना में नहीं मिलता। वर्ग-विषमता का जैसा सजीव चित्रण 'गोदान' में है वैसा पहले किसी रचना में नहीं आ सका। इसी कारण भाव-संवेदनाएँ भी 'गोदान' में अत्यन्त गहरी हैं। भाव-सौन्दर्य और कला का जैसा सुन्दर सामञ्जस्य गोदान में है वैसा अन्य रचनाओं में नहीं। 'गोदान' की भाषा-शैली अत्यन्त उत्कृष्ट है। उसमें लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और व्यंग्यात्मक व्यञ्जना बहुत सुन्दर है। पहले की रचनाओं में प्रेमचन्द मुसलमान पात्रों से अनावश्यक रूप से उर्दू शब्दों का अधिक प्रयोग कराते थे। भाषा का यह भेद भी प्रेमचन्द ने 'गोदान' में दूर किया।

निश्चय ही 'गोदान' अपनी यथार्थवादी दृष्टि से हिन्दी-साहित्य में एक क्रान्तिकारी रचना सिद्ध हुई। साहित्य में पहली बार एक दीनहीन निम्नवर्ग के किसान को नायक बनाकर उसके जीवन की मार्मिक परिस्थितियों का चित्रण हुआ। 'गोदान' कृषक जीवन की लोक-संस्कृति का प्रतीक है। यह भारत की ८० प्रतिशत जनता की मूक वाणी का चीत्कार बना है। इतने बड़े सामाजिक चित्रपट पर भारतीय साहित्य की यह पहली अद्भुत रचना कही जा सकती है। रवि बाबू शरत् तथा कन्हैयालाल मुन्शी-जैसे श्रेष्ठ भारतीय साहित्यकारों की रचनाएँ भी इतने विस्तृत चित्रपट को नहीं छू सकीं।



---

१ जनार्दनप्रसाद झा : 'प्रेमचन्द की उपन्यास-कला' पृष्ठ ७०

६

गोदान की तात्त्विक समीक्षा

१ भाव और रस : रसवादी समीक्षा

रस भाव साहित्य का प्राण-रूप अनिवार्य तत्त्व है। इसके बिना कोई रचना साहित्य (काव्य) की परिधि में आ ही नहीं सकती। बहुत-से आधुनिक आलोचक साहित्य-समीक्षा—विशेषकर आधुनिक साहित्य की समीक्षा में रस-तत्त्व की अब हेलना करने लगे हैं। उनका विचार है कि रस के सड़े-गलाये चौखटे में नव-साहित्य की परख नहीं हो सकती। प्रगतिवादी आलोचक भारतीय रस-सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध हैं। डा० रामविलास शर्मा ने अपने एक लेख 'रस सिद्धान्त और आधुनिक साहित्य' में कहा है—"साहित्य विकासमान है और यह एक महान् सामाजिक क्रिया है, इसका सबसे बड़ा सबूत यह है कि प्राचीन आचार्यों ने भविष्य देखकर जो सिद्धान्त बनाये थे वे आज नए साहित्य पर पूरी-पूरी तरह लागू नहीं किये जा सकते। उन्हें लागू करने से या तो पैमाना टूट जायगा या फिर अपने ही पैरों को थोड़ा तराशना पड़ेगा। काव्य के नौ रसों से नये साहित्य की परख नहीं होती। जीवन की धाराएं एक-दूसरे से इतनी मिली-जुली हैं कि नौ रसों की मेड़ बांध कर उन्हें अपने मन के मुताबिक नहीं बहाया जा सकता। प्रेमचन्द के साहित्य ने यह सिद्ध कर दिया है कि इस नये साहित्य को परखने के लिए युग के अनुकूल नये सिद्धांत ढूंढने होंगे।"— "इसलिए साहित्य के सामने यह समस्या नहीं है कि रस नौ होते हैं या इससे ज्यादा और 'मेघदूत' में शृङ्गार है या रसाभास। इन संचारी-व्यभिचारी भावों को रटन्त कर हम अपने विद्यार्थियों को साहित्य की प्रगति से दूर रखने का विफल प्रयास कर रहे हैं। साहित्यकार सामाजिक उत्तरदायित्व को भूलकर अमर आत्मा की अखण्डता और रस के स्वयंप्रकाश अलौकिक ब्रह्मानन्द-सहोदर होने की बातें दोहराता रहेगा तो वर्गहीन समाज के निर्माण में सहायक न हो सकेगा।"

रस और रस-सिद्धान्त के बारे में इस धारणा के कई कारण हैं। एक तो रस के उदात्त रूप की प्रतिष्ठा—ऐसी कि जिसमें जीवन के प्रगतिशील तत्त्व समाहित रहते हैं—प्राचीन रस-आचार्य नहीं कर सके थे। उनके लिए मधुरतम शृङ्गाररस की रामकृष्णापूर्ण रति भी रस का उदाहरण थी और श्याम वात्सल्य साहस आदि

उदात्त भावनाओं से परिपूर्ण प्रेम का चित्रण भी शृङ्गार रस का उदाहरण था। इन दोनों में म हत्ता की दृष्टि से परख का विचार उनके सम्मुख था ही नहीं। दूसरे, आज तक हम अपनी रस-दृष्टि केवल इस बात में ही सीमित किए हुए है कि अमुक रचना में कौन-कौन सा रस है किस रस की प्रधानता है। अर्थात् हमारी रस-दृष्टि केवल रस-गिनाने तक ही सीमित रहती है। हम भावों और रसो की जीवनोपयो *गिता तथा उनके आधार पर कवि या लेखक की संपूर्ण रचना प्रक्रिया का विश्लेषण* नहीं करते और इस प्रकार रस सिद्धान्त एक सीमित समीक्षा सिद्धान्त प्रतीत होता है। ऐसा लगता है कि उसका समाज और जीवन की प्रगति से विशेष सम्बन्ध नहीं कि वह वैयक्तिक आनन्दानुभूति-मात्र है।

हमने रस सिद्धान्त को समीक्षा का मानदण्ड सिद्ध करते हुए रसों के उदात्त रूप-स्वरूप की विस्तृत विवेचना और सब तत्त्वों से समन्वित रसवादी समीक्षा की रूपरेखा तथा उसके आधार पर नवसाहित्य—विशेषत नई कविता—की समीक्षा का प्रयत्न अपनी पुस्तक 'रसवाद और साहित्य-समीक्षा' मे किया है। यहाँ तो हम केवल संक्षेप मे यह कहना चाहते हैं कि रस की अवहेलना से काम न चलेगा। रसतत्त्व में जीवन की सम्पूर्ण उदात्तता को समाहित करने की शक्ति है। जीवन के वैषम्य पर क्षुब्ध करुणार्द्र या घृणा से प्लावित हुए बिना अर्थात् भावानुभूति या रसानुभूति के बिना कोई व्यक्ति वर्गहीन या वैषम्यहीन समाज के निर्माण में प्रवृत्त हो ही नहीं सकता या यों कहें कि काव्य या साहित्य मे सामाजिक विषमता के प्रति लेखक की घृणात्मक तथा करुणामय प्रतिक्रिया ही—जो निश्चय ही पाठक के लिए रसानुभूति होती है—वर्गहीन समाज के निर्माण मे सहायक होगी। जब यह कहा जाता है कि 'गोदान' कृषक-जीवन की 'ट्रेजेडी' है तो क्या इससे यह अभिप्राय है कि उसमें कृषक-जीवन की समस्याएँ प्रस्तुत की गई हैं? इससे निश्चित ही जीवन की करुणा अभिप्रेत है जो करुण रस ही है। इसी प्रकार जब हम कहते हैं कि गोदान में शोषकों के अनेक रूप हैं तो इसका सीधा मतलब यह है कि 'गोदान' में घृणा या बीभत्स रस के अनेक आलम्बन है। समाज की बुराइयाँ कुरीतियाँ अत्याचार अना चार, अन्याय सब जो चित्रित होते हैं वे घृणा या बीभत्स रस के विषय ही तो हैं।

आज के हमारे अनेक आलोचक समीक्षा के कुछ बाह्य मानदण्डो या सिद्धान्तों को सत्य मानकर समीक्षा करना चाहते है। साहित्य के मूल तत्त्व भाव रस की वे अवहेलना करते प्रतीत होते हैं। इस सम्बन्ध में हमारा आग्रह है कि साहित्य-समीक्षकों को युग-साहित्य के नियमो की विवेचना करते हुए साहित्य के मूलभूत शाश्वत मान दण्ड—रस या उदात्त भाव रस—को नहीं भुलाना चाहिए। चाहे हम महाकाव्य के लक्षणों या नियमों की विवेचना कर रहे हो या उपन्यास के तत्त्वों की हमें सदा उन

तत्त्वों को प्रमुखता देनी चाहिए जो साहित्य के मूल तत्त्व हैं। हमारे प्राचीन आचार्यों ने महाकाव्य के लक्षणों पर प्रकाश डालते हुए छन्द-नियम, सर्ग-संख्या, मङ्गलाचरण आदि बाह्य बातों को भी उतना आवश्यक ठहराया जितना रस-परिपाक और उदात्तता आदि अन्तरङ्ग तत्त्वों को। महाकाव्य के व्यापक और शाश्वत आभरणों के आधार पर उनके अनिवार्य अन्तरङ्ग तत्त्वों और परिवर्तनीय बाह्य तत्त्वों में भेद अलाकर पृथ विवेचना आचार्यों ने नहीं की। अब यदि कोई समीक्षक किसी आधुनिक महाकाव्य में मङ्गलाचरण या प्राचीन छन्द-नियम आदि न पाकर उसे दूषित ठहराने लगे तो उसकी आलोचना कितनी हास्यास्पद होगी! यह भी बात है कि आज भी हम यही गलती दोहरा रहे हैं। उपन्यास, कहानी आदि आधुनिक साहित्य-विधाओं के तत्त्व निरूपण में हम पाश्चात्य समीक्षकों के अनुकरण पर मूल तत्त्व को भुला रहे हैं। उपन्यास-कहानी के तत्त्व प्रकाशित करते हुए बहुत-से आलोचक भावानुभूति—रस भाव तत्त्व—को गिनाते ही नहीं। प्रेमचन्द के उपन्यासों की समीक्षा करने वाले कई समीक्षकों ने भाव-संवेदनाओं की दृष्टि से मूल्याङ्कन छोड़ ही दिया है। क्या प्रेमचन्द की महानता केवल इस बात में है कि उन्होंने समाज की विविध समस्याओं का बोध कराया जो कार्य कि एक समाज-शास्त्री भी कर सकता था? मैं समझता हूँ, प्रेमचन्द इसलिए महान् हैं कि उन्होंने जीवन के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर हमारी भाव-संवेदनाएँ जगाई जो युग के महान् सांस्कृतिक निर्माण से सम्बन्ध रखती हैं। अनुभूति-पक्ष के रसात्मक तत्त्वों के माध्यम से ही प्रेमचन्द के प्रगतिशील तत्त्वों का अध्ययन करना समीचीन है। इसके बिना उनकी समीक्षा अधूरी ही कही जा सकती है। प्रेमचन्द के उपन्यासों की सबसे बड़ी शक्ति उनमें व्यक्त उदात्त भाव और रस ही हैं।

बीभत्स[1] रस का प्रसार

प्रेमचन्द के उपन्यासों का बीज भाव घृणा ही है। उनके उपन्यासों में हमें समाज की विकृतियों के अनेक चित्र मिलते हैं। प्रेमचन्द ने समाज की इन विकृतियों के प्रति घृणा से भर कर ही साहित्य-रचना की। एक तरह से घृणा का भाव ही उनका मूल प्रेरक भाव है। स्वयं प्रेमचन्दजी ने स्पष्ट कहा है—"पाखण्ड, धूर्तता, अन्याय, बलात्कार और ऐसी ही अन्य कुप्रवृत्तियों के प्रति हमारे अन्दर जितनी ही प्रचण्ड घृणा हो उतनी ही कल्याणकारी होगी।"[2] इतने व्यापक चित्र-पट पर सामाजिक बुराइयों का अवलोकन शायद ही किसी अन्य लेखक ने किया हो। हमारी वैवाहिक पद्धति की विकृतियाँ बेमेल विवाह, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, दहेज-प्रथा

---

[1] बीभत्स-रस के सही रूप-स्वरूप के अध्ययन के लिए हमारा शोध-ग्रन्थ 'बीभत्स रस और हिन्दी साहित्य' देखें।

[2] प्रेमचन्द और उ का युग : डा० रामविलास शर्मा—पृ० १२।

नारी का उत्पीड़न, वेश्या-जीवन का कलंक, विधवा जीवन की विडम्बना, सामन्तीय या जमींदारी तथा पूँजीवादी शोषण, धार्मिक ढोंग, महन्तों और मठाधीशों की दुश्चरित्रता, अन्याय और दुर्दशा, छुआछूत का कलंक, वर्ण भेद, नशेबाजी, अन्धविश्वास, संकुचित [illegible] मनोवृत्ति, रिश्वतखोरी, धर्म भेद, हिन्दू मुसलिम तथा अन्य सामाजिक और धार्मिक साम्प्रदायिकता, स्वार्थपरता, राष्ट्रीय भावना का अभाव, मुकद्दमा, झूठी शान बढ़ाने की प्रवृत्ति, पुलिसवालों के हथकण्डे और अत्याचार, ब्रिटिश नौकरशाही के जुल्म, गाँव का बिगड़ा महाजनी पूँजीवाद तथा अन्य अनेक सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियाँ आदि अनेक सामाजिक विकृतियाँ प्रेमचन्द के उपन्यासों में उभर कर आई हैं। इन सब बुराइयों के प्रति घृणा उत्पन्न करके स्वस्थ समाज के निर्माण की प्रेरणा ही प्रेमचन्द का उद्देश्य रहा है। बीभत्स रस के उपर्युक्त अनेक आलम्बन उनके उपन्यासों में पाये जाते हैं। यह बीभत्स रस या उदात्त घृणा भाव ही है जो प्रेमचन्द के उपन्यासों को सबल और सशक्त रचनाएँ सिद्ध करता है। इसी के माध्यम सामाजिक बुराइयों के मूलोच्छेदन की प्रेरणा हमें प्राप्त होती है। उनके सेवासदन और प्रेमाश्रम निश्चित रूप से बीभत्स रस प्रधान उपन्यास हैं। अन्य उपन्यासों में भी बीभत्स रस का पर्याप्त विस्तार पाया जाता है।

शोषक शोषण के विविध रूप

गोदान में बीभत्स रस की प्रचुर सामग्री पाई जाती है। इसमें घृणा के अनेक आलम्बनों का प्रसार है। यद्यपि इस रचना का प्रधान रस करुण ही है तथापि बीच भाव घृणा ही है। महाजनी शोषण, जमींदारी शोषण, धार्मिक शोषण और वर्ग विषमता की यह मुँह-बोलती तस्वीर है। 'गोदान' कृषक-जीवन की अत्यन्त करुण कहानी है। करुण-परिस्थितियाँ अधिकतर शोषण, अत्याचार और अन्याय का परिणाम हैं। अतः इस उपन्यास में यद्यपि प्रधान रस करुण ही है किन्तु उसके साथ-साथ बीभत्स रस की व्याप्ति भी आद्योपान्त है। बीभत्स रस और करुणा का सह-अस्तित्व और उदात्त प्रसार ही गोदान की बड़ी शक्ति है। बीभत्स रस के अनेक प्रकार के आलम्बन प्रकट हुए हैं। गरीबों का शोषण करने वाले, घूस लेने वाले, नजर-नजराना, चंदा तथा अपने धार्मिक या सामाजिक विनोद के लिए गरीबों से जबरदस्ती चन्दा लेने वाले रायसाहब अमरपालसिंह, उनके बेईमान, आचारभ्रष्ट और गरीब किसानों पर अत्याचार करने वाले, लगान वसूली की रसीद न देकर, दुगुना वसूल करने वाले, बेगार लेने वाले और बरसों व्यभिचार करनेवाले नोखेराम जैसे कारिन्दे, मंगरू साहु, पंडित दातादीन तथा झिंगुरीसिंह-जैसे निर्दयी सूदखोर महाजन, पटेश्वरी जैसे स्वार्थी और नामी पटवारी, परम्परापन्थी, अन्यायी और स्वार्थी पंच, रिश्वतखोर स्वार्थी और अन्यायी पुलिस दारोगा, धर्म की ओट में शोषण करने वाले मातादीन तथा छुआछूत

ऊँच-नीच और जात-पात का भेद रखने वाले स्वार्थी पण्डित दातादीन और उसके सम्पन्न पुत्र मातादीन, किसानों की ऊख कम तोलने वाले, मजदूरों का शोषण करने वाले और रसिक-सम्पन्न बेईमान मिल-मालिक खन्ना, रिश्वतखोर ढोंगी और लम्पट ब्राह्मण, काश्मीरी सप्रू की स्वच्छन्द लड़कियाँ, स्वार्थी और कुमन-प्रकृति पत्रकार ओंकारनाथ आदि अनेक पात्र घृणा के पूर्ण आलम्बन हैं।

'गोदान' में शोषण के विविध रूप मिलते हैं। 1 सामन्तीय शोषण या जमींदारी पद्धति-द्वारा शोषण। इसके अन्तर्गत रायसाहब अमरपालसिंह जैसे जमींदार और उनके कारिन्दे आते हैं। रायसाहब अन्यायपूर्वक लगान वसूल करता है, बेदखल करवाता है और असामियों को तंग करता है, उनसे बेगार लेता है और नजराना वसूल करता है। उसका एक वीभत्स चित्र देखिए। रायसाहब अपने धार्मिक और सामाजिक शौक और विनोद के लिए धनुष-यज्ञ की तैयारियाँ करा रहे हैं। लेकिन असामियों से बेगार ले रहे हैं। एक चपरासी आकर कहता है—'सरकार बेगारों ने काम करने से इन्कार कर दिया है। कहते हैं जब तक हमें खाने को न मिलेगा हम काम न करेंगे।

'राय साहब के माथे पर बल पड़ गए। आँखें निकाल कर बोले—'चलो, मैं इन दुष्टों को ठीक करता हूँ। जब कभी खाने को नहीं दिया गया तो आज यह नई बात क्यों? एक आने रोज के हिसाब से मजूरी मिलती, जो हमेशा मिलती रही है और इस मजूरी पर उन्हें काम करना होगा, सीधे करें या टेढ़े।"

यह अन्यायी ढोंगी जमींदार जो अभी-अभी होरी के आगे नीति और धर्म की बात कर रहा था, एकदम कैसा बदल गया! ये जमींदार जो अपनी झूठी शान रखने के लिए जमीन-आसमान के कुलाबे मिलाते हैं, कभी राष्ट्रवादी बनते हैं और कभी अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये राज-भक्त, जिसका धर्म-कर्म कोरा पाखण्ड है, गरीबों का खून चूस कर जो अपने भव्य-भोग परोपजीवी कुल को अन्याय से पालता है, जो पत्र-पत्रिकाओं का मुँह बन्द रखने के लिए मनमाना चन्दा देता है, हमारी तीव्र घृणा जगाता है। राजा सूर्यप्रतापसिंह भी ऐसे ही पुरुष हैं। मेहता उनके बारे में कहता है—'लखनऊ में आप किसी दुकानदार, किसी अहलकार, किसी राहगीर से पूछिये उसका नाम सुनकर गालियाँ देगा।"

और यह नोखेराम! कारिन्दा है।" वेतन तो दस रुपये से ज्यादा न था पर एक हजार साल की ऊपर की आमदनी थी। सैकड़ों आदमियों पर हुकूमत, चार चार प्यादे हाजिर, बेगार में सारा काम हो जाता था। बेईमान और धूर्त! होरी ने लगान का सारा हिसाब चुकता कर दिया। पर यह कारिन्दा जो साल की बाकी निकाल कर ब्याज जोड़ देता है। क्योंकि रसीद तो उसने दी नहीं थी क्या

सबूत है कि लगान चुका दिया ? होरी घाटे में आ जाता है। गोबर गर्म होकर नोखेराम के पास गया और सबके सामने पूछा — 'यह क्या बात है कारिन्दा साहब कि आपके बाबा ने हाथ तक का लगान वसूल कर दिया और आप अभी दो साल की बाकी निकाल रहे हैं। यह कैसा गोलमाल है ?' नोखेराम जब रोब दिखाता है तो वह फटकारता हुआ साफ कह देता है— 'इसी गाँव से एक सौ शहादतें दिला कर साबित कर दूँगा कि तुम रसीद नहीं देते। सीधे-सादे किसान हैं कुछ बोलते नहीं तो तुमने समझ लिया कि सब काठ के उल्लू हैं। राय साहब वहीं रहते हैं जहाँ मैं रहता हूँ। रत्ती रत्ती हाल कहूँगा और देखूँगा तुम कैसे मुझसे दोबारा रुपये वसूल कर लेते हो !' नोखेराम सटपटा गए। इस नोखेराम की सीरत के साथ ही लगे हाथ सूरत भी देख लीजिए— 'नोखेराम मोटे-मोटे अक्खड़ गन्दी नाक और छोटी-छोटी आँखों वाले साँवले आदमी थे। बड़ा-सा पग्गड़ बाँधते नीचा कुरता पहनते। उन्हें तेल की मालिश कराने में बड़ा आनन्द आता था इसलिए उनके कपड़े हमेशा मैले चीकट रहते थे। मानो मन की मैल अन्दर न समाकर बाहर फूटी आ रही हो !'

यह पहले दर्जे का दुश्चरित्र है। भोला की पत्नी नोहरी का वह रस ही लेता है। गाँव का पञ्च बनकर गरीबों को लूटता है रिश्वत में दलाली खाता है और महाजनी करता है सो अलग !

महाजनी शोषण का भी बड़ा ही सजीव चित्रण 'गोदान' में मिलता है। महाजनी संस्कृति का विकास हो रहा है। जिसके पास चार पैसे हुए, वही महाजन बन रहा है। गाँव में एक नहीं कई महाजन हैं—मंगरूशाह, दुलारी सहुआइन, पं० दातादीन, बिसेसर साह, पटेश्वरी पटवारी और नोखेराम सब महाजन बने हुए हैं। शहर के पूँजीपति सेठ का एजेण्ट बना हुआ झिंगुरीसिंह भी गाँव में विद्यमान है। ये लोग किसान को भारी सूद पर कर्ज देते हैं। देते वक्त दस के आगे पाँच हाथ पर रखते हैं कागज लिखाई दस्तूरी नजर सब पहले ही काट लेते हैं। और ब्याज की रकम दिनों-दिन बढ़ती जाती है। बीस के एक सौ साठ हो जाते हैं। पचास के तीन सौ। किसान सब का ऋणी बन जाता है। उसकी उपज तैयार होती है। 'झिंगुरीसिंह के सभी रिनियाँ थे और सबकी यही इच्छा थी कि झिंगुरीसिंह के हाथ रुपये न पड़ने पायें नहीं तो वह सब का सब हजम कर जायगा। और जब दूसरे दिन असामी फिर रुपए माँगने जायगा तो नया कागज नया नजराना नयी तहरीर। दूसरे दिन शोभा आकर बोला— 'दादा कोई ऐसा उपाय करो कि झिंगुरीसिंह को हैजा हो जाय। ऐसा गिरे कि फिर न उठे।"

होरी ने मुसकाकर कहा—क्या उसके बाल-बच्चे नहीं हैं।

उनके बाल-बच्चों का देखें कि अपने बाल-बच्चों को देखें? वह तो दोनो मेहरियों को आराम से रखता है यहाँ तो एक को रूखी रोटी भी मयस्सर नहीं। सारी जमा ले गया। एक-एक पैसा भी घर न आने देगा। न जाने इन महाजनों से कभी गला छूटेगा कि नहीं।

होरी बोला—इस जनम में तो कोई आशा नहीं है भाई! हम राज नहीं चाहते भोग विलास नहीं चाहते खाली मोटा-झोटा पहनना और मोटा-झोटा खाना और मरजाद के साथ रहना चाहते हैं। वह भी नहीं सधता।

कैसी विषमता है! करुण और वीभत्स रस का कैसा सुन्दर सह-अस्तित्व है! निरीह दरिद्र किसान के आत्मकथन से करुण रस और शोषक महाजन से वीभत्स रस का कैसा सुन्दर सञ्चार हो रहा है! इन महाजनों से गला छुड़ाना मुश्किल है। शोषण हुआ है— पैसे बास उधार न दें तो सूद कहाँ से पायें। एक हमारे ऊपर दावा रखता है तो दूसरा हम कुछ कम सूद पर रुपये उधार देकर अपने जाल में फँसाता है।"

महाजनों ने जो ऊख कटते देखी तो पेट में चूहे दौड़े। एक तरफ से दुलारी दौड़ी दूसरी तरफ से मंगरूसाह तीसरी ओर से दातादीन पटेश्वरी और झिंगुरी के प्यादे। मंगरूसाह होरी को डाँट कर कहते हैं—"पहले हमारे रुपये दे दो होरी तब ऊख बाँधो। यह न समझना कि तुम मेरे रुपये हजम कर जाओगे मैं तुम्हारे मुर्दे से भी वसूल कर लूँगा।

प्रेमचन्द ने इन महाजनों की काली करतूत ही प्रकट नहीं की इनकी काली भौंडी आकृति के भी चित्र दिये हैं जिनसे इनका घिनौना रूप और भी प्रत्यक्ष हो जाता है। मंगरूसाह का चित्र है—"काला रङ्ग तोंद कमर के नीचे लटकती हुई दो बड़े-बड़े दाँत सामने जैसे काट खाने को निकले हुए, सिर पर टोपी गले में चादर, उम्र अभी पचास से ज्यादा नहीं पर लाठी के सहारे चलते थे। गठिया का मरज हो गया था। खाँसी भी आती थी।"

दाता मंगरूसाह से कहता है—"पचास रुपये के तीन सौ रुपये लेते तुम्हें जरा भी शर्म नहीं आती!"

किसान की ऊख मिल में पहुँची। तौल शुरू होते ही झिंगुरीसिंह ने मिल के फाटक पर आसन जमा लिए। हर एक की ऊख तौलने से दाम का पुरजा लेते थे खजांची से रुपये वसूल करते थे और अपना पावना काटकर असामी को दे देते थे। असामी कितना ही रोये चीखे किसी की न सुनते थे।

होरी को एक सौ बीस रुपये मिले। उनमें से झिंगुरीसिंह ने अपने पूरे रुपये

सूद-समेत काटकर कोई पचास रुपये होरी के हवाले किए। ये महाजन तो ताक में थे ही। होरी बाहर निकला कि नोखेराम ने ललकारा। होरी ने जाकर पचासों रुपये उनके हाथ पर रख दिये और बिना कुछ कहे जल्दी से भाग गया। उसका सिर चक्कर खा रहा था। शोभा को भी इतने ही रुपये मिले थे। वह बाहर निकला तो पटेश्वरी ने घेरा। शोभा ने साफ कहा— 'मेरे पास अब जो कुछ बचा है वह बाल-बच्चों के लिए है।' पर पटेश्वरी को इससे क्या? धमकी देकर तुरन्त उगाहना लेता है। किसान को सारे साल की मेहनत का यह नहीं फल मिला कि उसके पास एक कौड़ी भी नहीं रही। सारा साल फिर इन महाजनों से काम चलाए, फिर फिर कागज के तह-रीर के कौंसी के नजर-नजराने के रुपये काटकर सौ के पचास पाओ और लिख पर सवाया सूद दो। यही चक्र हर साल चलता है। गिरधर के शब्द कितने मार्मिक हैं व्यथा और घृणा से रोषमय भरे हुए— 'झिंगुरी ने सारे का सारा ले लिया होरी काका! चुहिया को भी एक पैसा न छोड़ा। हत्यारा कहीं का! रोया गिड़गिड़ाया पर इस पापी को दया न आई। एक कसी मुँह में दबा ली थी। उसकी ताड़ी पी ली। सोचा साल भर पसीना गारा है तो एक दिन ताड़ी तो पी लूँ। बीस लिए थे उससे एक सौ मार मरे कुछ हुए हैं! कितनी लूट है!' बिसेसर साह वाले रुपये में कम सूद नहीं लेता।

और यह महाजन दुश्चरित्र भी है। मातादीन सुनिया से मीठी-मीठी बात करने के लिए किसी-न किसी बहाने रोज घर आता है। नोखेराम दरपर्दा व्यभिचार करता है। भोहुरी को उसने एक तरह रखैल ही बना लिया है। पटेश्वरी अपनी विधवा कहारिन को रखे हुए है।

दातादीन ने बैल के लिए तीस रुपये उधार दिये थे। अब दो सौ माँगता है। गोबर कहता है— 'सुनो एक बात है तुमने बैल के लिए तीस रुपये दिये थे। उसके सौ हुए। और अब सौ के दो सौ हो गए। इसी तरह तुम लोगों ने किसानों को लूट-लूट कर मजूर बना डाला और आप उनकी जमीन के मालिक बन बैठे। तीस के दो सौ! कुछ हद है! और अब यह कहता है एक रुपया सैकड़ा सूद के हिसाब से छत्तीस बनते हैं। 'उसके सत्तर ले लो। इससे बेसी मैं एक कौड़ी न दूँगा।' तो यह महाजन धर्म की दुहाई देता है क्योंकि वह भगवान् का विशेष कृपा-पात्र है! वह कहता है— 'यह समझ लो मैं ब्राह्मण हूँ, मेरे रुपये हजम करके तुम चैन न पाओगे।'

यही नहीं यह महाजन भी अपने रुपये के बल पर किसान से बेगार लेता है। दातादीन होरी से अपने खेत सेंतमेंत में जुतवाता है। होरी से वह रौब में कहता है— क्या आज भी तुम काम करने न आओगे होरी? अब तो तुम अच्छे हो गये। गोबर ने बीच में ही कहा 'अब यह तुम्हारी मजूरी न करेंगे। हम अपनी ऊख की

तो बोली है।"

जनार्दन ने मुरली फेंकते हुए कहा— काम कैसे नहीं करेंगे साल के बीच में काम नहीं छोड़ सकते। गोबर ने जम्हाई लेकर कहा – उन्होंने तुम्हारी गुलामी नहीं लिखी है। जब तक इच्छा थी काम किया। अब नहीं इच्छा है नहीं करेंगे। इसमें कोई जबरदस्ती नहीं कर सकता।

तो हाजिरी काम नहीं करेंगे ?

ना!

तो हमारे रुपये सूद-समेत दे दो। । गोबर फिर ललकारता हुआ कहता है— अच्छी दिल्लगी है। किसी को भी रुपये उधार दे दिये और उससे सूद में जिन्दगी-भर काम लेते रहो। मूल ज्यों-का-त्यों! यह महाजनी नहीं है खून चूसना है।

हास्य-युक्त घृणा का भाव देखना हो तो होरी के उत्सव पर गोबर की चौपाल में हुई गिरधर की नकल पढ़िए। महाजन का इससे बढ़िया मजाक क्या होगा? ठाकुर झिंगुरीसिंह की नकल हुई जिसमें ठाकुर ने दस रुपये का दस्तावेज लिखकर पाँच रुपये दिये बाकी नजराने और तहरीर और दस्तूरी और ब्याज में काट लिये। किसान रोता हुआ बाहर जाता है— 'अब यह पाँच भी मेरी ओर से रख लीजिए।"

कैसा पागल है!

नहीं सरकार, एक रुपया छोटी ठकुराइन का नजराना है एक रुपया बड़ी ठकुराइन का। एक रुपया छोटी ठकुराइन के पान खाने को एक बड़ी ठकुराइन के पान खाने को। बाकी बचा एक वह आपके क्रिया-करम के लिए।" कैसी बढ़िया नकल है! अन्तिम शब्दों में घृणा पूर्ण स्फुट हो गई है।

पूँजीवादी शोषण भी बढ़ रहा है। शहर में पूँजीपति और गाँव में महाजनी कोठी खोल रखी है। उन्हीं का प्रतिरूप गाँव में झिंगुरीसिंह हैं। ये किसान को उधार देते हैं और फसल अपने पास मँगाकर अपने रुपये ब्याज-समेत काट लेते हैं। महाजनी इस ओर पूँजीवादी अलग। खन्ना की मिल में किसान की ऊख तुलती है। वह स्वयं कहता है— आप नहीं जानते मिस्टर मेहता मैंने अपने सिद्धान्तों की कितनी हत्या की है। कितनी रिश्वतें दी हैं कितनी रिश्वतें ली हैं। किसानों की ऊख तौलने के लिए कैसे आदमी रखे, कैसे नकली बाट रखे। वह मिल-मालिक मजदूरों का भी शोषण करता है। आप एक हजार रुपया महीना वेतन लेता है कमीशन अलग शेयर का भाग अलग। पर मजदूरों की मजदूरी कम करता है। वह सोचता है कि वह मिल का सञ्चालन भी तो करता है। मजूर केवल हाथ से काम करते हैं। डायरेक्टर

अपनी बुद्धि से विद्या से प्रतिभा से प्रभाव से काम करता है। दानों शक्तियों का *मेल बराबर तो नहीं हो सकता। मजूरों को यह संतोष क्यों नहीं होता कि यह मंदी* का समय है और चारों तरफ बेकारी फैली रहने के कारण आदमी सस्ते हो गए हैं। उन्हें तो एक की जगह पौन भी मिले तो संतुष्ट रहना चाहिए।" शोषक का कैसा तर्क है!

अब ब्रिटिश पुलिस-पद्धति के प्रतिनिधि रिश्वतखोर दारोगा की काली करतूत देखिए। हीरा ने ईर्ष्यावश होरी की गाय को जहर दे दिया और स्वयं भाग निकला। पुलिस दारोगा तो ऐसे अवसरों की तलाश में ही होते हैं, खबर पाते ही आ धमके। उन्हें तहकीकात से क्या गरज अपना हुमुआ-मांडा बनाने से ही मतलब है। दारोगाजी होरी से पैसा ऐंठने के लिए तलाशी लेने की बात चलाते हैं। पर होरी अपनी मर याद रखना चाहता है। गांव के पंच भी लूट-खसूट में दारोगा के साथ लग जाते हैं। वे होरी को कहते हैं—निकालो जो कुछ देना है मौं गया न छूटेगा। पर बेचारा होरी के तो कहाँ से जहर खाने को भी उसके पास एक पैसा नहीं। पंचों में सलाह होती है और दारोगा को देने के लिए तीस रुपये होरी को उधार दे दिये जाते हैं। *इसमें आधा हिस्सा चार पंचों का ठहरा। होरी ने रुपये लिये और अंगोछे के छोर में* बाँध प्रसन्न-मुख आकर दारोगा की ओर चला।

'सहसा धनिया झपटकर आगे आई और अंगोछी एक झटके के साथ उसके हाथ से छीन ली। सारे रुपये जमीन पर बिखर गए। नागिन की तरह फुंकार कर बोली—ये रुपये कहाँ लिये जा रहा है बता। भला चाहता है तो सब रुपये लौटा दे नहीं कहे देती हूँ। घर के परानी रात दिन मरें और दाने-दाने को तरसें लत्ता भी पहनने को न मयस्सर हो और अंजुली-भर रुपये लेकर चला है इज्जत बचाने! — दारोगा तलाशी ही तो लेगा। ले-ले जहाँ चाहे तलाशी। एक तो सौ रुपये की गाय गई, उस पर यह पलेथन! वाह री तेरी इज्जत!

'होरी खून का घूंट पीकर रह गया। सारा समूह थर्रा उठा। नेताओं के *सिर झुक गए और दारोगा का मुंह जरा-सा निकल आया। अपने जीवन में उसे* ऐसी लताड़ न मिली थी।" मगर दारोगा भी इतनी जल्दी हार मानने वाले न थे। खिसियाकर बोले—मुझे ऐसा मालूम होता है कि इस शैतान की खाला ने हीरा को फँसाने के लिए खुद गाय को जहर दे दिया।

'धनिया हाथ मटकाकर बोली—'हाँ दे दिया। अपनी गाय थी मार डाली फिर?—तुम्हारे तहकिकात में यही निकलता है तो यही लिखो। पहना दो मेरे हाथों में हथकड़ियाँ! देख लिया तुम्हारा न्याय और तुम्हारे अक्कल की दौड़। गरीबों का गला काटना दूसरी बात है दूध का दूध और पानी का पानी करना

दूसरी बात ।

गठरियों से रुपये चुनकर उठा लिये थे और दारोगाजी को वहाँ से चलने का इशारा कर रहे थे । धनिया ने एक ठोकर और लगाई—"जिसके रुपये हों ले जाकर उसे दे दो । हमें किसी से उधार नहीं लेना है । और जो देना है तो उसी से लेना । मैं दमड़ी भी न दूँगी चाहे मुझे हाकिम के इजलास तक ही लड़ना पड़े । हम बाकी चुकाने को पचीस रुपये माँगते थे किसी ने न दिया । आज अंजुली भर रुपये ठनाठन निकाल के दिये ! मैं सब जानती हूँ । यहाँ तो बाँट-बखरा होने वाला था । सभी के मुँह मीठे होते । ये हत्यारे गाँव के मुखिया हैं गरीबों का खून चूसने वाले । सूद-ब्याज डेढ़ी-सवाई, नजर-नजराना घूस-घास जैसे भी हो गरीबों को लूटो ।

रिश्वतखोर दारोगा और गाँव के बेईमान पंचों की कामी करतूतों का कैसा सजीव चित्र है ! बीभत्स रस की यहाँ पूर्ण व्यञ्जना हुई है । होरी की पत्नी धनिया काव्यगत आश्रय है दारोगा और पंच आलम्बन । दारोगा और पंचों की साँठ-गाँठ दारोगा का धनिया को धमकाना आदि उद्दीपक कार्य हैं । धनिया का झपटना हाथ मटका कर फटकारना आदि शारीरिक तथा धिक्कारपूर्ण कथन वाचिक अनुभाव हैं । अमर्ष क्रोध व्यंग्य शोक आशंका साहस आदि सञ्चारी भाव भी स्पष्ट हैं ।

शहर के हाकिम अब भी परोक्ष रूप से किसान का शोषण करते हैं । बेदखली इजाफा आदि की जो कार्रवाई जमींदार अपनी असामियों के विरुद्ध करता है वे हाकिम रिश्वत खाकर, डालियाँ लेकर, गरीब किसानों के खिलाफ डिग्री दे देते हैं । 'कब दावा दायर हुआ कब डिग्री हुई, उसे (होरी को) बिल्कुल पता न चला । कुर्कअमीन उसकी ऊख नीलाम करने आया तब उसे मालूम हुआ । और बात की बात में सारे गाँव के देखते ऊख मँगरू साह की हो गई । धनिया गालियाँ देती रह गई । वह कहती है—जो गाली खाने का काम करेगा उसे गालियाँ मिलेंगी ही । मँगरूसाह ने मर-मर कर जेठ की दुपहरी में सिंचाई और गोड़ाई की थी ।' रामसेवक ब्रिटिश नौकरशाही का पर्दाफाश करता हुआ कहता है— 'थानेदार और कानिसिटिबल तो जैसे दामाद हैं । जब उनका दौरा गाँव में हो जाय किसानों का धरम है कि वह उनका आदर-सत्कार करें नजर-नियाज दें नहीं एक रिपोर्ट में गाँव का गाँव बँध जाय । कभी कानोगो आते हैं कभी तहसीलदार, कभी डिप्टी कभी एजंट कभी कलक्टर, कभी कमिसनर, किसान को उनके सामने हाथ बाँधे हाजिर रहना चाहिये । उनके लिए रसद चारे, अण्डे मुर्गी दूध-घी का इन्तजाम करना चाहिए । एक न एक हाकिम रोज नये बढ़ते जाते हैं । न जाने किस किस महकमे के अफसर हैं शहर के अलग बगान के अलग ताड़ी-शराब के अलग ।

गाँव के पंचों की काली करतूत का चित्र ऊपर दिया जा चुका है । बिरादरी

का भय और पंच भी होरी का शोषण कर रहे हैं। ये पंच अपनी स्वार्थी बातों के लोभ से जब-तब किसान को सताते रहते हैं। पटेश्वरी ने मंगरू को सुझाया कि अगर इस वक्त होरी पर दावा कर दिया जाय तो सब रुपये वसूल हो जाय। और वह स्वयं नालिश करने का जिम्मा ले लेता है। अपनी स्वार्थी के लोभ से उसे भड़का कर, उससे अदालत का खर्चा लेकर नालिश कर देता है। वह असामियों को आपस में लड़ाकर रकमें मारता है।

समाज की सड़ी-गली परम्पराओं और मर्यादाओं में जकड़ा हुआ किसान इन समाज वालों के शोषण का शिकार होता है। होरी का पुत्र गोबर अहीर की लड़की झुनिया से प्रेम करता है। वह उसे अपने घर ले आता है। होरी और धनिया झुनिया को आश्रय देते हैं। बस समाज की नाक कट गई, बिरादरी की मौत आ गई! झिंगुरीसिंह पचास साल के हैं दो-दो जवान पत्नियाँ रखे हुए हैं। पटेश्वरी अपनी विधवा कहारिन को दरपर्दा रखे हुए हैं। दातादीन ने जवानी में उधम मचाया था। अब उनका बेटा मातादीन सिलिया चमारिन को फँसाये हुए है। 'सिंगुरी ने ब्राह्मणी रखली' पर इन्हें कोई कुछ नहीं कहता! पैसे वाले हैं पंच हैं! पर यही पंच होरी पर सौ रुपये नकद और तीस मन अनाज डाँड लगाते हैं। क्यों उसका बेटा झुनिया विधवा को लाया? ऐसी कुलच्छनी को क्यों उन्होंने अपने घर में जगह दी? और पंचों में परमेश्वर मानने वाला और बिरादरी के भूत से डरने वाला होरी टूट जाता है पर पंचों का फैसला सिर-माथे पर लेता है। धनिया अवश्य अपनी घृणा और क्षोभ व्यक्त करती है — "पंचो गरीब को सताकर सुख न पाओगे इतना समझ लेना। मेरा सराप तुमको भी जरूर-से-जरूर लगेगा। कैसी तीव्र घृणा फूट निकली है इन समाज-बिरादरी के ठेकेदार पूरा शोषकों के प्रति! धनिया की गालियाँ 'सराप' फटकार-धिक्कार स्थान-स्थान पर इन समाज शोषी शक्तियों घृणा के भिन्न-भिन्न आलम्बनों के प्रति हमारी तीव्र घृणा को पुष्ट करती हैं। सारे उपन्यास में आदि से अन्त तक बीभत्स रस के आश्रय शोषण का मार्मिक चित्रण हुआ है।

ह्रासोन्मुख सामन्तवाद
विकासमान पूँजीवाद—महाजनी संस्कृति

हम पहले भी कह आये हैं कि प्रेमचन्द ने अपने कई उपन्यासों में जमींदारी पद्धति के दोषों को प्रस्तुत करके इस पद्धति को मृत्युदण्ड दिया है। 'प्रेमाश्रम' में उनका उद्देश्य ही यही था। 'रंगभूमि' और 'कायाकल्प' आदि अन्य उपन्यासों में भी इस पद्धति के बीभत्स रूप का स्पष्ट उद्घाटन हुआ है। वास्तव में प्रेमचन्द ने सम्पत्ति को ही सब प्रकार की आपत्ति का मूल कारण माना है—वह चाहे सामन्तवादी सम्पत्ति हो या पूँजीवादी। 'गोदान' से पूर्व 'रंगभूमि' में भी प्रेमचन्द पूँजीवाद के

उसकी झलक दिखाई जाय न पर यहाँ उसका विस्तृत रूप प्रकट नहीं हुआ था। 'गोदान' में प्रेमचन्द ने युग सत्य को पहचान कर एक ओर ह्रासोन्मुख सामन्तवाद का सच्चा चित्र उपस्थित किया है दूसरी ओर सामन्तवाद के स्थान पर विकासशील पूँजीवाद का व्यापक प्रभाव दिखाते हुए उसके भी समाज-शोषी और मानव-शोषी रूप का विस्तृत चित्रण किया है।

सामन्तवाद या जमींदारी की पद्धति दीवारें हिल चुकी हैं। इस वर्ग में अब कोई जान नहीं रही है इसके स्तम्भों की नींव डाँवाडोल हो चुकी है इस वर्ग की आत्मा में बल नहीं रहा है। इनका आचरण दूषित हो गया है। स्थिति बिगड़ गई है। ये अब सत्ता-प्राप्त भी नहीं रहे हैं। इन्हें भी हाकिमों के मुँह ताकने पड़ते हैं उन्हें डालियाँ देनी पड़ती हैं। रायसाहब अमरपालसिंह की स्वीकारोक्ति इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है। वह होरी से कहता है—"सम्पत्ति और सहृदयता में बैर है। हम दान देते हैं धर्म करते हैं। लेकिन जानते हो क्यों? केवल अपने बराबर वालों को नीचा दिखाने के लिए। हममें से किसी पर डिग्री हो जाय कुर्की आ जाय बकाया मालगुजारी की इल्लत में हवालात हो जाय किसी का जवान बेटा मर जाय किसी की विधवा बहू निकल जाय किसी के घर में आग लग जाय कोई किसी वेश्या के हाथों उल्लू बन जाय या अपने असामियों से पिट जाय तो उसके और सभी भाई उस पर हँसेंगे बगलें बजायेंगे। गरीबों में अगर ईर्ष्या या बैर है तो स्वार्थ के लिए या पेट के लिए। बड़े आदमियों की ईर्ष्या और बैर केवल आनन्द के लिए है। वह बड़ा आदमी ही क्या जिसे कोई छोटा रोग हो और ये रुपये (फिजूलखर्ची के लिए) तुमसे और तुम्हारे भाइयों से वसूल किये जाते हैं भाले की नोक पर। मुझे तो यही आश्चर्य होता है कि क्यों तुम्हारी आहों का दावानल हमें भस्म नहीं कर डालता? मगर नहीं आश्चर्य करने की कोई बात नहीं। भस्म होने में तो बहुत देर नहीं लगती। वेदना भी थोड़ी ही देर की होती है। हम जौ-जौ अंगुल-अंगुल और पोर-पोर भस्म हो रहे हैं। उस हाहाकार से बचने के लिए हम पुलिस की हुक्काम की अदालत की और वकीलों की शरण लेते हैं सभी के हाथों का खिलौना बनते हैं। दुनिया समझती है हम बड़े सुखी हैं। हमारे पास इलाके महल सवारियाँ नौकर-चाकर कर्ज वेश्याएँ क्या नहीं है लेकिन जिसकी आत्मा में बल नहीं अभिमान नहीं वह और चाहे कुछ हो आदमी नहीं है। जिसे दुश्मन के भय के मारे रात को नींद न आती हो—जो हुक्काम के तलवे चाटता हो—उसे मैं सुखी नहीं कहता।—मुफ्तखोरी ने हमें अपाहज बना दिया है।—और यह तो निश्चय है कि अब सरकार भी हमारी रक्षा नहीं करेगी। हमसे अब उसका कोई स्वार्थ नहीं निकलता। लक्षण कह रहे हैं कि बहुत जल्द हमारे वर्ग की हस्ती मिट जाने वाली है। हम परिस्थि

रायसाहब स्वीकार करते हैं कि 'हम तो नाम के राजा हैं। असली राजा तो हमारे बैंकर हैं।' वास्तव में ही पूंजी अब ताल्लुकेदारों के हाथ में नहीं रही। पूंजी पर नियन्त्रण अब पूंजीपतियों का हो गया है। बड़े-बड़े मिल-मालिक सेठ-साहूकार, बैंकर, कम्पनियों के डायरेक्टर आदि ही अब पैसे के धनी हैं। अतः इसी पूंजीवाद का सहारा संसार देखते-देखते बढ़ गया है। जिस ताल्लुकेदार ने अपना हाथ इन व्यापारिक कम्पनियों में फैला लिया है वे ही मध्य में रह सकते हैं। खन्ना ने तो शूगर-मिल बना दिये बीमा कम्पनियों और बैंकों का वह क्रमशः मैनेजर और डायरेक्टर है। मि० मेहता कहता है— 'आज संसार का शासन-सूत्र बैंकरों के हाथ में है। सरकार उनके हाथ का खिलौना है।' कुछ हवा ही ऐसी बदल गई है कि क्या गाँव और क्या शहर सब जगह महाजनी संस्कृति का विकास हो रहा है। गाँव में छोटे-छोटे महाजन बढ़ रहे हैं शहरों में बड़े-बड़े उद्योग-पति पूंजीपति बैंकर, कम्पनियों के डायरेक्टर आदि अपने व्यापार से फल-फूल रहे हैं। जमींदार या सामन्त नष्ट हो रहे हैं। नई महाजनी सभ्यता का विकास हो रहा है। शहर के बैंकरों के आश्रित बड़े-बड़े जमींदार हैं और गाँव के छोटे-बड़े महाजनों के पाँव तले उनके असामियों की गरदन दबी पड़ी है। जमींदारी कैसे बनी रह सकती है?

बाकी चुकाने के लिए राय साहब के कारकुन ने किसानों पर जरा कड़ाई की कि उनमें खलबली मच गई। सभी लोग गाँव के महाजनों के पास रुपये के लिए दौड़े। गाँव में मँगरूसाह की आजकल चढ़ी हुई थी। इस साल सन में उसे अच्छा फायदा हुआ था। गेहूँ और अलसी में भी उसने कुछ कम नहीं कमाया था। पण्डित दातादीन और दुलारी सहुआइन भी लेन-देन करती थी। सबसे बड़े महाजन थे झींगुरीसिंह। वह शहर के एक बड़े महाजन के एजेण्ट थे। उनके नीचे कई आदमी और थे जो आस-पास के देहातों में घूम-घूम कर लेन-देन करते थे। इनके उपरान्त और भी कई छोटे-मोटे महाजन थे जो दो आने प्रति रुपये ब्याज पर बिना लिखा पढ़ी के रुपये देते थे। गाँव वालों को लेन-देन का कुछ ऐसा शौक था कि जिसके पास दस-बीस रुपये जमा हो जाते वही महाजन बन बैठता था। एक समय होरी ने भी महाजनी की थी। उसी का यह प्रभाव था कि लोग अभी तक यही समझते थे कि होरी के पास दबे हुए रुपये हैं। किसी ने किसी देवता को सीधा किया किसी ने किसी को। किसी ने आना रुपया ब्याज देना स्वीकार किया किसी ने दो आना।

इस प्रकार महाजनों का प्रभाव जम रहा है। गोबर जब शहर में कुछ पैसा कमा लेता है— वह भी मजूरी से नहीं चाय की दुकान खोलकर—तो उसे भी लेन-देन का चसका पड़ जाता है। 'अब वह छोटा-मोटा महाजन है। पड़ोस के इक्के वालों

गाड़ीवानों और धोबियों को सूद पर रुपया देता है।" उसका प्रभाव जमने लगता है। इसी पैसे के प्रभाव से इक्केवाला उसे स्टेशन पर छोड़ जाता है और एक पैसा भाड़ा नहीं लेता। इस नव-विकसित महाजनी या पूँजीवादी सभ्यता का तूती सब ओर बोलती है। जमींदार टूट रहा है वह भी इसी पूँजीवादी पद्धति की शरण में जाने से अपना भला मानता है वह जमीन-जायदाद बेचकर कम्पनियों का शेयर होल्डर बनना चाहता है। इसी में उसका भला है। राजा सूर्यप्रतापसिंह एक शक्कर क डायरेक्टर बन गये हैं रायसाहब सभा के मिल आदि के मेंबर बनने के बारे में विचार कर रहे हैं। दूसरी ओर किसान टूट कर मजदूर बन रहा है। जमींदार के असामी के स्थान पर वह पूँजीपति के मजदूर-रूप में अधिक लाभ पाता है।

'इस नई सभ्यता का आधार धन है विद्या सेवा कुल और जाति सब धन के सामने हेय हैं।" पैसा ही सभी प्रकार की अच्छाई-बुराई की कसौटी बन गया है। जिसके पास चार पैसे हैं उसकी सब बुराइयाँ ढक जाती हैं किन्तु जो धनहीन है उसे कोई नहीं पूछता। गोबर जब शहर से अपने गाँव में आता है तो अपने माँ-बाप से स्पष्ट शब्दों में कहता है— 'हुक्का-पानी सब तो था बिरादरी में आदर भी था फिर मेरा ब्याह क्यों नहीं हुआ? बोलो! इसलिए कि घर में रोटी न थी। रुपये हों तो न हुक्का-पानी का काम है, न जाति-बिरादरी का। दुनिया पैसे की है, हुक्का-पानी कोई नहीं पूछता।" और सचमुच ही हम देखते हैं कि जब नोखेराम दातादीन पटेश्वरी आदि गाँव के स्तम्भों को मालूम होता है कि गोबर उनसे भी अधिक कमाने लगा है तो सब अपनी हेकड़ी भूल जाते हैं। 'झिंगुरी बहुत नोच खसोट करके भी पचीस-तीस से ज्यादा न कमा पाते थे। और यह गँवार सौ-सौ रुपये कमाने लगा उनका मस्तक नीचा हो गया। अब वह किस दावे से उस पर रोब जमा सकते थे। कुल में वह जरूर ऊँचे हैं लेकिन अब कौन देखता है।"

पैसे से सूद कमाकर, पैसे को व्यापार-उद्योग में लगाकर लोग बढ़ रहे हैं। इस पैसे की ही सब महिमा है। आदमी वही सज्जन वही बुद्धिमान और प्रतिष्ठित वही है जिसके पास पैसा है गरीब को कोई आदमी ही नहीं समझता। पैसे की ओट में सब अपराध छुप जाते हैं। झिंगुरी पटेश्वरी नोखेराम दातादीन मातादीन आदि दरपर्दा ही नहीं खुल्लमखुल्ला कुकर्म करते हैं उन्हें कोई नहीं पूछता उलटा वे होरी जैसे गरीबों पर रोब जमा देते हैं।

जब पैसे का इतना प्रभाव है कि इससे चाहे जो काम साध लो—इसके बल पर ओंकारनाथ जैसे पत्रकारों का मुँह बन्द कर लो हाकिम हुक्काम पुलिस आदि सबको अपने पक्ष में कर लो इसकी आड़ में जो खेल चाहो खेलो प्रतिष्ठा पाओ—तो लोग इस पैसे के पीछे क्यों न पड़ें? प्रेमचन्द ने अपनी मृत्यु से थोड़े दिन पूर्व जो

महाजनी सभ्यता पर निबन्ध लिखा था उस महाजनी सभ्यता या संस्कृति का सजीव कलात्मक रूप वे अपने इस उपन्यास 'गोदान' में पहले ही प्रस्तुत कर चुके थे। पैसा कमाना ही इस सभ्यता का उद्देश्य बन गया है। 'बिजनेस' इसका आधार है। Business is business अर्थात् व्यापार व्यापार है, यह इसका नारा है। 'व्यापार एक दूसरा ही क्षेत्र है। यहाँ कोई किसी का दोस्त नहीं कोई किसी का भाई नहीं। जब रायसाहब कर्ज पाने के लिये गिड़गिड़ाते हैं तो खन्ना कहता है कि बैंक से आपको रुपया मिलना मुश्किल है पर 'मैं कोशिश करूँगा कि आपके साथ खास रियायत की जाय लेकिन Business is business यह आप जानते हैं। पर मेरा कमीशन क्या रहेगा? मुझे आपके लिए खास तौर पर सिफारिश करनी पड़ेगी···· यों समझ लीजिये कि मेरी जिम्मेवारी पर ही यह मुआमला होगा। खन्ना राय साहब के अन्तरङ्ग मित्रों में से थे। और यह उनसे कमीशन की आशा रखते हैं इतनी बेमुरौवती? पर क्या करें यह व्यापार की बात है। चाहे भाई हो चाहे दोस्त अपना लाभ क्यों छोड़ा जाय! इस महाजनी मनोवृत्ति या व्यापार-बुद्धि का विकास हो रहा है। वास्तव में 'गोदान' में जमींदारी शोषण की अपेक्षा महाजनी और पूँजीवादी शोषण का अधिक प्रसार पाया जाता है। जमींदार एक ही है पर महाजन कई-कई हैं। जमींदारी टूट रही है किसान टूट रहा है महाजन और पूँजीपति बढ़ रहे हैं।

गोदान में धर्म का ढकोसला

घृणा के तत्कारी-रूप में व्यंग्य का प्रबल प्रयोग

प्रेमचन्द ने परम्परागत धर्म की अपने उपन्यासों में स्थान-स्थान पर खूब धज्जियाँ उड़ाई हैं। इसके लिए उन्होंने व्यंग्य के नश्तर का सहारा लिया है। इस व्यंग्य के मूल में हास्य नहीं घृणा ही है। हम इन आडम्बरों पर हँस कर नहीं रह जाते अपितु घृणा से भर जाते हैं। अतः यह सब बीभत्स रस का प्रसङ्ग ही है। प्रेमचन्द के धार्मिक व्यंग्य काफी तीखे होते हैं। अपने 'सेवासदन' में ही उन्होंने धर्म के ढकोसले की खूब धज्जियाँ उड़ाई थीं। महन्त रामदास जो धर्म का ठेकेदार और बाँकेबिहारीजी का पहरेदार बना हुआ है कितना दुश्चरित्र है कितना मुफ्तखोर, कितना अन्यायी! धर्म के नाम पर वह जमींदारी चलाता है। बाँकेबिहारीजी के नाम पर असामियों से चन्दा-चमार-लगान वसूल करता है। कितने ही मुसटंडे साधु-भक्त उसने अपने अखाड़े में इकट्ठे कर रखे हैं। धर्म का कैसा बीभत्स रूप है! मन्दिरों में वेश्याओं का नृत्यगान होता है। भगवान् भी वेश्याओं के बिना नहीं रीझते! और ये दाढ़ी वाले मौलवी तिलक-धारी लाल पण्डित सब रँगे सियार हैं। दरपर्दा ऐश करते हैं, वेश्यागामी हैं ऊपर से भक्त और उपासक बने हुए हैं। धर्म की ओट में

सब होता है। बेचारा गजाधरप्रसाद नौकरी करके तो गुजारा भी नहीं चला सका स्वामी गजानन्द बनते ही हजारों रुपया जमा कर सका है। धर्म की कैसी महिमा है! 'प्रेमाश्रम' में भी गायत्री, श्रद्धा आदि पात्रों के अन्धविश्वासों और ढोंगी धर्मात्माओं की खूब खिल्ली उड़ाई गई है। 'रंगभूमि' में जानसेवक की पत्नी और पिता के धार्मिक ढोंग को प्रकट किया है।

'कायाकल्प' में प्रेमचन्दजी ने धार्मिक साम्प्रदायिकता को आड़े हाथों लिया है। धर्म के ढोंग पर कैसी फब्ती कसी गई है! हिन्दुओं और मुसलमानों में मामूली मामूली बातों पर झगड़े होने लगे हैं। इन झगड़ों को हवा देने के लिए धर्म के अखाड़े किस प्रकार तैयार होते हैं, देखिए —"लोगों के देवताओं के भाग्य जगे। जहाँ कुत्ते निद्रासाधना किया करते थे वहाँ पुजारीजी की भंग घुटने लगी। मसजिदों के दिन फिरे। मुल्लाओं ने अबाबीलों को बेदखल कर दिया। जहाँ गाय जुगाली करती थी वहाँ पीर साहब की हँडिया चढ़ी। हिन्दुओं ने महावीर का दल बनाया। मुसलमानों ने धमा-चौकड़ी मचाया। ठाकुरद्वारे में ईश्वर-कीर्तन की जगह नबियों की निन्दा होती थी। मसजिदों में नमाज की जगह देवताओं की दुर्गति। ख्वाजा साहब ने फतवा दिया—जो मुसलमान किसी हिन्दू औरत को निकाल ले जाय उसे एक हजार हजों का सवाब होगा। यशोदानन्दन ने काशी के पण्डितों की व्यवस्था मँगवाई कि एक मुसलमान का वध एक लाख गोदानों से श्रेष्ठ है।" कैसी तिलमिला देने वाली चोट है!

'कर्मभूमि' में भी महन्त रामदास की भाँति महन्त आशारामगिरि विराजमान् हैं—विलासी, अन्यायी और दम्भी। सोने की कुर्सी और मखमल के गद्दे पर वह विराजता है। राजसी ठाट है। उसके भण्डार विलास और ऐश्वर्य की सामग्री से भरे पड़े थे। अमरकान्त सब कुछ देखने पर विचारने लगा 'ठाकुरजी के नाम पर धन का कितना अपव्यय होता है! ठाकुरद्वारे में अछूतों के लिए जगह नहीं। आरती के समय या कथा में बेचारे भङ्गी-चमार सबसे पीछे अलग बैठ जाते हैं। पुजारियों और भक्तों को कब गवारा होता है! उन्हें लेकर पीछे पड़ जाते हैं। इन अछूतों की दृष्टि पड़ने से भगवान् अपवित्र न हो जायँ, छाया पड़ने से भोग भ्रष्ट हो जाता है और प्रसाद भ्रष्ट और अपवित्र हो जाता है!

'गोदान' में भी प्रेमचन्द ने धार्मिक पाखण्ड की गिन-गिनकर कड़ियाँ तोड़ी हैं। इस रचना तक आते-आते ईश्वर और तथाकथित धर्म के प्रति उनका मन अविश्वासी हो गया था—यह हम आरम्भ में ही बता चुके हैं। यही कारण है कि उन्होंने ईश्वर के साम्प्रदायिक रूप और धार्मिक ढोंग को यहाँ खूब आड़े हाथों लिया। मेहता के शब्दों में प्रेमचन्द ही कहते हैं— 'और जो यह ईश्वर और मोक्ष का चक्कर है,

इस पर तो मुझे हँसी आती है। वह मोक्ष और उपासना अहङ्कार की पराकाष्ठा है जो हमारी मानवता को नष्ट किये डालती है। जहाँ जीवन है क्रीड़ा है चहक है, प्रेम है वहीं ईश्वर है, और जीवन को सुखी बनाना ही उपासना है और मोक्ष है। जिस ईश्वर का रुद्र रूप बेचारे किसान को शोषण की चक्की में पीसता है जो भग वान गरीब को भाग्यवादी बनाये रखता है उसे और उसके भक्तों को उन्होंने हर स्थान पर अपने व्यङ्ग्य-बाणों से बींधा है। आरम्भ में ही वह स्पष्ट कहते हैं कि ईश्वर का रुद्र रूप किसान को सदा डराता रहता है। इसी के भय से वे महाजन की कौड़ी तक नहीं रखते। दातादीन-जैसे ब्राह्मण तो इस ईश्वर के प्रतिनिधि ही हैं। इनका रुपया वह कैसे हजम कर सकता है। वे चाहे आन रुपये का ब्याज लें चाहे बेगार समय करायें किन्तु इनका पैसा कौन रख सकता है? होरी कहता है— 'हमने जिस ब्याज पर रुपये लिये वह तो देने ही पड़ेंगे। फिर ब्राह्मण ठहरे। इनका पैसा हमें पचेगा? भगवान न करे कि ब्राह्मण का कोप किसी पर गिरे। बंस में कोई चिल्लू भर पानी देने वाला, घर में दिया जलाने वाला भी नहीं रहता। उसका धर्म-भीरु मन त्रस्त हो उठा। होरी का विश्वास है कि भगवान ने ही उन्हें गुलाम बनाया है किसी के बस की क्या बात!

और इन बड़े आदमियों का धर्म-कर्म कोरा पाखण्ड है, राय साहब को 'सम्पत्ति के साथ-साथ राम की भक्ति भी अपने पिता से मिली थी। वह धनुष यज्ञ रचाता है और धर्म के नाम पर असामियों से चन्दा लेता है। सैकड़ों व्यक्ति उसके नाती-रिश्तेदार बने हुए उसकी रियासत पर मुफ्तखोरी करते हैं। इन मुफ्तखोरों की भक्ति और धर्म का मजाक उड़ाते हुए प्रेमचन्द कहते हैं— 'एक चचा साहब राधा के अनन्य उपासक थे और बराबर वृन्दावन में रहते थे। भक्ति-रस के कितने ही कवित्त रच डाले थे और समय-समय पर उन्हें छपवाकर दोस्तों की भेंट कर देते थे। एक दूसरे चाचा थे जो राम के परम भक्त थे और फारसी-भाषा में रामायण का अनुवाद कर रहे थे। रियासत से सबके वसीके बंधे हुए थे। किसी को कोई काम करने की जरूरत न थी।

जब होरी गोबर से कहता है कि मालिक चार घंटे रोज भगवान का भजन करते हैं भगवान की उन पर दया क्यों न हो? तो गोबर व्यङ्ग्य करता हुआ कहता है— 'यह पाप का धन पचे कैसे? इसीलिए दान-धर्म करना पड़ता है। —मुझे नंगे रहकर भगवान् का भजन करें तो हम भी देखें। हमें कोई दोनों जून खाने को दे तो हम आठों पहर भगवान् का जाप ही करते रहें। एक दिन खेत में ऊख गोड़ना पड़े तो सारी भक्ति भूल जाये।"

इस प्रकार तिलक-धारियों की काली करतूत का विस्तृत चित्र प्रस्तुत

करती है। वह एक पण्डितजी की दुश्चरित्रता का किस्सा सुनाती हुई कहती है—"घरों से दूध लेकर बाजार जाती हूँ। एक-से-एक बाबू, महाजन, ठाकुर, वकील, अमले, अफसर अपना रसियापन दिखाकर मुझे फँसा लेना चाहते हैं। एक पण्डितजी बहुत तिलक-मुद्रा लगाते हैं। आधा सेर दूध लेते हैं। एक दिन उनकी घरवाली कहीं नेवते में गई थी। मुझे क्या मालूम। और दिनों की तरह दूध लिए भीतर चली गयी। वहाँ पुकारती हूँ, बहूजी बहूजी! इतने में देखती हूँ तो पण्डितजी बाहर के किवाड़ बन्द किये चले आ रहे हैं। मैं समझ गई इनकी नीयत खराब है। मैंने डाँटकर पूछा—तुमने किवाड़ क्यों बन्द कर लिये? क्या बहूजी कहीं गई हैं क्या? वह मेरी ओर दो पग और बढ़ गया। मैंने कहा—'तुम्हें दूध लेना हो तो लो नहीं मैं जाती हूँ। बोला—आज तो तुम यहाँ से न जाने पाओगी झुनिया रानी। रोज रोज कलेजे पर छुरी चलाकर भाग जाती हो। तुमसे सच कहती हूँ गोबर मेरे रोएँ खड़े हो गये। मेरी छाती धक-धक करने लगी। यह कुछ बदमाशी कर बैठे तो क्या करूँगी। कोई चिल्लाना भी तो न सुनेगा। लेकिन मन में यह निश्चय कर लिया था कि मेरी देह छुई तो दूध की भरी हाँडी उसके मुँह पर पटक दूँगी। बला से चार-पाँच सेर दूध जायगा। कलेजा मजबूत करके बोली—इस फेर में न रहना पण्डितजी! मैं अहीर की लड़की हूँ। मूँछ का एक-एक बाल चुनवा लूँगी। यही लिखा है तुम्हारे पोथी-पत्रे में कि दूसरों की बहू-बेटी को अपने घर बन्द करके बेइज्जत करो। इसीलिए तिलक-मुद्रा का जाल बिछाये बैठे हो?" मैंने नोग जमीन पर गिरा दिये और द्वार की ओर चली तो उसने मेरा हाथ पकड़ लिया। मैं तो पहिले से ही तैयार थी। हाँडी उसके मुँह पर दे मारी। सिर से पाँव तक सराबोर हो गया। चोट खूब लगी। सिर पकड़ कर बैठ गया— मैंने पीठ में दो लातें जमा दी और किवाड़ खोलकर भागी।"

गोबर ठट्ठा मार कर बोला—बहुत अच्छा किया तुमने। दूध से नहा गया होगा। तिलक-मुद्रा भी धुल गयी होगी। मूँछें भी क्यों न उखाड़ लीं?

"दूसरे दिन मैं फिर उसके घर गयी। उसकी घरवाली आ गयी थी। मैंने कहा—कहो तो कल की तुम्हारी करतूत खोल दूँ पण्डित! लगा हाथ जोड़ने। मैंने कहा—अच्छा थूककर चाटो तो छोड़ दूँ। सिर जमीन पर रगड़ कर कहने लगा—अब मेरी इज्जत तुम्हारे हाथ है झुनिया। मुझे भी उस पर दया आ गयी।"

गोबर को उसकी दया बुरी लगी—'यह तुमने क्या किया?'— "ऐसे पाजियों पर दया न करनी चाहिये। तुम मुझे कल उसकी सूरत दिखा दो। फिर देखना कैसी मरम्मत करता हूँ।"

इस प्रसङ्ग में बीभत्स रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। दुश्चरित्र सम्पन्न

परिचित आलम्बन है। उसका जबरदस्ती करने का प्रयत्न सामने देना याचना करना हाथ पकड़ना आदि कृत्य उद्दीपन-विभाव हैं। झुनिया और गोबर के वाचिक अनुभाव बहुत स्पष्ट हैं। झुनिया-द्वारा दूध की मटकी मारना लात मारना नाक रगड़वाना आदि शारीरिक अनुभाव हैं तथा रोमाञ्च कम्प स्पन्दन आदि सात्त्विक अनुभाव हैं। आवेग क्रोध भय मति धृति साहस विनय पश्चात्ताप व्यंग्य और हास्य आदि कितने ही सञ्चारी भाव रस को परिपुष्ट कर रहे हैं। धर्म के पाखण्ड पर व्यंग्य भी स्पष्ट है।

परम्परागत ब्राह्मण धर्म की प्रेमचन्द ने खूब धज्जियाँ उड़ाई हैं। यह धर्म भी विचित्र ढकोसला है! 'हमारा धर्म है हमारा भोजन। भोजन पवित्र रहे फिर हमारे धर्म पर कोई आँच नहीं आ सकती। रोटियाँ ढाल बनकर अधर्म से हमारी रक्षा करती हैं। कैसी बढ़िया फबती है ब्राह्मण दातादीन और उनके बेटे मातादीन के पाखण्डी धर्म पर! 'मातादीन एक चमारिन से फँसा हुआ था। इसे सारा गाँव जानता था पर वह तिलक लगाता था पोथी-पत्रे बाँचता था कथा-भागवत कहता था धर्म-संस्कार कराता था। उसकी प्रतिष्ठा में जरा भी कमी न थी। वह नित्य स्नान-पूजा करके अपने पापों का प्रायश्चित्त कर लेता था। जब चमारों ने देखा कि यह ब्राह्मण हमारी लड़की को भ्रष्ट करके आप मजे से नेमी-धर्मी बना हुआ है, तो उन्होंने मातादीन के मुँह में हड्डी खूँसा दी। बस फिर क्या था मातादीन का धर्म भ्रष्ट हो गया! वह अब पण्डिताई कैसे कर सकता है? कथा-वार्ता भजन-पूजन कैसे करे? वह पतित हो गया! काशी के पण्डित जब बड़ा भारी प्रायश्चित्त कराते हैं, दान-भोजन उड़ाते हैं और मातादीन को 'गाय का गोबर और मूत्र खिलाते पिलाते हैं तब जाकर उसका धर्म कुछ ठिकाने पर आता है। कैसा धर्म है यह! प्रेमचन्द का मार्मिक व्यंग्य देखिए— 'उस हड्डी के टुकड़े ने उसके मुँह को ही नहीं उसकी आत्मा को भी अपवित्र कर दिया था। उसका धर्म इसी खान-पान छूत विचार पर टिका हुआ था। आज उस धर्म की जड़ कट गई। अब वह लाख प्रायश्चित्त करे, लाख गोबर खाये और गंगाजल पिये लाख दान-पुण्य और तीर्थ-व्रत करे उसका मरा हुआ धर्म जी नहीं सकता। अगर अकेले की बात होती तो छिपा ली जाती यहाँ तो सबके सामने उसका धर्म लुटा।

प्रायश्चित्त के ढोंग ने मातादीन को भी सजग कर दिया। वह इस ढोंगी धर्म को तिलाञ्जलि देकर अपनी प्रेम की देवी के मन्दिर का पुजारी बन जाता है। प्रेमचन्द का मार्मिक व्यंग्य देखिये— 'मातादीन को शुद्ध गोबर और गो-मूत्र खाना-पीना पड़ा। गोबर से उसका मन पवित्र हो गया। मूत्र से उसकी आत्मा में अशुचिता के कीटाणु मर गये। लेकिन एक तरह से इस प्रायश्चित्त ने उसे सचमुच पवित्र कर

लिया। हवन के प्रचण्ड अग्नि-कुण्ड में उसकी मानवता निखर गई और हवन की ज्वाला के प्रकाश में उसने धर्म-स्तम्भों को अच्छी तरह परख लिया। उस दिन से उसे धर्म के नाम से चिढ़ हो गई। उसने जनेऊ उतार फेंका और पुरोहितों को गङ्गा में डुबो दिया। व्यंग्यपूर्ण वचन-वक्रता का कैसा बढ़िया उदाहरण है।

दमुला-भक्त नोखेराम 'प्रात' काल पूजा पर बैठ जाते थे और दस बजे तक बैठे राम-नाम लिखा करते थे मगर भगवान के सामने से उठते ही उनकी मानवता विकृत होकर उनके मन वचन और कर्म सभी को विषाक्त कर देती थी। 'भासा परेश्वरी मौत में पुण्यात्मा मशहूर थे। पूर्णमासी को नित्य सत्यनारायण की कथा सुनते थे पर पटवारी होने के नाते बेगार में जुतवाते थे सिंचाई बेगार में करवाते थे और असामियों को एक-दूसरे से लड़ाकर रकमें मारते थे।" इन झूठे नेमी-धर्मियों की प्रेमचन्द ने खूब खबर ली है। इनकी काली करतूतों का कच्चा चिट्ठा दिखा कर स्पष्ट किया गया है कि यह धर्म कितनी कच्ची रेत की दीवार पर टिका हुआ है। कबीर आदि प्राचीन सन्तों से भी अधिक सजीव रूप में प्रेमचन्द ने ब्राह्मणी धर्म के किले की ईंट से ईंट बजाई है। अन्त में भी धर्म और समाज पर जबरदस्त व्यंग्य किया गया है। जो किसान सारी उम्र भूखा-नङ्गा रहा एक गाय को घर रखने की जिसकी साध कभी पूरी नहीं हुई उसीसे मरते समय गो-दान की आशा की जाती है। होरी के प्राण-पखेरू उड़ रहे हैं। कई आवाजें आईं—हाँ गोदान करा दो यही समय है। और बेचारी धनिया घर में जो बीस आने सुतली बेचकर जमा किये थे उन्हें दातादीन को दे देती है—महाराज घर में न गाय है न बछिया न पैसा। यही पैसे हैं यही इनका गोदान है। कैसी विडम्बना है! मरते समय भी धर्म शोषक उपस्थित हैं।

प्रेमचन्द के गोदान तथा अन्य उपन्यासों में वैवाहिक पद्धति के दोष

अनमेल विवाह के भिन्न भिन्न रूप

प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में परम्परागत भारतीय वैवाहिक पद्धति की खूब खबर ली है। इसके दोषों को उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों में स्थान-स्थान दिखाया है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में अनमेल विवाह के अनेक चित्र पाये जाते हैं। [उन्हों]ने हमारी परम्परागत वैवाहिक पद्धति की खूब खिल्ली उड़ाई है।

प्रेमचन्द अपने व्यक्तिगत जीवन में स्वयं इस पद्धति के शिकार बने रहे हैं। [उन]के पिता ने बुढ़ापे में दूसरी शादी की थी। उनका अपना विवाह बेमेल था यह [प]हले कह आये हैं। इस व्यक्तिगत विषमता को समाज में सर्वत्र पाकर—और अनेक [प्रका]र से अनेक रूपों में पाकर, प्रेमचन्द को विद्रोह उत्तेजना मिली। उनके प्राय

प्रत्येक उपन्यास में कोई-न-कोई वैवाहिक विषमता का चित्र अवश्य पाया जाता है।

कहीं विवाह मन की दृष्टि से अनमेल है और उसके भिन्न-भिन्न रूप और भिन्न-भिन्न कारण हैं। कहीं दहेज की समस्या के कारण फूल-सी कन्या को अधेड़ या वृद्ध आदमी से बाँध देने का दोष है या अपने कुढंगेपन से ब्याह देने की विषम परिस्थिति है तो कहीं अशिक्षा और अन्ध-परम्परा से बाल-विवाह की कुरीति है। कहीं वृद्ध विवाह की लालसा है तो कहीं माँ-बाप पैसा लेकर लड़की को बूढ़े के हवाले कर देते हैं।

कहीं पति-पत्नी के स्वभाव और विचारधारा की विषमता बेमेल विवाह का स्वरूप बनी है। ब्याह-शादी में लड़के-लड़की की प्रकृति रीति का मिलान करने की बजाय जब रुपये-पैसे की माप-तोल से ब्याह होगा तो विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न होंगी ही। हमारे समाज में विवाह एक ढकोसला बन गया है। रुपये-पैसे की दृष्टि से रिश्ते-नाते होते हैं या जन्मकुण्डलियाँ मिलाई जाती हैं। माता-पिता द्वारा की गई ऐसी शादियों के दुष्परिणामों को प्रेमचन्द ने अनेक स्थानों पर प्रकट किया है।

कहीं अर्थ के अनर्थ से एक और दूषण उत्पन्न हुआ है। अमीर की लड़की गरीब से कैसे ब्याही जा सकती है? चाहे दोनों का स्वाभाविक प्रेम 'लरिकाई को प्रेम' बनकर विकसित हुआ हो माँ-बाप अपनी मर्जी से ही शादी करते हैं। जिनकी शादी होनी है उनकी इच्छा-अनिच्छा की कोई परवाह नहीं की जाती। भावनाएँ कुचल दी जाती हैं। 'वरदान' में यही हुआ है।

अपने प्रारम्भिक उपन्यास में ही प्रेमचन्द ने नारी की विषमता का चित्रण आरम्भ कर दिया था। 'रूठी रानी' में सामन्तवादी दूषित वैवाहिक पद्धति है जिसमें नारी की मूक आत्मा छटपटाती रहती है। 'वरदान' में अर्थ के अनर्थ से वैवाहिक दूषण उत्पन्न हुआ है। विरजन अमीर माता पिता की लड़की है, प्रताप निर्धन है। दोनों का बालपन का स्वाभाविक विकसित प्रेम समाज की ऊँच-नीच की दीवार से टकरा कर रह जाता है। अमीर पिता गरीब लड़के से अपनी लड़की की शादी कैसे कर सकता है! अतः विरजन के पिता अपनी ही हैसियत के डिप्टी श्यामाचरण के लड़के कमलाचरण को योग्य वर मान कर विरजन की शादी उससे कर देते हैं। विरजन और प्रताप दोनों मन मसोस कर रह जाते हैं। प्रेमचन्द ने दिखाया है कि हमारी वैवाहिक पद्धति का एक बहुत बड़ा दोष यह है कि इसे अत्यधिक परम्परागत सामाजिक रूप प्राप्त है। झूठी सामाजिक मर्यादाओं के पालन को महत्त्व दिया जाता है। विवाह का कोई व्यक्तिगत पहलू भी है और उसका भी बड़ा महत्त्व है यह दृष्टि नहीं थी। लड़की को एक गौ की तरह जहाँ माता पिता की इच्छा होती थी वे हाँकते

थे। लड़के-लड़की की इच्छा-अनिच्छा की कोई परवाह नहीं की जाती थी। यह फिर धन और प्रताप की दृ देती है।

प्रतिज्ञा में पति-पत्नी में स्वभाव और विचारों की विषमता से पारिवारिक जीवन में उत्पन्न होने वाले दोष दिखाए गये हैं। कमलाप्रसाद और सुमित्रा के वैवाहिक जीवन में यही विषमता है। यह विषमता इसीलिए उत्पन्न होती है क्योंकि लड़के-लड़की की जन्म-कुण्डलियाँ ही माँ-बाप मिलाते हैं। दोनों की प्रकृति शिक्षा संस्कार के मिलान करने की उन्हें दृष्टि ही नहीं मिली है। वे अपनी हैसियत मिलाते हैं और रुपये-पैसे पर रिश्ते-नाते होते हैं। कमलाप्रसाद और सुमित्रा के वैवाहिक जीवन के दो-चार महीने ही चैन से गुजरे होंगे। ज्यों-ज्यों दोनों की प्रकृति का विरोध प्रकट होने लगा दोनों एक-दूसरे से बिचने लगे।---सुमित्रा में नम्रता विनय और दया की क्षमता में घमण्ड उच्छृंखलता और स्वार्थ। एक वृक्ष का बीज था दूसरा पृथ्वी पर रखने वाला। उनमें मेल कैसे होता। लोलुप कमलाप्रसाद विधवा पूर्णा को फँसाना चाहता है। पुरुष की यह लोलुपता पत्नी कैसे बर्दाश्त कर सकती है? प्रतिज्ञा में हमारी वैवाहिक पद्धति का एक अभावात्मक दोष यह प्रकट हुआ है कि समाज में बेचारी विधवा का जीवन अभिशाप बना हुआ है। विधवा-विवाह निषेध तथा विधवा नारी के संरक्षण और जीवन निर्वाह की व्यवस्था का अभाव उसके जीवन को विडम्बना बना देते हैं।

पति-पत्नी में विचारों और स्वभाव की विषमता तो फिर भी परिस्थितियों से समझौता कर लेती है। स्वभाव बदल जाते हैं या एक पक्ष झुक जाता है, तो काम चल जाता है। कमला-सुमित्रा के अतिरिक्त 'गोदान' के झुनिया और गोविन्दी के जीवन में यही हुआ। पर वय और आकृति के अनमेल से जो विषमता उत्पन्न होती है वह समझौते के लिए भी गुञ्जाइश नहीं छोड़ती। 'सेवासदन' और 'निर्मला' में प्रेमचन्द ने दिखाया है कि भारतीय नारी विषम परिस्थिति में समझौता करना चाहती है पर यह विषमता ही ऐसी है—यह गाँठ ही ऐसी है कि सम्बन्ध-सूत्र को तोड़ डालती है। 'सेवासदन' और निर्मला' दोनों में वय की विषमता का मूल कारण दहेज की प्रथा है। दहेज की कुप्रथा के कारण ही सुमन के मामा उमानाथ और निर्मला की माता अपनी-अपनी कन्या के लिए योग्य युवक वर प्राप्त करने में असमर्थ रहते हैं। कहीं-कहीं किसी खाते-पीते नवयुवक को ढूंढा जाता है वहीं दहेज की लम्बी-चौड़ी माँग हो जाती है।

निर्मला का विवाह उसके पिता ने बाबू भालचन्द्र सिन्हा के युवक पुत्र भुवन मोहन सिन्हा से तय कर रखा था। परन्तु दुर्भाग्यवश बाबू उदयभानु की मृत्यु हो गई। निर्मला के पिता की मृत्यु के पश्चात् लोलुप बाप-बेटों ने दहेज पूरा न मिलने

की माबदूला से बात तोड़ डाली और निर्मला से शादी करने से इन्कार कर दिया।

भुवनमोहन 'निर्मला' का एक विचित्र नवयुवक है। उसकी धन-लोलुपता एक और विचित्रता प्रकट करती है। वह निर्मला से शादी करने से इन्कार करता हुआ अपने पिता से कहता है— "कहीं ऐसी जगह शादी करवाइए कि खूब रुपया मिले। और न सही एक गाव का बौस भी हो।" वह इसके लिए यहाँ तक तैयार है कि औरत कैसी ही हो— "मन सारे ऐबों को छिपा देगा। मुझे वह गालियाँ भी सुनावे तो चूँ न करूँ। दुधारू गाय की लात किसे बुरी मालूम होती है! प्रेमचन्द का व्यंग्य कितना मार्मिक है।

विवश होकर दहेजखोरों का मुँह न भर सकने के कारण निर्मला की माता अपनी पन्द्रह वर्षीया फूल-सी कन्या का विवाह ५० से भी ऊपर के एक बूढ़े सम्पन्न वकील तोताराम से करती है। निर्मला की ट्रेजडी केवल वय की विषमता की ट्रेजडी ही नहीं है। वह लाला तोताराम के घर में तीन बच्चों के लिए विमाता और अधेड़ बूढ़े पति के लिए नव विकसित कलिका और अद्भुत-लालसा पत्नी एक बूढ़ा ननद के लिए खटकने वाली गृह-स्वामिनी वह ननद के झूठे लाञ्छनों का शिकार बनी विमाता तथा नवयुवक पुत्र और नवयुवती पत्नी के बीच अनुचित सम्बन्ध का भ्रम करने वाले संशयालु पति की पत्नी बन जाती है। वह बच्चों से सात्विक स्नेह रखने पर भी कलङ्कित की जाती है। बड़े लड़के मनसा के प्रति स्नेह को पति सन्देह की दृष्टि से देखने लगता है। पति उसे पिता-तुल्य ममता है मन वह उसकी अनुगामिनी होते झिझकती है। पति का सन्देह बढ़ता है। वह सबब बड़े बेटे मनसा को पीड़ित करता है। सारा घर तबाह हो जाता है। बेटे मर जाते हैं। तोताराम की सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। शान्ति छिन जाती है। वह भी उजड़कर घर से चले जाते हैं। निर्मला घुल-घुल कर मर जाती है। मरते समय वह अपनी ननद से जो शब्द कहती है वे अत्यन्त मार्मिक है— "बीबीजी बच्ची को आपकी गोद में छोड़े जाती हूँ। अगर जीती जागती रहे तो अच्छे कुल में विवाह कर दीजिएगा। मैं तो इसके लिए अपने जीवन में कुछ न कर सकी। केवल जन्म देने भर की अपराधिनी हूँ। चाहे क्वारी रखिएगा, चाहे विष देकर मार डालिएगा पर कुपात्र के गले न मढ़िएगा। इतनी ही आपसे मेरी विनय है।"

'सेवासदन' में भी सुमन का विवाह अधेड़ अवस्था के एक कुरूप एवं निर्धन व्यक्ति गजाधरप्रसाद से होता है। कहाँ तो लाड़-प्यार में पली फूल-सी सुन्दर कन्या सुमन और कहाँ गजाधर प्रसाद! यह विषमता ऐसा विष-वृक्ष बोती है जिसका बहुर समाज को भी चख जाता है। बूढ़ा पति सहज ही संशयालु हो जाता है। सुमन के जीवन की विषम परिस्थितियाँ कैसे उसे वेश्या बना डालती हैं, वह इस

'सेवासदन' के प्रकरण में अच्छी तरह दिखा आए हैं।

सेवासदन में हमारी वैवाहिक पद्धति के और भी कई प्रकार के दोष बताये गए हैं, जैसे ब्याह-शादियों में अत्यधिक खर्च करना, वेश्याओं के नृत्य आदि कराना तथा सब से बढ़कर वह झूठी मर्यादा की दुहाई जिसके कारण सुमन के ब्याह से उसकी बहन वंचित हो जाती है। सदन का पिता तुरन्त बारात वापस लौटा ले जाता है और तूफान खड़ा करता है जब उसे मालूम होता है कि शान्ता की बहन सुमन बनारस में वेश्या बनी हुई है। वह ऐसे घर में अपने लड़के की शादी कैसे कर सकता है?

'निर्मला' में प्रेमचन्द ने नारी जीवन की एक और विषमता का चित्र भी प्रस्तुत किया है। वह है सुधा का जीवन। उसके जीवन की दुःखदी भी कम महत्त्व पूर्ण नहीं है। प्रेमचन्द ने स्पष्ट कर दिया है कि वय की विषमता तो विषमता है ही वय की समता में भी कई कारणों से विषमता रहती है। हमारी विवाह-संस्था एक ढकोसला ही है। स्वभाव और मन के मेल का वहाँ ध्यान ही नहीं रखा जाता। रुपयों की थैलियों से विवाह के सौदे होते हैं। सुधा और डाक्टर का प्रेम बालू की भीत पर ही स्थित था। डा० सिंहा को अपने वासना का फल भुगतना पड़ता है।

'प्रेमाश्रम' में प्रेमशंकर और श्रद्धा में विचित्र वैषम्य है। श्रद्धा एक पति परायणा परम्परा-पन्थी नारी है। उसका पति प्रेमशंकर विलायत हो आता है उसे वही धर्म मर्यादा के विरुद्ध लगती है और पति से खिंची रहती है। निश्चय ही यह खिंचाव और विचार-वैषम्य भी हमारी दूषित वैवाहिक पद्धति के कारण उत्पन्न होता है। ज्ञानशंकर और विद्या में विषमता का दूसरा रूप है। विद्या एक सती-साध्वी सच्चरित्रा नारी है। उसे अन्याय, पाखण्ड और लोलुपता से घृणा है। पति के कुकृत्यों से वह खिन्न रहती है। ज्ञानशंकर शोषक, अन्यायी, अत्याचारी और लोलुप व्यक्ति है। पत्नी को ऐसे पति की पतित मनोवृत्ति की बलि चढ़ना पड़ता है।

'गबन' में रतन का विवाह उसके मामा एक बूढ़े सम्पन्न वकील साहब से कर देते हैं। यद्यपि युवती रतन अपने पति के मन से समझकर ही अपने को सन्तुष्ट रखती है पर उसकी विषम जीवन परिस्थिति का करुण-परिणाम प्रेमचन्द ने बहुत अच्छी तरह दिखाया है। ऊपर से वह सन्तुष्ट दिखाई देती है पर जीवन में इसी विषमता के कारण उसका मातृत्व रिक्त रहता है। उसका अभाव-ग्रस्त मातृत्व हरदम चीत्कार करता है। दूसरे, बूढ़े पति से शादी का परिणाम यह होता है कि रोगी बूढ़ा पति शीघ्र ही चल बसता है। हजार प्रयत्न करने पर भी रतन उसे नहीं बचा सकती। और फिर वैधव्य का वही कारुणिक चित्र प्रकट होता है जो हर हिन्दू विधवा के भाग्य में बदा है। रतन असहाय हो जाती है। उसकी धन-सम्पत्ति

वकील साहब के भतीजे-द्वारा लूट भी जाती है। रतन बेसहारा निर्धन कङ्गाल बना दी जाती है। मणिभूषण (इन्द्रभूषण वकील का भतीजा) रतन से साफ कहता है कि सम्मिलित परिवार में एक विधवा का कोई अधिकार नहीं।

'रतन—मैं अपने मर्यादा की रक्षा आप कर सकती हूँ। तुम्हारी मदद की जरूरत नहीं। मेरी मर्जी के बगैर तुम यहाँ की कोई चीज नहीं बेच सकते।

मणिभूषण ने वज्र-सा मारा—आपका इस घर पर और चाचाजी की संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं। वह मेरी सम्पत्ति है। आप मुझ से केवल गुजारे का सवाल कर सकती हैं—सम्मिलित परिवार में विधवा का अपने पुरुष की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता।

और बेचारी रतन वैधव्य का अभिशाप अनुभव करने के बाद कहती है—"न जाने किस पापी ने यह कानून बनाया था कि स्त्री का पति की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं है। अगर ईश्वर कहीं है और उसके यहाँ कोई न्याय होता है तो एक दिन उसी के सामने उस पापी से पूछूगी—क्या तेरे घर में माँ-बहिनें न थी? तुम्हें उनका अपमान करते लज्जा न आई? अगर मेरी जबान में इतनी ताकत होती कि सारे देश में उसकी आवाज पहुँचती तो मैं सब स्त्रियों से कहती 'बहनो किसी सम्मिलित परिवार में विवाह मत करना और करना हो तो जब तक अपना घर अलग न बना लो चैन की नींद मत सोना। क्या यह आवाज हिन्दू कोडबिल के निर्माण की भूमिका नहीं है? वैवाहिक जीवन की विषमता के और भी कई सकेत प्रेमचन्द ने दिये हैं। धन से ही नारी का वैवाहिक जीवन सुखी नहीं होता। जालपा की एक सहेली का पति विद्वान् भी है और धनी भी पर है वेश्यागामी। दूसरी सखी का पति बहुत पढ़ा-लिखा है एम० ए० पास है पर सदा रोगी रहता है। रोगी पति से स्त्री कैसे प्रसन्न रह सकती है? अतः धन या विद्या ही वैवाहिक जीवन की सुख शान्ति के कारण नहीं हैं। वय और सचरित्रता तथा स्वास्थ्य आदि बातों की समता भी आवश्यक है।

'रङ्गभूमि' में राजा महेन्द्रकुमारसिंह और उनकी पत्नी इन्दु में विचारों और स्वभाव की विषमता है। भैरों और सुभागी का जोड़ा भी विषम है। इस रचना में प्रेमचन्द ने विनय और सोफिया के रोमांस को प्रस्तुत किया है। हिन्दू और ईसाई का रोमांस है, बीच में धर्म की बाधा है। सोफिया के माता-पिता दुहाई मचाते हैं। विनय की माता का हिन्दू धर्म बढ़ जाता है। परन्तु फिर भी प्रेमचन्द चाहते तो दोनों को मिला सकते थे क्योंकि दोनों स्वतन्त्र विचारों के दृढ़ प्राणी हैं, पर शायद प्रेमचन्द ने भी धर्म के भय से ऐसा नहीं किया है। दोनों भाग्य की डोरी पर झकोरे खाते रहते हैं और आत्म-बलिदान के पथ पर अग्रसर हो जाते हैं। धर्म की इस

दीवार को तोड़कर भी प्रेमचन्द सुमित्रा से निरपेक्ष रह गये।

'कायाकल्प' में विषमता का एक और रूप—'बूढ़ी रानी' वाला सामन्तीय रूप उभर आया है। राजा विशालसिंह के लिए नारी विलास का एक साधन है। वह बार-बार शादियाँ करता है और प्रत्येक नारी को सूँघे हुए फूल की तरह फेंक देता है। नारी-जीवन की कैसी करुण परिस्थिति है! कैसी विवशता है! रोहिणी की दुखी आत्मा राजा से कहती है—"आपने मेरे साथ कोई अन्याय नहीं किया। आपने वही किया जो सभी पुरुष करते हैं। स्त्री कभी पुरुष का खिलौना है कभी उसके पैरों की जूती।

अहल्या और चक्रधर का विवाहित जीवन इसलिए सुखी नहीं हो सका क्योंकि अहल्या अपने पति के स्वभाव के विपरीत ऐश्वर्य-सुख-भोग और विलास में ही जीवन का सुख मानती थी।

'गोदान' में प्रेमचन्द ने विषम दाम्पत्य जीवन के कई चित्र प्रस्तुत किये हैं। "खन्ना और गोविन्दी में नहीं पटती। प्रेमचन्द व्यंग्य करते हैं—"क्यों नहीं पटती यह बताना कठिन है। ज्योतिष के हिसाब से उनके ग्रहों में कोई विरोध है, हालाँकि विवाह के समय ग्रह और नक्षत्र खूब मिला लिए गए थे।' पटे कैसे? विवाह जन्म पत्री मिलाने से होता है स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलाई जाती या फिर धन के आधार पर होता है। दोनों में स्वभाव की विषमता है। खन्ना धन-दौलत का मद वाला ऐश्वर्य-मद में चूर, सम्राट, रसिक, विलासप्रिय धन को ही सब कुछ समझने वाला आडम्बर प्रिय व्यक्ति है। वह स्वच्छन्द विहार करता है। पर गोविन्दी सरल हृदय की भारतीय नारी है। 'यह अपार सम्पत्ति जैसे उसकी आत्मा को कुचलती रहती है।" आडम्बरों और पाखण्डों से उसे घृणा है। नारी और सब-कुछ सह सकती है पर पुरुष की पर-स्त्री-लम्पटता नहीं सह सकती। खन्ना मालती के पीछे दीवाना बना फिरता है फिर पटे कैसे? यह वैवाहिक पद्धति का दोष है, यह पुरुष-प्रधान सामाजिक व्यवस्था की त्रुटि है।

ऐसा ही एक और चित्र देखिए। रायसाहब अमरपालसिंह की पुत्री मीनाक्षी का विवाह के कुछ दिनों बाद ही पति से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। 'साधारण हिन्दू बालिकाओं की तरह मीनाक्षी भी बेज़बान थी। बाप ने जिसके साथ ब्याह कर दिया उसके साथ चली गई लेकिन स्त्री-पुरुष में प्रेम न था। दिग्विजयसिंह ऐयाश थे, शराबी थे। मीनाक्षी भीतर-ही-भीतर कुढ़ती रहती थी। पुस्तकों और पत्रिकाओं में मन बहलाया करती थी। दिग्विजयसिंह "बड़ा मनचला, अपनी कुल मर्यादा की डींग मारने वाला स्वभाव का निर्दयी और कृपण। नीच की नीच जाति जो वह स्त्रियों पर हाथ साफ करता था। सोहबत भी नीचों की थी जिनकी खुशामद से उसे

और भी खुशामदपसन्द बना दिया था। मीनाक्षी ऐसे व्यक्ति का सम्मान दिल से न कर सकती थी। मीनाक्षी गुजारे का दावा कर देती है, दिग्विजयसिंह ने उस पर उल्टा बदचलनी का आक्षेप लगाया।

'एक दिन वह क्रोध में आकर हण्टर लिए दिग्विजयसिंह के बंगले पर पहुँची। शोहदे जमा थे और वेश्या का नाच हो रहा था। उसने रणचण्डी की भाँति पिशाचों की इस चाण्डाल-चौकड़ी में पहुँच कर तहलका मचा दिया। हण्टर खा-खा कर लोग इधर-उधर भागने लगे। इतना मारा कि कुँवर साहब बेदम हो गए। वेश्या अभी तक कोने में दबकी खड़ी थी। अब उसका नम्बर आया। मीनाक्षी हण्टर तान कर जमाना ही चाहती थी कि वेश्या उसके पैरों पर गिर पड़ी मीनाक्षी ने उसकी ओर घृणा से देखकर कहा— 'हाँ तू निरपराध है। जानती है न मैं कौन हूँ? चली जा। अब कभी यहाँ न आना। हम स्त्रियाँ भोग-विलास की चीजें हैं ही तेरा कोई दोष नहीं। पुरुष की विलास-वृत्ति का कैसा घिनौना रूप है? मीनाक्षी का प्रत्येक कृत्य पाठक के हृदय के घृणा भाव को पुष्ट एव पुष्ट करता है। उसकी घृणा से हमारा तादात्म्य हो जाता है। क्रोध-मिश्रित घृणा का यहाँ कैसा सुन्दर चित्र है!

यही रायसाहब अमरप्रतापसिंह बेटे रुद्रपाल का विवाह भी अपनी प्रतिष्ठा और मर्यादा की दुहाई देकर राजा सूर्यपालसिंह की लड़की से अपनी मर्जी के मुताबिक करना चाहते हैं पर वह तो लड़का था—निडर, स्वच्छन्द विचारों का। इसीसे बाप के झाँसे में न आया।

शहरों में यह विषमता पुरुष की सम्पटता और स्वभाव की उछृंखलता के कारण उत्पन्न होती है जिसके मूल में है धन-सम्पत्ति का लोप। गाँव में विषमता का कारण है विवशता। 'होरी' की दशा दिन दिन गिरती जा रही थी। मकान गया बैल गए खेती नहीं रही अब जमीन से भी बेदखल होने वाला था। इसी समय धूर्त दातादीन आपत्काल का धर्म बताता हुआ कहता है— 'आपत्काल में श्रीरामचन्द्र ने सबरी के झूठे फल खाये थे बालि का छिप कर बध किया था। जब संकट में बड़े-बड़ों की मर्यादा टूट जाती है तो हमारी-तुम्हारी कौन बात है। रामसेवक महतो को जानते हो न? यह बड़ा अच्छा औसर है। लड़की का ब्याह भी हो जायगा और तुम्हारे खेत भी बच जायँगे। सारे कारज-धरम स बचे जाते हो।

'रामसेवक होरी से दो-ही-चार साल छोटा था। ऐसे आदमी से रूपा के ब्याह करने का प्रस्ताव ही अपमानजनक था। कहाँ फूल-सी रूपा और कहाँ वह बूढ़ा ठूठ! पर्याप्त मानसिक द्वन्द्व के बाद होरी-धनिया चूड़े रामसेवक से कन्या का विवाह कर देते हैं। यह एक तरह से लड़की बेचना ही हुआ। दातादीन ने चुपके से सौ-सौ के दो नोट होरी को दिये। होरी ने रुपये लिये तो उसका हाथ काँप रहा

था। उसका सिर ऊपर न उठ सका मुँह से एक शब्द न निकला ——आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ है कि मानो उसको नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है, उसके मुँह पर थूक देता है। वह चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा है भाइयो मैं दया का पात्र हूँ।"

गाँव का दूसरा चित्र है भोला और नोहरी का। भोला अपने बुढ़ापे में दूसरी सगाई से लाता है। औरत के बिना उसका जीवन नीरस था। संयोग से एक जवान विधवा मिल गई। भोला की लार टपक पड़ी। झटपट शिकार मार लाये। घर परिवार में स्वर्ग विकार बन गए। लड़कों बहुओं से झगड़ा रहने लगता है। कमाई खा कर बेटे से आदर पाने का अब उसे कोई हक न रहा था। कामता ने भोला को पीटकर घर से निकाल दिया। गोबरधन ने उसे और उसकी पत्नी नोहरी को अपने यहाँ शरण दी—नोहरी को विशेष रूप से। नोहरी के विषय में कनफुसियाँ होती रहीं—नोहरी ने आज गुलाबी साड़ी पहनी है। अब क्या पूछना है चाहे रोज एक साड़ी पहने। ऐसा मर्द कोतवाल अब डर काहे का? भोला की आँखें फूट गई हैं क्या? यह परिणाम है इस बेमेल विवाह का। भोला नोहरी के इशारे पर नाचने लगा उसकी आँखों का पानी मर गया। घर से अलग हुआ निकम्मा और गुलाम बन गया कोई बात भी नहीं पूछता था। वह लड़कों के पास रहना चाहता है, पर अब नोहरी उसे जाने नहीं देती। जूतों से पीट देती है।

गाँवों में पैसे के प्रभाव से प्राय: बेमेल विवाह हुआ करते हैं। झिंगुरीसिंह दो-दो जवान मेहरियाँ रखे हुए हैं। यद्यपि वह उन्हें पर्दे में रखता है। पर न जाने पर्दे की ओट में क्या-क्या होता है? इस प्रकार की वय-विषमता का परिणाम नैतिक पतन ही होता है।

गाँवों में जात-पाँत की बीमारी भी सच्चे और स्वाभाविक प्रेम-विवाह में बाधक है। गोबर और झुनिया प्रेम-पाश में बँध जाते हैं। झुनिया विधवा है और अहीर की लड़की है। गोबर उसे अपने घर ले आता है पर बिरादरी और पञ्च लाठी लेकर पीछे पड़ जाते हैं। होरी को सैकड़ों रुपये का डाँड भरना पड़ता है। सिलिया को पण्डित मातादीन ने फुसला लिया। वह बेचारी मातादीन से अटूट प्रेम करने लगती है आत्म-समर्पण कर देती है। पर ब्राह्मण और चमारिन का क्या मेल? मातादीन आरम्भ में तो उसे खिलौना ही समझता है, पर बाद में उसकी मानवता जाग जाती है और वह तपस्या की देवी सच्ची प्रेमिका सिलिया को अपना लेता है।

इस प्रकार 'गोदान' में भी हमें पुरुष की स्वच्छन्दता आर्थिक विषमता और-

तुम हमें बाह्मन नहीं बना सकते मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं। हमें बाह्मन बना दो हमारी सारी बिरादरी रखने को तैयार है। जब यह सामरथ नहीं है तो फिर तुम ही चमार बनो हमारे साथ खाओ-पीओ हमारे साथ उठो-बैठो। हमारी इज्जत लेते हो तो अपना धरम हमें दो।"

दातादीन ने लाठी फटकार कर कहा— मुँह सँभाल कर बातें कर हरखुआ! तेरी बिटिया वह खड़ी है ले जा जहाँ चाहे। हमने उसे बाँध नहीं रखा है।"

सिलिया की माँ उँगली चमका कर बोली— 'वाह-वाह पण्डित खूब नियाव कहते हो! तुम्हारी लड़की किसी चमार के साथ निकल गयी होती और तुम इस तरह की बातें करते तो देखती। हम चमार हैं इसलिए हमारी कोई इज्जत नहीं! हम सिलिया को अकेली न ले जायँगे उसके साथ मातादीन को भी ले जायँगे जिसने उसकी इज्जत बिगाड़ी है। तुम बड़े नेमी-धर्मी हो। उसके साथ सोओगे लेकिन उसके हाथ का पानी न पियोगे! यही चुड़ैल है कि यह सब सहती है। मैं तो ऐसे आदमी को माहुर दे देती।

हरखू ने अपने आदमियों को ललकारा—सुन ली इन लोगों की बात कि नहीं? अब क्या खड़े ताकते हो?

'इतना सुनना था कि दो चमारों ने लपककर मातादीन के हाथ पकड़ लिये तीसरे ने झपट कर उसका जनेऊ तोड़ डाला और दो चमारों ने मातादीन के मुँह में एक बड़ी-सी हड्डी का टुकड़ा डाल दिया।

निश्चय ही 'गोदान' में चमारों का यह संघर्ष वर्ग-संघर्ष का उत्तम उदाहरण है। कृषक-वर्ग के संघर्ष का समूची रचना में एक भी उदाहरण इतना सजीव नहीं है। आश्चर्य ही है कि प्रेमचन्द ने मजदूरों और चमारों का प्रासङ्गिक वर्ग-संघर्ष तो इतना खुला स्पष्ट और सजीव दिखाया है पर कृषकों के सामूहिक संघर्ष का एक भी उदाहरण नहीं मिलता। कृषकों के जीवन की विषमता और वर्ग-चेतना प्रस्तुत करना ही उनका उद्देश्य बना रहा।

कृषक-जीवन की उपर्युक्त करुणा के अतिरिक्त 'गोदान' में सिलिया झुनिया और गोबिन्दी के तीन और करुण नारी चित्र मिलते हैं। तीनों की करुणा पुरुष के अत्याचारों का परिणाम है। लम्पट मातादीन ने बेचारी सिलिया चमारिन को फाँस लिया। सिलिया ने अपना तन-मन सब उसके प्रेम में अर्पित कर दिया। पर वह धूर्त उसे खिलौना ही समझता रहता है। सिलिया उसकी खेती का सारा काम करती है। तीन-तीन आदमियों का काम अकेली करती है। पर लम्पट मातादीन उसका तन मन दोनों लेकर भी बदले में कुछ न देना चाहता था। सिलिया दो पैसे का रस दुलारी सहुआइन की दुकान से लाई थी। यह उधार चुकाने के लिए वह मुट्ठी भर अनाज

अभिमान में मे दुलारी का द दनी है। मातादीन उसे डाँट कर कहता है—तून अनाज क्यों दे दिया ? किससे पूछकर दिया ? तू कौन हुई है मेरा अनाज दन वाली " सिलिया हक्का-बक्का होकर मातादीन का मुह देखने लगा। ऐसा जान पड़ा जिस डाल पर वह निश्चिन्त बैठी हुई था वह टूट गई है और अब वह निराधार नीचे गिरी जा रही है। सिलिया न उस पक्षी की भाँति जिस मालिक न पर काटकर पिंजरे म निकाल दिया हो। मातादीन की ओर देखा। उस चितवन में वेदना अधिक थी या ममता यह कहना कठिन है। पर उसी पक्षी की भाँति उसका मन फड़फड़ा रहा था उस वह दिन याद था— जब यही मातादीन उसके तलव सहलाता था अब उनसे अलग हाथ म लेकर कहा था—सिलिया। अब तक दम में दम है तुझ ब्याहता की तरह रखूँगा।

बेचारी सिलिया का माँ-बाप और भाई खूब मारते हैं और घर स निकाल देते हैं। वह निराश्रित हो जाती है। वह मजूरी करके अपना पेट भरती है प्रसव-वेदना सहती है और मातादीन के बच्चे को जन्म देती है। भूखी मरती है पर मातादीन के नाम पर बैठी है।

झुनिया को शहर में लाकर गोबर पक्का स्वार्थी और सम्पट बन जाता है। वह झुनिया को काम वासना की वस्तु मात्र समझता है। बेचारी झुनिया गम का घर हो रहा है, किन्तु गोबर अपनी पशुता से बाज नहीं आता। उसका दो साल का बच्चा मर जाता है। गोबर को कोई परवाह ही नहीं। गोबर अब रात को बारह एक बजे घर आता। परदेश म अकेली झुनिया को प्रसव की चिन्ता हुई। गोबर कोई व्यवस्था नहीं करता। वह निराश पड़ी रहता है गोबर की उपेक्षा का शिकार होती है। वह शिशु का जन्म देती है शिशु पाँच ही दिन रहा पर वह भी चल बसा, क्योंकि ऊपर का दूध उसे पचता न था झुनिया के स्तनों में दूध न था। उसकी देह में खून ही नहीं था दूध कहाँ से आये।

मालती अपने पति खन्ना की उपेक्षा से दुखी है। उसका पति उसे जरा भी खातिर में नहीं लाता उलटा लड़ता-झगड़ता है। पुरुष की सम्पन्नता से बेचारी नारी दुखी हो जाती है। वह इस मानसिक सन्ताप में घर स निकल कर भाग जाती है। ऐसे जीवन से तो मृत्यु अच्छी!

इस प्रकार 'गोदान' में करुण-परिस्थितियाँ खूब पाई जाती हैं। सच तो यह है कि करुण और शृंगार रस का सह-संचार इस उपन्यास में आद्योपान्त पाया जाता है और यही इसकी शक्ति का रहस्य है। "करुणा और मधुरता" का ऐसा सुन्दर संयोग बहुत कम रचनाओं में होता है। 'गोदान' की सारी प्रभाव शक्ति आकर्षण रोचकता जीवन-दमन और जीवन-उल्लास-अवबोधन सब इन दो भाव-संवेदनाओं

के माध्यम ही मुख्य रूप से प्रस्तुत हुए हैं।

शृङ्गार रस—प्रेम के विविध रूप

'गोदान' में शृङ्गार रस का भी पर्याप्त प्रसार पाया जाता है। प्रणय मानव की शाश्वत सहज प्रवृत्ति है। दाम्पत्य प्रेम प्रेम का अत्यन्त उज्ज्वल और उदात्त तथा महत् रूप होता है। जीवन की अनेक परिस्थितियों में यह प्रेम पलता और बेसता है। 'गोदान' मे इस प्रेम के कई रूप मिल पाये जाते हैं। एक ओर होरी और धनिया का प्रौढ़ प्रेम है, जो जीवन की कठोरताओं मुसीबतों और सङ्कटों में भी दृढ़ रहता है। जिसमें एक-दूसरे के प्रति रीझ-खीझ अनुरोध-विरोध हास्य-कटुता आदि का जबरदस्त प्रवाह होते हुए भी अटूट विश्वास और दृढ़ निश्चलता है। इसमें रीतिकाल की शारीरिक उत्तेजना नहीं आन्तरिक तीव्रता है उदात्तता है। गोदान का आरम्भ ही होरी-धनिया के इस प्रगाढ़ प्रेम से हुआ है

'होरीराम ने दोनों बैलों को सानी-पानी देकर अपनी स्त्री धनिया से कहा—गोबर को ऊख गोड़ने भेज देना। मैं न जाने कब लौटूं। जरा मेरी लाठी देदे।

धनिया'''बोली—अरे, कुछ रस-पानी तो कर लो। ऐसी जल्दी क्या है ?

परन्तु होरी को जाने की जल्दी है कहीं देर हो गई तो मालिक से भेंट न होगी। वह रस-पानी की बात ठुकरा देता है। धनिया का विद्रोही मन कहता है कि जिस गृहस्थी में पेट की रोटियाँ भी न मिलें उसके लिये इतनी खुशामद क्यों ? वह खीझकर होरी की लाठी मिरजई, पगड़ी जूते और तमाखू का बटुआ लाकर सामने पटक देती है।

'होरी ने उसकी ओर आँखे तिरेर कर कहा—क्या ससुराल जाना है जो पाँचों पोशाक लायी है ? *ससुराल में भी तो कोई जवान साली-सलहज नहीं बैठी* है जिसे जाकर दिखाऊँ ?

होरी के गहरे साँवले पिचके हुए चेहरे पर मुस्कराहट की मृदुता झलक आई। धनिया ने लजाते हुये कहा—ऐसे ही तो बड़े सजीले जवान हो कि साली सलहजें तुम्हें देखकर रीझ जायेंगी।

तो क्या तू समझती है कि मैं बूढ़ा हो गया ? अभी तो चालीस वर्ष भी नहीं हुए। मर्द साठे पर पाठे होते हैं।

जाकर शीशे में मुंह देखो। तुम जैसे मर्द साठे पर पाठे नहीं होते। दूध-घी अञ्जन तक को तो मिलता ही नहीं पाठे होंगे। तुम्हारी दशा देख-देखकर तो मैं और भी सूखी जाती हूँ कि भगवान् यह बुढ़ापा कैसे कटेगा ? किसके द्वार पर भीख माँगेंगे ?

होरी की वह क्षणिक मृदुता यथार्थ की इस आँच में जैसे झुलस गई। लकड़ी

सँभालता हुआ बोला—साठे तक पहुँचने की नौबत ही न आने पायेगी धनिया! इसके पहले ही चल देंगे।

धनिया ने तिरस्कार किया—अच्छा रहने दो मत अशुभ मुँह से निकालो। तुमसे कोई अच्छी बात भी करे, तो लगते हो कोसने।

होरी लाठी कंधे पर रखकर घर से निकला तो धनिया द्वार पर खड़ी उसे देर तक देखती रही। उसके इन निराशा-भरे शब्दों ने धनिया के चोट खाये हुए हृदय में आतंकमय कंपन-सा डाल दिया था। वह जैसे अपने नारीत्व के सम्पूर्ण तप और व्रत से अपने पति को अभयदान दे रही थी। उसके अन्तःकरण से जैसे आशीर्वादों का व्यूह-सा निकलकर होरी को अपने अन्दर छिपाए लेता था। विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी।'

यह प्रौढ़ प्रेम विचित्र है। मार-फटकार, गाली-दुत्कार आदि की कटुताओं में भी यह दृढ़ रहता है। एक मधुर मुस्कान या विनोद से सारी खीझ सारा क्रोध शान्त हो जाता है। होरी और धनिया में बात-बात पर तकरार होती है। गोबर माँ-बाप से लड़कर झुनिया को साथ ले शहर भगा जाता है। होरी और धनिया दोनों दुखी हो उठते हैं। वे एक-दूसरे पर दोष मढ़ने लगते हैं। धनिया झुनिया को कोसती है और होरी गोबर को दोष देता है। होरी ने चिढ़कर कहा—जब देखो तब तू झुनिया को ही दोष देती है। यह नहीं समझती कि अपना सोना खोटा तो सोनार का क्या दोष?

धनिया गरम उठी—अच्छा चुप रहो। तुम्हीं ने रोज को मुँह पर चढ़ा रखा था नहीं मैंने पहले ही दिन झाड़ू मारकर निकाल दिया होता।

होरी अब गोबर का भी पक्ष लेता है—'मान ले बहू ने गोबर को फोड़ ही लिया तो तू इतना कुढ़ती क्यों है? जो सारा तमाशा करता है वही गोबर ने किया।' धनिया चिढ़कर बोली—तुम्हीं उपद्रव की जड़ हो।

तो मुझे भी निकाल दे। मैं जा बैलों को अनाज माँड़। मैं हुक्का पीता हूँ।

"तुम चलकर चिलम पीओ मैं अनाज माँड़ूँगी।

विनोद में दुःख उड़ गया। पति-पत्नी में दूना अनुराग उमड़ आया।

हीरा अपनी पत्नी पुनिया को मारता है। होरी उसे हटाने जाता है। धनिया होरी पर खीझ कर कहती है—कोई तुम्हारी सुनता भी है कि यों ही सिखावन दे रहे हो? उस दिन इसी बहू ने तुम्हें घूँघट की आड़ में दाढ़ीजार कहा था भूल गये?

होरी द्वार पर आकर अल्हड़पन के साथ बोला—और जो मैं इसी तरह तुझे मारूँ?"

'क्या कभी मारा नहीं है जो मारने की साध बनी हुई है ?

'इतनी बेदर्दी से मारता तो तू घर छोड़ कर भाग जाती। पुनिया बड़ी समझदार है।

'ओ हो ! ऐसे ही तो बड़े दरयवान हो। अभी तक मार का दाग बना हुआ है। हीरा मारता है तो दुलराता भी है। तुमने खाली मारना सीखा दुलार करना सीखा ही नहीं..।

'अच्छा रहने दे बहुत अपना बखान न कर। तू ही रूठ-रूठ कर नहर भागती थी। जब महीनों खुशामद करता था तब जाकर आती थी।

'जब अपनी गरज सताती थी तब मनाने जाते थे लाला ! मेरे दुलार से नहीं जाते थे।

इसी से तो मैं सबसे तेरा बखान करता हूं।"

'वैवाहिक जीवन के प्रभात में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है और हृदय के सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों से रञ्जित कर देती है। फिर मध्याह्न का प्रखर ताप आता है लालसा का सुनहरा आवरण हट जाता है और वास्तविकता अपने नग्न रूप में सामने आ खड़ी होती है। उसके बाद विश्राममय सन्ध्या आती है शीतल और शान्त जब हम थके हुये पथिकों की भांति दिन भर की यात्रा का वृत्तान्त कहते और सुनते हैं।

होरी और धनिया के इस प्रौढ़ प्रेम के अतिरिक्त गोदान में झुनिया और गोबर का अल्हड़ प्रेम और सिलिया का एकनिष्ठ प्रेम भी मार्मिक है। गोबर और झुनिया का प्रथम मिलन बहुत मनोरञ्जक है। गोबर और होरी दोनों भोला के साथ भूसे के खाँचे छोड़ने भोला के घर गये। भोला की लड़की झुनिया रस-पानी बनाने के लिए रस्सी और कलसा लेकर पानी भरने चली। गोबर ने उसके हाथ से कलसा लेने के लिए हाथ बढ़ाकर झेंपते हुए कहा—तुम रहने दो मैं भरे लाता हूं।

झुनिया ने कलसा न दिया। कुएँ की जगत पर जाकर मुसकराती हुई बोली—तुम हमारे मेहमान हो। कहोगे एक लोटा पानी भी किसी ने नहीं दिया।

"मेहमान काहे से हो गया। तुम्हारा पड़ोसी ही तो हूं।

'पड़ोसी साल भर में भी सूरत न दिखाये तो मेहमान ही है।

'रोज रोज आने से मरजाद भी तो नहीं रहती।

झुनिया हँसकर तिरछी नजरों से देखती हुई बोली—वही मरजाद तो दे रही हूं। महीने में एक बेर आओगे ठण्डा पानी दूंगी। पन्द्रहवें दिन आओगे चिलम पाओगे। सातवें दिन आओगे खाली बैठने को माची दूंगी। रोज रोज

बामोगे कुछ न पाओगे।

'दरसन तो दोगी ?

"दरसन के लिए पूजा करनी पड़ेगी।"

और बात की बात में दोनों एक-दूसरे के हो गए। अगले दिन गोबर जब पास मने आता है तो सारा दिन दोनों का मधुर मिलन रहता है। मुनिया आधे से भी अधिक रास्ते तक गोबर को छोड़ने आती है। उनके मधुर आलाप का एक चित्र देखिए। रास्ता चलते मुनिया ने गोबर को मद भरी आँखों से देखकर कहा—"अब तुम काहे को यहाँ कभी आओगे!

"भिक्षुक को भीख मिलने की आशा हो तो वह दिन भर और रात भर दाता के द्वार पर खड़ा रहे।

"भिक्षुक जब तक दस द्वारे न जाय उसका पेट कैसे भरेगा। मैं ऐसे भिक्षुकों को मुँह नहीं लगाती। ऐसे तो गली-गली में मिलते हैं। फिर भिक्षुक देता क्या है असीस! असीसों से तो किसी का पेट नहीं भरता।

"भिक्षुक को एक ही द्वार पर भर-पेट मिल जाय तो क्यों द्वार-द्वार घूमे ?

मुनिया ने सदय भाव से उसकी ओर ताका। कितना भोला है, कुछ समझता ही नहीं।

'भिक्षुक को एक द्वार पर भर-पेट नहीं मिलता है। उसे तो चुटकी ही मिलेगी। सर्वस तो तभी पाओगे जब अपना सर्वस दोगे।

गोबर मुनिया को घर छोड़कर लखनऊ चला जाता है और जब शहर में कमाकर साल भर पर आता है तब मुनिया का मानिनी रूप बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से व्यक्त हुआ है। गोबर आया तो घर में उत्साह छा गया। सोना-रूपा गोबर के लाये हुए सामान को देखने लगी। लेकिन मुनिया दूर खड़ी थी। उसके मुख पर आज मान का ओज रङ्ग झलक रहा था। गोबर ने उसके साथ जो व्यवहार किया है, आज वह उसका बदला लेगी।...बच्चा उन चीजों की ओर लपक रहा था—पर मुनिया उसे गोद से उतरने न देती थी।

सोना बोली—भैया तुम्हारे लिए आईना-कंघी लाए हैं भाभी!

मुनिया ने उपेक्षा-भाव से कहा—मुझे ऐसा-कंघी न चाहिए। अपने पास ने रहें।

रूपा ने बच्चे की चमकीली टोपी निकाली—लो हो! वह मुन्नू की टोपी! और उस बच्चे के सिर पर रख दिया।

मुनिया ने टोपी उतारकर फेंक दी। और सहसा गोबर को अन्दर आते देखकर वह बालक को लिए अपनी कोठरी में चली गई।"

मान का कैसा सुन्दर अभिनय है ! जब गोबर को शहर में हड़ताल के संघर्ष में चोट लग जाती है तो झुनिया जिस एकनिष्ठता से उसकी सेवा करती है, वह नारी के पति प्रेम का अत्यन्त मार्मिक पक्ष है। सिलिया के प्रेम में अद्भुत विचित्रता है। वह चमारिन है। सम्पट मातादीन उसे अपने जाल में फँसा लेता है। वह भी उसके प्रेम में विश्वासी होकर अपना तन-मन अर्पित कर देती है। पर सम्पट मातादीन अपने धर्म की रक्षा की दुहाई देकर सिलिया की उपेक्षा करता है। वह फिर भी मातादीन के ही नाम पर बैठी रहती है। एक बार जिसे पति बना लिया फिर उसके सिवा और ठौर कौन-सा हो सकता है ! उसके माता-पिता-भाई उसे घर से निकाल देते हैं। वह निराश्रित हो जाती है। पर फिर भी स्वयं मजूरी करके अपना पेट भरती है भूखी रहती है। पूरा गर्भ लेकर भी वह मजूरी करती रही। किन्तु अपने प्रेम की टेक नहीं छोड़ती। मातादीन उससे प्रेम नहीं करता न करे, उसे कोई परवा नहीं। वह स्वयं मातादीन के प्रति एकनिष्ठ रहती है। वह स्पष्ट कहती है 'एक बार जिसने बाँह पकड़ ली उसी की रहूँगी। जब प्रायश्चित्त के ढोंग और बीमारी के बाद मातादीन की बुद्धि ठिकाने आती है और वह सिलिया के प्रति अपने अत्याचारों से पछताता हुआ सिलिया के पास दो रुपये भेजता है तो सिलिया 'जैसे अपनी तपस्या का वरदान पा गयी। किसे यह खुशखबरी सुनाये ?'—उसके पेट में चूहे दौड़ रहे थे सोना उसकी सहेली थी। सिलिया उससे मिलने के लिए आतुर हो गई। रात-भर कैसे सब्र करे ? मन में एक आँधी-सी उठ रही थी। अब वह अनाथ नहीं है। मातादीन ने उसकी बाँह फिर पकड़ ली। जीवन-पथ में उसके सामने अब अँधेरी विकराल मुख वाली खाई नहीं है, लहलहाता हुआ हरा-भरा मैदान है जिसमें झरने गा रहे हैं और हिरन कुलेलें कर रहे हैं। उसका रूठा हुआ स्नेह आज उन्मत्त हो गया है। वह अँधेरे में ही नदी पार करके सोना को मिलने जाती है। कितना उत्साह भर गया है उसमें ! आखिर इस प्रेम की देवी के मन्दिर में मातादीन को अपना सर्वस्व चढ़ाना पड़ता है। वह अपने ढोंगी धर्म का चोला उतार कर सच्चा धर्म अपनाता है। वह मुसमुस्का सिलिया की झोपड़ी के द्वार पर आकर कहता है—यही हमारा घर है।

सिलिया ने अविश्वास क्षमा व्यङ्ग और दुख-भरे स्वर में कहा—'यह तो सिलिया चमारिन का घर है। मातादीन ने द्वार की टाटी खोलते हुए कहा—'यह मेरी देवी का मन्दिर है।

और वह स्पष्ट कहता है—मैं ब्राह्मण नहीं चमार ही रहना चाहता हूँ। जो अपना धर्म पाले वही ब्राह्मण है जो धर्म से मुँह मोड़े वही चमार है।

सिलिया ने उसके गले में बाँहें डाल दीं।

प्रेमचन्द ने प्रेम के इस प्रकार चित्रण से एक अद्भुत क्रांतिकारी कार्य किया है। इस प्रकार का अन्तर्जातीय मिलन और सम्बन्ध प्रेमचन्द-युग में एक अनोखी कल्पना ही था। निश्चय ही प्रेमचन्द इस प्रेम चित्रण में अपने युग से बहुत आगे बढ़ गए हैं। जहाँ पहले उपन्यासों में वे विजातीय और अन्तर्जातीय सम्बन्ध कराते डरते थे वहाँ 'गोदान' में उनका प्रगतिशील मन बिल्कुल निर्भय हो गया है। जहाँ 'रंगभूमि' में विनय और सोफिया तथा 'कर्मभूमि' में सकीना और अमरकान्त की कहानी अधूरी ही रही वहाँ 'गोदान' में प्रेमचन्द ने धर्म के परम्परागत किले को तोड़कर रख दिया और मानव प्रेम की शाश्वत कहानी को पूर्ण रूप दिया।

'गोदान' में सोना का प्रखर पातिव्रत्य भी बहुत उदात्त है। 'सोना की दृष्टि में सबसे बड़ा पाप किसी पुरुष का पर-स्त्री और स्त्री का परपुरुष की ओर ताकना था। ...प्रेम के लिये दाम्पत्य के बाहर उसकी दृष्टि में कोई स्थान न था।' जब वह मथुरा और सिलिया को अँधेरे में मिलते देखती है तो संदेह के कारण आग-बबूला हो उठती है। वह आरम्भ में दहेज लेन-देने का भी विरोध करती है। वह अपने भावी पति मथुरा को कहला भेजती है कि अगर उन्हें सोना चाहिए तो सोना-चाँदी (दहेज) का लोभ छोड़ना होगा। वह एक सच्ची भारतीय नारी प्रतीत होती है जो अपने सच्चे प्रेम को निभाती है और अपने पति की जरा-सी बुराई भी नहीं सहती।

मेहता और मालती का पूर्वराग (Courtship) भी रोचक विषय है। मालती मेहता के रूप-गुण पर आकर्षित है। वह अपना प्रेमपूर्ण हृदय मेहता की ओर बढ़ाती है। पर मेहता उसे परीक्षक की दृष्टि से ही देखते रहे। क्योंकि केवल रूप का आकर्षण तो उन पर कोई असर न कर सकता था। जब मालती अपने प्रेम को अत्यन्त गम्भीर और विस्तृत रूप देती है, वह सेवा और त्याग की मूर्ति बन जाती है तब मेहता उसे पाने के लिए अधीर हो उठते हैं। पहले मालती प्यासी थी, अब मेहता प्यास से विकल है। जब मालती वात्सल्य से भरकर रात को भूमिका के बच्चे मंगल का उपचार करती है उसे अपनी गोद में बहलाती है तो 'मालती का यह अटूट वात्सल्य यह अनन्य मातृ-भाव देखकर उनकी (मेहता की) आँखें सजल हो गईं। मन में ऐसा पुलक उठा कि अन्दर जाकर मालती के चरणों को हृदय से लगा लें। अन्तस्तल से अनुराग में डूबे हुये शब्दों का एक समूह मचल पड़ा—प्रिये, मेरी प्यारी, मेरी देवी, मेरी रानी डार्लिंग...'।

और उसी प्रेमोन्माद में उन्होंने पुकारा—मालती जरा इधर आना।

मालती ने आकर द्वार खोल दिया और उनकी ओर जिज्ञासा की आँखों से देखा।

'क्या मुझे कुछ याचना करने की अनुमति न दोगी...'

मालती ने आर्द्र होकर कहा— 'तुम जानते हो तुमसे ज्यादा निकट संसार में मेरा कोई दूसरा नहीं है। मैंने बहुत दिन हुए, अपने को तुम्हारे चरणों पर समर्पित कर दिया। तुम मेरे पथ प्रदर्शक हो मेरे देवता हो मेरे गुरु हो। तुम्हें मुझसे कुछ भी याचना करने की जरूरत नहीं मुझे केवल संकेत कर देने की जरूरत है। "तुम्हारा प्रेम और विश्वास पाकर अब मेरे लिए कुछ भी शेष नहीं रह गया है।" यह मेरी पूर्णता है। यह कहते-कहते मालती के मन में ऐसा अनुराग उठा कि मेहता के सीने से लिपट जाय। भीतर की भावनाएं बाहर आकर मानो सत्य हो गई थीं। उसका रोम रोम पुलकित हो उठा।

और इस प्रेम की चरम परिणति अत्यन्त पवित्र भावना में होती है। मालती गम्भीर होकर कहती है— " मैंने यह तय किया है कि मित्र बनकर रहना स्त्री-पुरुष बनकर रहने से कहीं सुखकर है। तुम मुझसे प्रेम करते हो मैं भी तुमसे प्रेम करती हूं तुम पर विश्वास करती हूं, और तुम्हारे लिये कोई ऐसा त्याग नहीं है जो मैं न कर सकूं।" हमारी पूर्णता के लिए, हमारी आत्मा के विकास के लिए और क्या चाहिए ? अपनी छोटी-सी गृहस्थी बनाकर अपनी आत्माओं को छोटे-से पिंजड़े में बन्द करके अपने दु:ख-सुख को अपने ही तक रखकर क्या हम असीम के निकट पहुँच सकते हैं ? " तुम्हारे जैसे विचारवान् प्रतिभाशाली मनुष्य की आत्मा को मैं इस कारागार (गृहस्थ) में बन्द नहीं करना चाहती।"।

मेहता सिर झुकाये सुनते रहे। उन्होंने मालती के चरण दोनों हाथों से पकड़ लिये और कांपते हुए बोले—तुम्हारा आदेश स्वीकार है मालती !

और दोनों एकान्त होकर प्रगाढ़ आलिंगन में बंध गये। दोनों की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। दोनों पवित्र प्रेम-पाश में बंध गए—नर-नारी के ऐसे प्रेम में जहाँ शरीर के स्थान पर आत्मा स्वार्थ के स्थान पर परमार्थ सांसारिकता के स्थान पर आध्यात्मिकता और संकुचित गृहस्थ-धर्म के स्थान पर विश्व मानव-धर्म की पवित्र भावनाएँ प्रमुख रहती हैं।

'गोदान' में स्वच्छन्द प्रेम का दूसरा उदाहरण है रायसाहब और सरोज के प्रेम का। यद्यपि इन दोनों का प्रेम चरित-रूप में प्रकट नहीं हुआ है कथित-मात्र है तथापि रुद्रपाल-द्वारा पिता के प्रलोभन को ठुकराना उसके सरोज के प्रति प्रेम की प्रगाढ़ता को व्यञ्जित करता है। धन प्रतिष्ठा जाति-गोत्र आदि के परम्परागत दृष्टिकोण और माता-पिता की अपनी मर्जी से शादी ठीक करने की परिपाटी को इस प्रेम-चित्र द्वारा सम्यक धक्का पहुँचाया गया है।

इस प्रकार 'गोदान' में प्रेम के कई रूप-चित्र पाये जाते हैं। दाम्पत्य प्रेम के अतिरिक्त वात्सल्य-स्नेह भ्रातृ-स्नेह उदात्त मानवीय प्रेम आदि—प्रेम की अनेक भू

तियों का प्रकाशन 'गोदान' में हुआ है। होरी और धनिया के वात्सल्य-पूर्ण हृदय की कई झाँकियाँ पाई जाती हैं। धनिया का रोम रोम सन्तान प्रेम से भरा हुआ है। सन्तान के लालन-पालन-हेतु ही होरी और धनिया घोर परिश्रम करते हैं। उन्हें दुख है कि अपने बच्चों को वे घी-दूध नाम मात्र को भी नहीं दे पाते घर में एक गाय भी बच्चों के लिए नहीं बाँध सकते। होरी गाय लाने की सोचता है, 'गोबर दूध के लिये तरस-तरस कर रह जाता है। इस उमर में न खाया पिया तो फिर कब खायेगा?' वह रूपा को गोदी में उठाता है, अपनी थाली में साथ खिलाता है और सोना-रूपा के वाद-विवाद में आनन्द लेता है।

होरी ने स्वयं धनिया को बताया कि हीरा ने गाय को कुछ खिला दिया है पर जब धनिया सारे गाँव में ढिंढोरा पीटने लगती है तो भाई को बचाने के लिये होरी गोबर के सिर पर हाथ रखकर झूठी कसम खा जाता है कि मैंने हीरा को नहीं देखा। धनिया का रोम रोम जल उठता है। वह कहती है—झूठी है! अगर मेरे बेटे का बाल भी बाँका हुआ तो घर में आग लगा दूँगी। सारी गृहस्थी में आग लगा दूँगी। मातृ-हृदय का कैसा सुन्दर चित्र है?!

एक और मनोवैज्ञानिक चित्र देखिए। झुनिया को गोबर घर ला छोड़ता है। धनिया पहले तो झुनिया को कोसती है—कुलटा, कलङ्किनी और कलमुँही आदि कहकर उसे बाहर धकेल देने की बात सोचती है पर जब होरी वास्तव में उसे धक्का देकर बाहर निकालना चाहता है, तो "सहसा धनिया ने होरी के गले में हाथ डालकर कहा—देखो तुम्हें मेरी सौंह उस पर हाथ न उठाना। वह तो आप ही रो रही है। कालिख जो लगनी थी वह तो अब लग चुकी। मुआ इतनी रात गये इन अँधेरे सन्नाटे में जायगी कहाँ? पाँव भारी है! आखिर उसी के पुत्र का अंश तो वह लिये हुए है!

'होरी की आँखें आर्द्र हो गई।' धनिया का यह मातृ-स्नेह उस अँधेरे में भी दीपक के समान उसकी चिन्ता-जर्जर आकृति को शोभा प्रदान करने लगा। दोनों ही के हृदय में अपना अतीत-जीवन उदय हो उठा।...इस आलिंगन में कितना अथाह वात्सल्य था जो सारे कलङ्क, सारी बाधाओं और सारी मूलबद्ध परम्पराओं को अपने अन्दर समेटे लेता था।

बिरादरी की रत्ती भर परवा न करके धनिया पोते के जन्म पर अकेली मङ्गल गाती है। जब गोबर शाम गाँव पर लौटता है तब तो धनिया के उत्साह का कोई ठिकाना ही नहीं रहता। गोबर आया। "धनिया ने उसे आशीर्वाद दिया और उसका सिर अपनी छाती से लगाकर मानो अपने मातृत्व का पुरस्कार पा गई।... धनिया के मन में कभी अमङ्गल की शङ्का न हुई थी। उसका मन कहता था गोबर

फुलता सी है और प्रसन्न है। आज उसे आँखों देखकर मानो उसके जीवन के मूल प्रकाश में घुस हुआ रत्न मिल गया। धुनिया, गोबिन्दी और मालती के वात्सल्यपूर्ण हृदय की सुन्दर झाँकी भी कई स्थानों पर मिलती है। रायसाहब का मुग्ध वात्सल्य भी कम आकर्षक नहीं है। खन्ना का बर्ताव उन्हें रुला डालता है। मातादीन अपने मरणासन्न पुत्र को देखने चोरी-चोरी आता है। उसका वात्सल्य-स्नेह भी कम उदात्त नहीं है। इस प्रकार वात्सल्य के भी अनेक मार्मिक चित्र 'गोदान' में मिलते हैं। होरी का भ्रातृ-प्रेम, निराश्रिता सिलिया को स्थान देने में धनिया-होरी का उदात्त मानव प्रेम आदि भी भाव शिल्पी प्रेमचन्द की तूलिका के अमिट भाव-चित्र हैं।

प्रकृति-प्रेम के भी दो-एक सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। मेहता प्रकृति के सच्चे पुजारी हैं। सुन्दर प्राकृतिक वातावरण में वह चहकने लगते हैं। बेजारी गाँव में 'नदी के किनारे चाँदी का फर्श बिछा हुआ था और नदी रत्न-जटित आभूषण पहने मीठे स्वरों में गाती चाँद को और तारों को और सिर झुकाये नीद में सोते वृक्षों को अपना नृत्य दिखा रही थी। मेहता प्रकृति की उस मादक शोभा से जैसे मस्त हो गए। जैसे उनका बालपन अपनी सारी क्रीड़ाओं के साथ लौट आया हो। बालू पर कई कुलाटें मारीं। फिर दौड़े हुए नदी में जाकर घुटने तक पानी में खड़े हो गए। अपने गाँव में मेहता ने तरह-तरह के फूल और पेड़-पौधे लगा रखे थे। वह बच्चों प्रकृति-दर्शन में खो जाते हैं। वह स्पष्ट कहते हैं— 'प्रकृति से स्पर्श होते ही मुझे मे एक-एक पक्षी एक-एक पशु जैसे मुझे आनन्द का निमन्त्रण देता हुआ जान पड़ता है यह आनन्द मुझे और कहीं नहीं मिलता मालती, संगीत के कमाने बाजे स्वरों में भी नहीं, दर्शन की ऊँची उड़ानों में भी नहीं।

बसन्त की सिंगारी छटा जीवन की नीरसता में पिघले हुए शक्ति किसान होरी के हृदय में भी मस्ती का सञ्चार कर देती है। 'रसिक बसन्त सुगन्ध प्रमोद और जीवन की विभूति लुटा रहा था—दोनों हाथों से दिल खोल कर। कोयल आम की डालियों में छिपी अपनी रसीली मधुर, आत्मस्पर्शी कूक से आशाओं को जगाती फिरती थी। महुए की डालियों पर मैनों की बरात-सी लगी बैठी थी। नीम सिरस और करौंदे अपनी महक में नशा-सा घोले देते थे। होरी आमों के बाग में पहुँचा तो वृक्षों के नीचे तारों-से बिछे थे। उसका व्यथित निराश मन भी इस व्यापक शोभा और स्फूर्ति में आकर गाने लगा—

हिया जरत रहत दिन रैन।
आम की डरिया कोयल बोले तनिक न आवत चैन॥

और दुलारी सहुआइन का गुलाबी साड़ी में जाते देखकर उसका मस्त हृदय और मचल उठा!

'गोदान' में कर्मोत्साह और साहस के भी कुछ प्र... का कर्मोत्साह दो-चार स्थानों पर उसके कर्मवीर रूप को ... को भुला देने में डाँड भरने के बाद उत्साहपूर्वक मजूरी कर... भी भूल मारकर कर्म-क्षेत्र में खड़ा हो जाने में उसका कर्मोत्साह ... धनिया ने जिस साहस से झुनिया को अपनाया जिस निडरता और उदारता से सिलिया चमारिन को आश्रय दिया वह तो उनके सच्चे वीर रूप को ही प्रकट करता है। दारोगा के प्रसंग में धनिया का साहस उसे भवानी का अवतार ही बना देता है।

इस प्रकार 'गोदान' में मानवीय भाव-संवेदनाओं को अत्यन्त उदात्त रूप में प्रस्तुत किया गया है। मानव-जीवन की भिन्न भिन्न वृत्तियों का इतना विस्तृत प्रसार ही 'गोदान' को साहित्य की श्रेष्ठ रचना सिद्ध करता है। इस रस-भाव तत्त्व के बिना 'गोदान' का मूल्यांकन—उसकी शक्ति की विवेचना असम्भव ही है।

३ विचार तत्त्व उद्देश्य-सन्देश, समस्यायें

प्रेमचन्द के उपन्यासों का सामाजिक उद्देश्य बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। हमारे समाज की विकृतियों को दर्शाकर उन्होंने राष्ट्र के नव निर्माण का सन्देश दिया है। सभी उपन्यासों में सामाजिक उद्देश्य स्पष्ट है। प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं-द्वारा एक नई सांस्कृतिक चेतना को जगाया। नव-भारत के निर्माण में उनका महत्त्व किसी भी राजनैतिक या सामाजिक नेता से कम नहीं है। उनके प्रायः सब उपन्यासों का उद्देश्य परम्परागत सामाजिक राजनैतिक धार्मिक आर्थिक परम्पराओं और पद्धतियों के विकारों को दर्शाकर पाठक के मन मे उन सब बुराइयों को दूर करने और मानवता के स्वस्थ निर्माण की प्रेरणा जगाना है। उन्होंने पाठक की सेवा त्याग न्याय-कर्त्तव्य-पालन सत्य अहिंसा आदि उच्च मानवीय प्रवृत्तियों को जगाया है। उनके उपन्यासों से हम न्याय और सत्य की रक्षा में अन्याय और असत्य से जूझने की शक्ति पाते है। जीवन में जहाँ भी जिस रूप में उन्होंने अन्याय बुराई या अनीति को देखा वहीं उसका विरोध किया है। दुखी मानवता का इतना क्रन्दन असहाय और शोषित की ऐसी मार्मिक विवशता और कहाँ मिल सकती है?

'गोदान' में प्रेमचन्द का सामाजिक उद्देश्य उनके सभी उपन्यासों से बढ़ा चढ़ा है। यह रचना भारत की ८० प्रतिशत कृषक जनता की मूक वाणी का चीत्कार है। निर्धन दरिद्र भारत की झाँकी इससे बढ़िया अन्यत्र कहाँ मिल सकती है? कृषक-जीवन की समस्याओं का इतना व्यापक चित्रण शायद ही किसी अन्य रचना में मिले। प्रेमचन्द ने इसमें अर्थ या पैसे को सारी बुराइयों का मूल माना है। पैसे का सर्वथा अभाव भी मानव-जीवन को अभिशाप बना देता है। कृषक-जीवन की यही ट्रेजेडी है। वे दाने दाने को तरसते रहते हैं। कौड़ी-कौड़ी को महाजन के आगे

कुछ पसारते हैं। उनकी अशिक्षा दरिद्रता, अन्धविश्वास आदि सभी बुराइयाँ पैसे के अभाव से है। पैसा हो तो वे भी अपना जीवन सुखी बना सकते हैं। इस अभावात्मक बुराई के विपरीत प्रेमचन्द ने अर्थ के अनर्थ का भावात्मक रूप भी प्रकट किया है। जिसके पास बहुत धन है या जो पैसे को ही सबसे बड़ा देवता मानकर टकाधर्म संस्कृति को अपनाये हुए हैं, सामाजिक विकृतियों का सबसे बड़ा दायित्व उनके ऊपर ही आता है। प्रेमचन्द स्पष्ट कहते हैं कि समाज की सभी बुराइयों का कारण यह टकाधर्म संस्कृति है। जहाँ सब प्रकार की प्रतिष्ठा मान-अपमान न्याय-अन्याय सब कुछ पैसे पर ही टिका हुआ हो वहाँ उच्च मानव-मूल्यों को महत्त्व कहाँ मिल सकता है? जिनके पास फालतू धन होता है वह नये विलास जुआ आदि व्यसनों में निकलता है और जो धन के संचय की फिराक में ही रहते हैं उनको जीवन में पारिवारिक शान्ति नहीं मिलती। कभा की मिल जल जाने के बाद गोविन्दी कहती है—तो तुम इतना दिन क्षोभ क्यों करते हो? धन के लिए—जो सारे पाप की जड़ है? उस धन से हमें क्या सुख था? सवेरे से आधी रात तक एक-न-एक झंझट—आत्मा का सर्वनाश! लड़के तुमसे बात करने को तरस जाते थे तुम्हें सम्बन्धियों को पत्र लिखने तक की फुरसत न मिलती थी। क्या बड़ी इज्जत थी? हाँ थी! क्योंकि दुनिया आजकल धन की पूजा करती चली आयी है। उसे तुमसे कोई प्रयोजन नहीं। वह कहती है कि धन खोकर यदि हम अपनी मनुष्यता को पा लें तो यह महँगा सौदा नहीं। मेहता भी एक स्थान पर कहते हैं "जब धन जरूरत से ज्यादा हो जाता है तो अपने लिए निकास का मार्ग खोजता है। यों न निकल पायगा तो जुए में जायगा घु दौड़ में जायगा ईंट-पत्थर में जायगा या ऐयाशी में जायगा। दौलत और दौलत वालों से प्रेमचन्द कभी समझौता नहीं कर सके। उन्होंने एक पत्र में लिखा था "जो व्यक्ति धन-सम्पदा में विभोर और मग्न हो उसके महान् पुरुष होने की कल्पना मैं नहीं कर सकता। जैसे ही मैं किसी आदमी को धनी पाता हूँ, वैसे ही मुझ पर उसकी कला और बुद्धिमत्ता की बातों का प्रभाव काफूर हो जाता है। मुझे जान पड़ता है कि इस शख्स ने मौजूदा सामाजिक व्यवस्था को—उस सामाजिक व्यवस्था को जो अमीरों-द्वारा गरीबों के दोहन पर अवलम्बित है—स्वीकार कर लिया है।

तो प्रेमचन्द ने इस पैसे की दुनिया की निन्दा की है, जिसमें यह समझा जाता है— "जिसके पास पैसा है वही बड़ा आदमी है वही भला आदमी है। पैसे न हों तो उस पर सभी रौब जमाते हैं। पैसे के पर्दे में सब कुकर्म छिप जाते हैं। गरीब का सरल कार्य भी अपराध बन जाता है पैसे वालों को कोई कुछ नहीं कहता। न्याय-धर्म सब पैसे पर आधारित है। इस अर्थ-स्वार्थ-प्रधान पद्धति को

प्रेमचन्द ने स्थान-स्थान पर दोषी ठहराया है । यह यदि सामन्तवाद या जमींदारी प्रथा के रूप में है तो भी बुरी है पूँजीवाद या महाजनी-पद्धति के रूप में है तो भी बुरी है अथवा यदि ब्रिटिश नौकरशाही की लूट-खसूट रिश्वतखोरी आदि के रूप में है तो भी घिनौनी और विकृत है । इस पद्धति का बड़ा अच्छा चित्रण प्रेमचन्द ने किया है । सच तो यह है कि 'गोदान' में समाज की किसी एक समस्या पर प्रकाश डालना प्रेमचन्द का उद्देश्य नहीं है । इसमें सन्देह नहीं कि इसमें प्रमुख समस्या किसान की गरीबी और दरिद्रता है परन्तु प्रेमचन्द उसका भी हल समूचे सामाजिक आर्थिक राजनैतिक परिवर्तन में मानते हैं । मिर्जा खुर्शेद जब वेश्याओं के हित के लिए एक नाटक-मण्डली बना कर उनकी रोजी का जरिया बदलना चाहते हैं और इस प्रकार वेश्या-समस्या के हल की बात सोचते हैं तो डा॰ मेहता कहते हैं— "जब तक समाज की व्यवस्था ऊपर से नीचे तक बदल न डाली जाय इस तरह की इसी से कोई फायदा न होगा ।"...जब तक दुनिया में दौलत वाले रहेंगे वेश्याएँ रहेंगी ।" जड़ पर जब तक कुल्हाड़े न चलेंगे पत्तियाँ तोड़ने से कोई नतीजा नहीं । निश्चय ही प्रेमचन्द सारी पद्धति में आमूल-चूल परिवर्तन चाहते हैं । वे किसी क्षेत्र में अलग-अलग प्रयत्न के विरोधी तो नहीं हैं क्योंकि मेहता की सम्पूर्ण व्यवस्था में परिवर्तन की बात को मानते हुए भी उन्होंने खुर्शेद के माध्यम से कहा है— "समाज की व्यवस्था क्या आसानी से बदल जायगी ? वह तो सदियों का मुआमला है । तब तक क्या यह अनर्थ होने दिया जाय ?" किन्तु पद्धति में इतना व्यापक विकार उत्पन्न हो चुका है, कि जब तक इस समूचे का कायाकल्प न किया जाये बात नहीं बनेगी । जिधर देखो उधर धाँधली मची हुई है । रायसाहब कहता है कि मुझे अफसरों को डालियाँ देनी पड़ती हैं परम्परा का पालन करने के लिए तरह-तरह का आडम्बर रचना पड़ता है । वह सम्पादक ओंकारनाथ से स्पष्ट कहता है—"सात पुश्तों से जिस वातावरण में पला हूँ, उससे अब निकल नहीं सकता ।"— आपके पास जमीन नहीं जायदाद नहीं मर्यादा का झमेला नहीं आप निर्भीक हो सकते हैं, लेकिन आप भी दुम दबाये बैठे रहते हैं । आपको कुछ खबर है अदालतों में कितनी रिश्वतें चल रही हैं कितने गरीबों का खून हो रहा है कितनी देवियाँ भ्रष्ट हो रही हैं ! है बूता लिखने का ? सामग्री मैं देता हूँ प्रमाण-सहित । और वास्तव में ही ओंकारनाथ के पास बल-बूता नहीं क्योंकि वह भी इस अर्थ-पद्धति का शिकार हो जाता है । रायसाहब से ही सौ ग्राहकों का चन्दा पाकर वह अपना मुँह और आँखें दोनों बन्द कर लेता है । रायसाहब भी खरी सुना देता है—आखिर मैं आपके पत्र का पँचगुना चन्दा क्यों देता हूँ...इसलिए कि आपका मुँह बन्द रहे ।

जब आप घाटे का रोना रोते हैं— हर मौके पर आपको कुछ-न-कुछ नज़र कर देता हूँ। साल में पचास बार आपकी दावत करता हूँ। किसलिए? अपने सभी भाइयों की तरह मैं भी असामियों से जुर्माना लेता हूँ और साल में दस-पाँच हज़ार रुपये मेरे हाथ लग जाते हैं और अगर आप मुँह से यह कौर छीनना चाहेंगे तो आप घाटे में रहेंगे । इससे क्या फायदा कि आप न्याय और कर्तव्य का ढोंग रचकर मुझे भी बेरबार करें खुद भी परबार हों?

इस प्रकार समाज की सारी व्यवस्था—विशेषकर अर्थ-व्यवस्था दूषित है। इसीसे अनेक समस्याएँ समाज के सम्मुख मुँह बाये खड़ी हैं। इस दूषित आर्थिक व्यवस्था के कारण समाज में वर्ग-विषमता उत्पन्न हुई है। बेचारे किसान का जीवन अभिशाप बना हुआ है। समाज में इसीसे ऊँच-नीच बड़े-छोटे का वर्ग-भेद पैदा हो गया है। पैसे के अभाव ने गरीब को तो पतित बना दिया है, पैसे की अतिशयता ने भी अमीर को मनुष्य नहीं रहने दिया। 'मिर्जा खुर्शेद जब सभापति थे हजारों मजूरों का शोषण करते थे यूरोपियन छोकरियों के साथ विहार करते थे बड़े-बड़े अफसरों के साथ दावतें उड़ाते थे हजारों रुपये महीने की शराब पी जाते थे। वेश्या-समस्या भी इसी दूषित अर्थ-व्यवस्था का परिणाम है। वैवाहिक पद्धति में दोष भी इसीलिए आये हैं कि हमने उसे अर्थ पर आधारित किया हुआ है। पैसे के लोभ से माँ-बाप अपने बेटा-बेटी से अन्याय करते हैं दहेज प्रथा भी पैसे का लोभ ही है, बेमेल विवाह भी पैसे के दम पर ही होते हैं। धन हो तो छूत का भूत भी भाग सकता है। ये अन्धविश्वास भाग्यवाद छुआछूत अमल में अशिक्षा का परिणाम है। गरीब को यदि उचित शिक्षा की सुविधाएँ प्राप्त हों तो परम्परागत धार्मिक और सामाजिक ढोंग भी समाप्त हो सकते हैं। बिरादरी का भूत भी पैसे के अभाव में ही चिमटता है। इस प्रकार 'गोदान' की मुख्य समस्या आर्थिक विषमता और अर्थ-प्रधान संस्कृति अर्थात् महाजनी सभ्यता के दुष्परिणामों की समस्या है। गरीब पैसे के अभाव में पिस रहा है और पैसे वाले पैसे के बल पर उसे पीस रहे हैं उसे पीस ही नहीं रहे पैसे से उन्होंने समाज में अनेक प्रकार की अनीतियाँ और अन्याय उत्पन्न किये हुए हैं। झिंगुरीसिंह दातादीन से कहता है— कानून और न्याय उसका है जिसके पास पैसा है। कानून तो है कि महाजन किसी असामी के साथ कड़ाई न करे, कोई जमींदार किसी काश्तकार के साथ सख्ती न करे, मगर होता क्या है? रोज ही देखते हो। जमींदार मुश्क बँधवा कर पिटवाता है और महाजन लात और जूते से बात करता है। जो किसान पोढ़ा है, उससे न जमींदार बोलता है न महाजन। ऐसे आदमियों से हम लोग मिल जाते हैं और उनकी मदद से दूसरे आदमियों की गर्दन दबाते हैं। तुम्हारे ही ऊपर रायसाहब के पाँच सौ रुपये निकलते हैं, लेकिन

निरोगा में है इतनी हिम्मत कि तुम से कुछ बोलें ?...... कचहरी-अदालत उसी के साथ है, जिसके साथ पैसा है हम लोगों को घबराने की कोई बात नहीं।'

समाज की इस प्रमुख समस्या के ही माध्यम 'गोदान' में भिन्न-भिन्न समस्याएँ प्रकट हुई हैं। समाज में शोषण की समस्या, है जमींदारी शोषण असम है महाजनी असम। पूंजीवादी मिल-मालिक और मजदूर की समस्या है अर्थ-लोलुप पुलिस-कर्मचारी और रिश्वतखोर ब्रिटिश नौकरशाही की समस्या है। परम्परागत ब्राह्मणी-धर्म भी महाजनी-सभ्यता का रूप लिए हुए है क्योंकि ब्राह्मण भी महाजन बना हुआ है और उसका धर्म भी शोषक है। छुआछूत और जाति भेद का ढोंग भाग्यवाद और धर्म का भय सब गरीब को लूटने के लिए ही हैं। पारिवारिक जीवन में अशान्ति भी पैसे के अभाव और पैसे के आधिक्य से उत्पन्न होती है। गरीब घरों में सास-बहू देवरानी जेठानी पिता-पुत्रों में जो झगड़े और असन्तोष होते हैं उनके मूल में उनकी निपट दरिद्रता ही तो है। पैसा हो तो ये झगड़े काहे को हों। उधर बड़ा-बड़े धनपतियों का पारिवारिक जीवन इसलिए अशान्त रहता है कि पैसे के आधिक्य से उन्हें विलास सूझता है। धन अधिक कमाने के फिराक में उन्हें परिवार की सुख शान्ति का कोई ध्यान नहीं रहता। अर्थ-प्रधान पद्धति ने ही वैवाहिक प्रथा को दूषित किया हुआ है। वेश्या-समस्या भी इसी की उपज है।

प्रेमचन्द ने 'गोदान' में नारी-समस्या का अत्यन्त विस्तृत रूप अपनाया है जो आर्थिक पहलू के बाहर भी अपना स्वरूप रखती है। आधुनिक नारी-स्वच्छन्दता भी समाज की एक प्रमुख समस्या के रूप में उस समय प्रकट हो रही थी। पुरुष के अत्याचारों से पीड़ित नारी ने अपने समानता के अधिकारों के लिए आवाज बुलन्द की है यह तो ठीक ! पर स्वच्छन्दता के नाम पर जब हमारी नव-शिक्षिता नारियाँ तितली बनी हुई हास-विलास को ही अपने जीवन का लक्ष्य मान बैठती हैं तो यह स्थिति समस्या उत्पन्न करने वाली बन जाती है। मालती का आरम्भिक रूप नारी की स्वच्छन्दता का ऐसा ही रूप है। बाद का सेवा त्याग कर्तव्य-पालन वाला उदार उदात्त स्वतन्त्र रूप प्रेमचन्द को काम्य है। नारी को पुरुष के समान अधिकार मिलने चाहिएँ और पुरुष-द्वारा युग-युग से प्रताड़ित नारी की मुक्ति आवश्यक है। किन्तु पाश्चात्य प्रभाव से उसका समाज में हाव-भाव प्रदर्शन फैशन की पुतली बन कर स्वच्छन्द विहार करना समाज के नैतिक पतन का ही द्योतक होगा यह प्रेमचन्द ने स्पष्ट किया है। समाज-सेवा का व्रत अपनाकर चलने वाली मालती अपने मातृत्व और गार्हस्थ्य धर्म का पालन करने वाली गोविन्दी ही हमारी आदर्श नारियाँ कहला सकती हैं।

समाज की इन सभी समस्याओं के मूल में वैयक्तिक या सामूहिक स्वार्थ और

जब आप घाटे का रोना रोते हैं— हर मौके पर आपकी कुछ-न-कुछ मदद कर देता हूं।— साल में पचास बार आपकी दावत करता हूं। किसलिए ?— अपने सभी भाइयों की तरह मैं भी असामियों से जुर्माना लेता हूं और साल में दस-पाँच हजार रुपये मेरे हाथ लग जाते हैं और अगर आप मुंह से यह कौर छीनना चाहेंगे तो आप घाटे में रहेंगे । इससे क्या फायदा कि आप न्याय और कर्तव्य का ढोंग रचकर मुझ भी बरबाद करें, खुद भी बरबाद हों ?

इस प्रकार समाज की सारी व्यवस्था—विशेषकर अर्थ-व्यवस्था दूषित है। इसीसे अनेक समस्याएं समाज के सम्मुख मुंह बाये खड़ी हैं। इस दूषित आर्थिक व्यवस्था के कारण समाज में अर्थ-विषमता उत्पन्न हुई है। बेचारे किसान का जीवन अभिशाप बना हुआ है। समाज में इसीसे ऊँच-नीच बड़े-छोटे का वर्ग-भेद पैदा हो गया है। पैसे के अभाव ने गरीब को तो पतित बना दिया है पैसे की अतिसम्पन्नता ने भी अमीर को मनुष्य नहीं रहने दिया। 'मिर्जा खुर्शेद जब लखपति थे हजारों मजूरों का शोषण करते थे यूरोपियन छोकरियों के साथ विहार करते थे बड़े-बड़े अफसरों के साथ दावतें उड़ाते थे हजारों रुपये महीने की शराब पी जाते थे। वेश्या-समस्या भी इसी दूषित अर्थ-व्यवस्था का परिणाम है। वैवाहिक पद्धति में दोष भी इसीलिए आये हैं कि हमने उसे अर्थ पर आधारित किया हुआ है। पसे के लोभ से माँ-बाप अपने बेटा-बेटी से अन्याय करते हैं, दहेज प्रथा भी पैसे का लोभ ही है बेमेल विवाह भी पैसे के दम पर ही होते हैं। धन हो तो छूत का भूत भी भाग सकता है। ये अन्धविश्वास भाग्यवाद छुआछूत असम में अशिक्षा का परिणाम है। गरीब को यदि उचित शिक्षा की सुविधाएं प्राप्त हों तो परम्परागत धार्मिक और सामाजिक ढोंग भी समाप्त हो सकते हैं। बिरादरी का भूत भी पैसे के अभाव में ही चिमटता है। इस प्रकार 'गोदान' की मुख्य समस्या आर्थिक विषमता और अर्थ प्रधान संस्कृति अर्थात् महाजनी सभ्यता के दुष्परिणामों की समस्या है। गरीब पसे के अभाव में पिस रहा है और पसे वाले पैसे के बल पर उसे पीस रहे हैं उसे पीस ही नहीं रहे पैसे से उन्होंने समाज म अनेक प्रकार की अनीतियाँ और अन्याय उत्पन्न किये हुए हैं। झिंगुरीसिंह दातादीन से कहता है— 'कानून और न्याय उसका है, जिसके पास पैसा है। कानून तो है कि महाजन किसी असामी के साथ कड़ाई न करे, कोई जमींदार किसी काश्तकार के साथ सख्ती न करे, मगर होता क्या है ? रोज ही देखते हो। जमींदार मुसक बँधवा कर पिटवाता है और महाजन लात और जूते से बात करता है। जो किसान पोढ़ा है, उससे न जमींदार बोलता है न महाजन। ऐसे आदमियों से हम लोग मिल जाते हैं और उनकी मदद से दूसरे आदमियों की गर्दन दबाते हैं। तुम्हारे ही ऊपर रायसाहब के पाँच सौ रुपये निकलते हैं लेकिन

जोखिम में है इतनी हिम्मत कि तुम से कुछ बोलें ?... 'कचहरी-अदालत उसी के साथ है जिसके पास पैसा है हम लोगों को घबराने की कोई बात नहीं।'

समाज की इस प्रमुख समस्या के ही कारण 'गोदान' में भिन्न-भिन्न समस्याएँ प्रकट हुई हैं। समाज में शोषण की समस्या है, जमींदारी शोषण अलग है, महाजनी अलग। पूँजीवादी मिल-मालिक और मजदूर की समस्या है, जन-शोषक पुलिस-कर्मचारी और रिश्वतखोर ब्रिटिश नौकरशाही की समस्या है। परम्परागत ब्राह्मणी-सभ्यता भी महाजनी-सभ्यता का रूप लिए हुए है क्योंकि ब्राह्मण भी महाजन बना हुआ है और उसका धर्म भी शोषक है। छुआछूत और जाति-भेद का ढोंग भाग्यवाद और धर्म का भय सब गरीब को लूटने के लिए ही है। पारिवारिक जीवन में अशान्ति भी पैसे के अभाव और पैसे के आधिक्य से उत्पन्न होती है। गरीब घरों में सास-बहू देवरानी-जेठानी पिता-पुत्रों में जो झगड़े और मनमोटाव होते हैं उनके मूल में यही विपद् दरिद्रता ही तो है। पैसा हो तो ये झगड़े काहे को हों। उधर खन्ना-जैसे धनपतियों का पारिवारिक जीवन इसलिए अशान्त रहता है कि पैसे के आधिक्य से उन्हें विलास सूझता है। धन अधिक कमाने के फिराक में उन्हें परिवार की सुख शान्ति का कोई ध्यान नहीं रहता। अर्थ प्रधान पद्धति ने ही वैवाहिक प्रथा को दूषित किया हुआ है। वेश्या-समस्या भी इसी की उपज है।

प्रेमचन्द ने 'गोदान' में नारी-समस्या का अत्यन्त विस्तृत रूप अपनाया है जो आर्थिक पहलू के बाहर भी अपना स्वरूप रखती है। आधुनिक नारी-स्वच्छन्दता भी समाज की एक प्रमुख समस्या के रूप में उस समय प्रकट हो रही थी। पुरुष के अत्याचारों से पीड़ित नारी ने अपने समानता के अधिकारों के लिए आवाज बुलन्द की है यह तो ठीक ! पर स्वच्छन्दता के नाम पर जब हमारी नव-शिक्षिता नारियाँ छिछली बनी हुई हास-विलास को ही अपने जीवन का ध्येय मान बैठती हैं तो यह स्थिति समस्या उत्पन्न करने वाली बन जाती है। मालती का आरम्भिक रूप नारी की स्वच्छन्दता का ऐसा ही रूप है। बाद का सेवा त्याग कर्त्तव्य-पालन वाला उदार उदात्त मातृत्व रूप प्रेमचन्द को काम्य है। नारी को पुरुष के समान अधिकार मिलने चाहिएँ और पुरुष-द्वारा युग-युग से प्रताड़ित नारी की मुक्ति आवश्यक है। किन्तु पाश्चात्य प्रभाव से उसका समाज में हाव भाव प्रदर्शन फैशन की पुतली बन कर स्वच्छन्द विहार करना समाज के नैतिक पतन का ही द्योतक होगा यह प्रेमचन्द ने स्पष्ट किया है। समाज-सेवा का व्रत अपनाकर चलने वाली मालती अपने मातृत्व और गार्हस्थ्य-धर्म का पालन करने वाली गोविन्दी ही हमारी आदर्श नारियाँ कहला सकती हैं।

आत्मसेवा की प्रवृत्ति है। अतः जहाँ एक ओर प्रेमचन्द का उद्देश्य इन सभी सा जिक बुराइयों का विरोध करने की प्रेरणा देना है अन्याय अत्याचार, स्वार्थ आ सभी बुराइयों से जूझना और उनके विनाश-द्वारा समूची सामाजिक-व्यवस्था आमूल-चूल परिवर्तन लाने का सन्देश देना है वहाँ दूसरी ओर मानव की सत्य से त्याग नि स्वार्थ-भावना अहिंसा परोपकार आदि की उच्च मानवीय प्रवृत्तियों जगाना भी उनका उद्देश्य है। मालती के चरित्र-परिवर्तन तथा मेहता के वी दर्शन के रूप में प्रेमचन्द ने मानवीय उच्च प्रवृत्तियों का सन्देश दिया है। निश्चय उनका उद्देश्य महान् है। 'गोदान' युग-युग के चिरन्तन मानवीय सत्यों की स्था करने वाली महान् रचना है। उसका उद्देश्य सामयिक नहीं कहा जा सकता। ही अब या आगे कृषक-जीवन की वे समस्याएँ न रहें जो 'गोदान' में चित्रित हैं पर मानवीय संवेदनाओं के जिस रूप में वे प्रकट हुई हैं वह कभी सामयिक न रह सकता वह शाश्वत है चिरन्तन है। प्रेमचन्द ने अपने युग की ही नहीं आगे के की आहट भी सुनी है।

प्रेमचन्द के गोदान तथा अन्य उपन्यासों में कृषक-समस्याएँ

प्रेमचन्द आरम्भ से ही कृषकों की दयनीय दशा के बारे में सजग रहे हैं उनके प्रायः सब उपन्यासों मे कृषक-वर्ग की दयनीयता का चित्रण हुआ है। सच यह है कि उन्होंने कृषक-जीवन की समस्याओं का क्रमिक अध्ययन अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। 'गोदान' इस अध्ययन की चरम परिणति है। आरम्भिक 'व दान' में केवल विरजन के पत्रों-द्वारा कृषक या ग्राम-जीवन की दयनीय दशा उल्लेख किया गया था। 'सेवासदन' में आकर प्रेमचन्द ने चित्र में करुणा भर दी यद्यपि 'सेवासदन' में वेश्या-समस्या प्रमुख दिखाई देती है और उसके आकर्षण पाठक को अन्य समस्याओं का ध्यान नहीं रहता। किन्तु ध्यान से देखा जाय तो इ रचना में भी कृषक की दयनीय दशा का करुण चित्र स्पष्ट दिखाई देगा। आरम्भ ही धार्मिक दुरभिसंधि और जमींदार महन्त रामदास जिस निर्दयता से चेतू किसान मरवा डालता है गरीब किसानों से जबरदस्ती बेगार और लगान वसूल करता बाँकेबिहारी और अपनी शक्ति के बल पर जबरदस्ती चन्दा लेता है और हीन हुज्जत करने वाले चेतू को यम का टिकट दिला देता है पुलिस को भी अपनी पी पर कर लेता है आदि यह सब चित्रण किसान की दयनीय परिस्थिति का ही द्योतक है।

निश्चय ही प्रेमचन्द 'सेवासदन' मे किसान की दयनीय स्थिति से मर्माहत हैं। वे यद्यपि यहाँ इसके कारणों भिन्न-भिन्न पहलुओं की अधिक छानबीन नहीं करते परन्तु उनके मन में कृषक-वर्ग की इस स्थिति को बदलने की प्रबल आकांक्षा है। तभी तो

उपन्यास को समाप्त करने से पूर्व सदन के परिवर्तित हृदय की दशा का यों वर्णन ते हैं— 'जहाँ पहले सुमन का कोठा था वहाँ सङ्गीत पाठशाला कायम हो गई है। हाँ के राष्ट्रीय गीत को सुनकर सदन के हृदय में देशोपकार, जाति-सेवा और ष्ट्रीय गौरव की पवित्र भावनाएँ गूँजने लगीं। उसने कल्पना में अपने को न कृषकों की सेवा करते हुए देखा। वह जमींदार के कारिन्दे से विनय कर रहा । कि इन दीन जनों पर दया करो। कृषकगण उसके पैरों पर गिरे पड़ते थे उनकी लनाएँ उसे आशीर्वाद दे रही थीं। (सेवासदन दिसम्बर १९६० पृष्ठ २९०)

कृषक-समस्या को विशेष विस्तार से चित्रित किये बिना ही भिन्न-भिन्न पात्रों के ये वक्तव्य और विचार प्रस्तुत करना इसी बात का परिचायक है कि प्रेमचन्द के मन में कृषक-वर्ग की समस्या एक प्रमुख समस्या के रूप में यहाँ भी विद्यमान है चाहे उन्होंने यहाँ उसका चित्रण न किया हो। कुँवर अनिरुद्धसिंह के बारे में कहा गया है कि 'कुँवर अनिरुद्धसिंह एक 'कृषि सहायक सभा' खोलने वाले हैं। सभा का उद्देश्य होगा किसानों को जमींदारों के अत्याचार से बचाना। (पृ २२७) सुधारक विट्ठलदास भी अन्त में इस ओर उन्मुख होते हैं— 'आजकल वह (विट्ठलदास) कृषकों की सहायता के लिए एक कोष स्थापित करने का उद्योग कर रहे हैं, जिससे किसानों को बीज और रुपये नाम-मात्र सूद पर उधार दिये जा सकें। इस सत्कार्य में सदन बाबू विट्ठलदास का दाहिना हाथ बना हुआ है। (पृ० २३७)

'सेवासदन' के सन् १९१६-१७ के ये शब्द क्या प्रेमचन्द की भावी रचना 'प्रेमाश्रम' के निर्माण की स्पष्ट सूचना नहीं देते। यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि 'सेवासदन' में वेश्या-समस्या को प्रमुखता देने के बाद अब अन्त में प्रेमचन्द कृषक-समस्या को प्रधान मानने लगे हैं। वह किसानों की दयनीय दशा से बहुत खिन्न हैं। वह उनकी भलाई चाहते हैं। सम्भवतः प्रेमशङ्कर की कल्पना उनके मन में इसी समय हो गई होगी। इससे यह भी सिद्ध होता है कि 'प्रेमाश्रम' में कृषक-संघर्ष की अवतारणा के लिए प्रेमचन्द गांधीजी के ऋणी नहीं हैं। गांधीजी के प्रभाव से बहुत पहले उनके मन में कृषक-वर्ग के उद्धार की बलवती इच्छा विद्यमान हो चुकी थी। इस समय कृषकों के उद्धार के लिए उनके पास दो ही तरीके दिखाई देते हैं—(१) जमींदारों और कारिन्दों से अपील करना कि वे 'इन दीन जनों पर दया करें'। (२) कृषकों की सहायता के लिए सभा-संस्थाएँ खोलना जिससे वे कम सूद पर बीज आदि के लिए रुपये ले सकें और जमींदारों के अत्याचारों से बच जाएँ।

इस कार्य की पूर्ति के लिए प्रेमचन्द 'सेवासदन' में विट्ठलदास कुँवर अनिरुद्धसिंह सदन आदि लोक-सेवक पात्रों की कल्पना करते हैं। वह अभी कृषकों और जमींदारों के संघर्ष के पक्ष में नहीं हैं। जिस सदन के मन में कृषकों की सहायता

का संकल्प उत्पन्न हुआ या नहीं पर थोड़ी देर बाद सुनता है कि कुँवर अनिरुद्धसिंह ने एक 'कृषक सहायक संस्था' बनाई है तो उसका भाव एकदम बदल जाता है। "वह जमींदार था और कृषकों पर दया करना चाहता था पर उसे यह मंजूर न था कि कोई उसे दबावे और भड़का कर जमींदारों के विरुद्ध खड़ा कर दे। उसने मन में कहा यह लोग जमींदारों के स्वत्वों को मिटाना चाहते हैं।" तो हम लोगों को भी सतर्क हो जाना चाहिए, हमको अपनी रक्षा करनी चाहिए। मानव-प्रकृति को दबाव से कितनी घृणा है।

प्रेमचन्द की ये पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं। इनसे प्रेमचन्द की विचारधारा के दो रूप स्पष्ट होते हैं। एक तो यह कि प्रेमचन्द सन् १९१६-१७ से ही यह समझ *रहे हैं कि जमींदार का हृदय-परिवर्तन हो सकता है। उसके मन में कृषकों के प्रति* दया जगाई जा सकती है। और निश्चय ही 'प्रेमाश्रम' में मायाशङ्कर के हृदय-परिवर्तन का यही रहस्य है। दूसरी बात यह कि प्रेमचन्द वर्ग-संघर्ष के पक्ष में नहीं हैं। वह अहिंसात्मक शान्तिपूर्ण तरीकों से इस समस्या को हल करने के पक्ष में हैं। समझौते और हृदय-परिवर्तन की धारणा यहीं जम चुकी है। आगामी रचनाओं में प्रेमशङ्कर ('प्रेमाश्रम' में) अमरकान्त ('कर्मभूमि' में) चक्रधर ('कायाकल्प' में) आदि पात्रों ने प्रेमचन्द के इसी आदर्श का निर्वाह किया है। यह आदर्शवाद प्रेमचन्द ने गांधीजी के प्रभाव से अपनाया हो या टॉलस्टाय से लिया हो अथवा उनकी अपनी चिन्तन-धारा का परिणाम हो इसमें सन्देह नहीं कि वह 'गोदान' से पूर्व की सभी रचनाओं में इसे अपनाये रहे और इसी कारण उनकी गोदान-पूर्व की सभी रचनाओं की अन्तिम परिणति एक ढङ्ग की परिचित-सी हो गई। प्रेमचन्द के उपन्यासों में *वर्ग-विषमता और वर्ग-चेतना खूब होते हुए भी वर्ग संघर्ष का जो प्रायः अभाव है,* वह भी इसी कारण।

'प्रेमाश्रम' में कृषक-जीवन की विपत्तियाँ खुलकर प्रकट हुईं। यद्यपि कृषक आन्दोलन का इसमें भी अभाव है पर उसके संकेत स्पष्ट प्रकट हुए हैं। 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द कृषक और जमींदार की समस्याओं को गहराई से देखते नजर आते हैं। यद्यपि इसका इलाज उन्होंने वही समझौता और हृदय-परिवर्तन ही बताया है। पर उनकी रचना साफ पुकार रही है कि जमींदारी प्रथा का उन्मूलन किये बिना कृषक की समस्याएँ तो सुलझ ही नहीं सकतीं जमींदार भी राहत नहीं पा सकता। जितनी जल्दी यह पद्धति नष्ट हो जाय उतना ही अच्छा है। इसमें एक ओर मनोहर और उसके बेटे बलराज की विद्रोही वाणी सुनाई देती है दूसरी ओर प्रेमशङ्कर जैसे सुधारक जमींदारी का विरोध करते हैं और यहाँ तक कि तीसरी ओर स्वयं *जमींदार अपने वर्ग की आलोचना करते पाये जाते हैं।* इस रचना में चाहे उप

पड़के बोता है। बलराज तो मरने-मारने का ही तैयार हो जाता है और रूस तथा बलगेरिया का उदाहरण देकर काश्तकारों का राज होने की बात करता है। उधर प्रमशंकर भी स्पष्ट शब्दों में कहता है— "भूमि उसकी है जो उसको जोते। शासक का उसकी उपज में भाग लेने का अधिकार इसलिए है कि वह देश में शान्ति और रक्षा की व्यवस्था करता है जिसके बिना खेती ही नहीं हो सकती। किसी तीसरे वर्ग का समाज में कोई स्थान नहीं है।"

ज्वालासिंह—महाशय इन विचारों से तो आप देश में क्रान्ति मचा देंगे। आपके सिद्धान्त के अनुसार हमारे बड़े-बड़े जमींदारों ताल्लुकेदारों और रईसों का समाज में कोई स्थान नहीं है सब के सब डाकू हैं।

"प्रेमशंकर—इसमें इनका कोई दोष नहीं प्रथा का दोष है। इस प्रथा के कारण देश की कितनी आर्थिक और नैतिक अवनति हो रही है इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। हमारे समाज का यह भाग जो बल-बुद्धि-विद्या में सर्वोपरि है, जो हृदय और मस्तिष्क के गुणों से अलंकृत है केवल इसी प्रथा के वश आलस्य विलास और अविचार में जकड़ा हुआ है।

तो प्रेमचन्द ने जमींदारी प्रथा को ही दोषी ठहराया है। यह प्रथा स्वयं जमींदार के लिए भी अनिष्टकारी है। प्रेमचन्द ने इस अपने उपन्यासों में मूर्त्तरूप दिया है। स्वयं रायसाहब कमलानन्द अपनी आलोचना करते हुये कहते हैं— "मैं मानता हूँ कि जमींदार के हाथों किसानों की बड़ी दुर्दशा होती है। मैं स्वयं इस विषय में सर्वथा निर्दोष नहीं हूँ। बेगार लेता हूँ। डाँड़-बाँध भी लेता हूँ। बेदखली या एजाफा का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देता। ... इस रियासत कहना भूल है यह निरी दलाली है। इस भूमि पर मेरा क्या अधिकार है? मैंने इसे बाहुबल से नहीं लिया राजविद्रोह के समय पिताजी ने तन मन से अंग्रेजों की सहायता की।...यही इस रियासत की हकीकत है। हम केवल लगान वसूल करने के लिए रखे गए हैं। इसी दलाली के लिए हम एक-दूसरे के खून से अपने हाथ रंगते हैं। इसी दीन-हत्या को हम रौब कहते हैं। इसी कारिन्दगी पर हम फूले नहीं समाते।... तुम कहोगे यह सब कोरी बकवाद है। रियासत इतनी बुरी चीज है तो उसे छोड़ क्यों नहीं देते। हाँ यही तो रोना है कि इस रियासत ने हमें विलासी आलसी और अपाहिज बना दिया। हम अब किसी काम के नहीं रहे।"

राय कमलानन्द की उपयुक्त स्वीकारोक्ति 'गोदान' के रायसाहब अमरपाल की स्वीकारोक्ति से अद्भुत साम्य रखती है। 'गोदान' में प्रेमचन्दजी ने इस जमींदारी प्रथा का ह्रास दिखाते हुए नव-विकसित पूंजीवाद तथा महाजनी सभ्यता को कृषक-समस्या के लिए जमींदारी प्रथा से भी अधिक उत्तरदायी ठहराया है। 'प्रेमाश्रम' में

भी कृषकों की विपत्ति का दूसरा कारण ब्रिटिश शासन-पद्धति बताई गई है। ब्रिटि
नौकरशाही के काले कारनामे प्रेमचन्द की तीव्र आलोचना का विषय बने हैं। दौ
पर निकलने वाले अफसर और उनके अमले चपरासी अर्दली आदि किस प्रका
हमारे गाँवों पर टिड्डीदल हमला कर देते हैं इसका बहुत ही मार्मिक वर्णन 'प्रेमाश्रम
में किया गया है। ये लोग अपने दौरे से गाँव वालों को लूटते हैं मुफ्त का राश
उड़ाते हैं बेगार लेते हैं। इसके अतिरिक्त पुलिस हाकिम जज आदि भी जमींदार
से रिश्वतें उड़ाकर किसानों के विरुद्ध कार्रवाही करते और डिग्रियाँ देते हैं। या
नहीं इसी शासन-पद्धति ने आपस के प्रेम और सद्भाव को नष्ट कर दिया है। प्रेम
शंकर किसानों की दरिद्रता के लिए इसे दोषी ठहराते हुए कहते हैं—"उनक
दरिद्रता का उत्तरदायित्व उन पर (जमींदारों पर) नहीं बल्कि उन परिस्थिति
पर है, जिनके अधीन उनका जीवन व्यतीत होता है और यह परिस्थितियाँ क्या हैं
आपस की फूट स्वार्थपरता और एक ऐसी संस्था (शोषण) का विकास जो उन
पाँव की बेड़ी बनी हुई है।" यह शासक इन (पारस्परिक प्रेम) सद्भावों क
अपने लिए घातक समझता है और उन्हें पनपने नहीं देता।

इस प्रकार कृषक की विपत्तियों के कारण हैं शोषक जमींदार और विदे
ब्रिटिश शासन। जमींदारी शोषण एक पद्धति बन गया है जिसे बल मिलती है
ब्रिटिश शासन से। जमींदार भी विवश है। उसे अफसरों को डालियाँ देनी पड़ती है
यह दलाली का काम निभाना पड़ता है अपनी शान बनाकर रखनी पड़ती है। इ
दोनों ही संस्थाओं—शोषक और शासन—का अन्त प्रेमचन्द ने चाहा है। पर य
अन्त किसी हिंसात्मक क्रान्ति के रूप में नहीं हृदय-परिवर्तन के रूप में दिखाया गय
है। *जमींदार मायाशंकर अपनी रियासत छोड़ देता है और ज्वालासिंह इर्फानअली*
आदि सरकारी अफसर किसानों पर किए गए अपने अन्याय पर पश्चात्
है। प्रेमचन्द की कल्पना को एक सुन्दर हल मिल गया उन्होंने उसकी आकांक्षा की
प्रेमचन्द अपने इस काल्पनिक आदर्शवादी हल—समझौते व हृदय-परिवर्तन—क
सम्भावना और आकांक्षा लगभग बीस वर्ष तक करते रहे—सन् १९१५ तक प्रतीक्ष
करते रहे देखते रहे। पर सम्भवतः उन्हें मायाशंकर-जैसा एक भी जमींदार वस्तु
जगत में दिखाई नहीं दिया जो अपनी रियासत या जायदाद सहर्ष छोड़ने को तैयार
हो गया हो। या उन्होंने शायद अनुभव कर लिया कि यदि एक-आध ऐसा उदाहरण
मिल भी जाय तो यह समस्या का कोई हल नहीं। *यही कारण है कि 'गोदान' में*
प्रेमचन्द ने इसका सहारा नहीं लिया।

'प्रेमाश्रम' से यही ध्वनित हुआ था कि जमींदारी का उन्मूलन होना चाहिए
शोषक शक्तियाँ बहुत दिन तक नहीं टिक सकती। मानो प्रेमचन्द ललकार कर क

रहे हों—जमींदारो अभी भी समय है बदल जाओ ! मायाशङ्कर बन जाओ प्रेम शङ्कर की बातें सुनो राय कमलानन्द की बातें सुनकर अपने जीवन में ही परिवर्तित हो जाओ इर्फान ज्वालासिंह का मार्ग पकड़ो नहीं तो किसान बदल रहा है। वह अपनी चिरमूकता त्याग देगा। नई पीढ़ी त्याग भी रही है। वह मनोहर और बल राज बन कर अपना अधिकार प्राप्त कर लेगा। रूसी क्रान्ति सा दंगा। तब भी तुम्हारा अस्तित्व न रहेगा। अन्त में सारा हृदय-परिवर्तन और आदर्श-स्वप्न इसी भूमिका में हुआ है। वह वास्तविक नहीं है युग का सत्य भी नहीं है—कोरी कल्पना है आदर्श है। पर प्रेमचन्द की सद्भावना से भरी कल्पना है, एक आशा है—कलाकार की शुभाकांक्षा और गुलाबी आशा—समाज के प्रति जीवन के प्रति आस्थावादी साहित्यकार की आस्था ! प्रेमचन्द ने इसके लिए अपनी कला को ठेस पहुँचाने की परवा भी नहीं की !

'रङ्गभूमि' में पूँजीवाद भी आकर सम्मिलित हो जाता है। औद्योगीकरण के रूप में यह एक ओर हमारे कृषकों को मजदूर बनाने में लगा है शायद भूमि का अधिक भार दूर करने की दृष्टि से यह शुभ लक्षण होता पर दूसरी ओर इससे हमारे ग्रामों की पवित्रता और शान्ति नष्ट होने का भय है, हमारे कृषक-जीवन में हलचली पैदा कर रहा है। देशी रियासतों में स्थिति और भी खराब है। 'काया कल्प' में प्रेमचन्द ने देशी रियासतों के निर्मम शोषण का और भी सजीव चित्र उपस्थित किया है। 'कर्मभूमि' में भी समस्या का वही रूप है। प्रेमचन्द ने इन सब रचनाओं में 'प्रभातम' वाला दृष्टिकोण ही अपनाया है।

'गोदान' में कृषक-जीवन की समस्याओं का अत्यन्त विस्तारपूर्वक चित्रण हुआ है। यह समस्या केवल जमींदारी पद्धति की समस्या नहीं है जैसा कि पहली रचनाओं में प्रकट हुआ था यह तो कोरमकोर आर्थिक समस्या है। आर्थिक विषमता के कारण किसान दरिद्र दीन-हीन असभ्य अपढ़ और शापित बना हुआ है। समाज में एक जमींदारी ही नहीं कई प्रकार की शोषक शक्तियाँ उसके अस्तित्व को मिटने नहीं देतीं अपितु अपने पोषण का साधन बनाकर उसे पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसी दरिद्र अवस्था में रखना चाह रही हैं। जमींदार तो एक हो है, महाजन कई हैं। जमींदार अत्यधिक लगान की वसूली बेगार और नजराना दण्ड आदि से उसका कारिन्दा भी अपनी कारिन्दगी के बतौर बेगार, बेईमानी तथा अन्य प्रकार की लूट खसूट से महाजन अत्यधिक सूद वसूल करके पटवारी अपने नजर-नजराने से पुलिस के दारोगा रिश्वत उड़ाकर, धर्म के ठेकेदार पण्डित धर्म का भय दिखाकर दान-दक्षिणा पछियाई वसूल करके पञ्च और चौधरी डाँड लगाकर, शहर के मिल-मालिक उनकी जमीन कम तोलकर, कम भाव लगाकर—सब उसे लूट रहे हैं। सब शोषक आज भी

कर जगा रहा है कि बदलो इस समाज-व्यवस्था को इस अर्थ-पद्धति और समाज की सभी रूढ़ियों को जड़-मूल से उखाड़ दो सभी मानव-घाती पद्धतियों का अन्त करो। पत्तियां तोड़ने व सींचने से भी कुछ नहीं होगा। मेहता के शब्दों में स्पष्ट कहा गया है कि जड़ को पकड़ो—सारी समाज-व्यवस्था या अर्थ-व्यवस्था को बदलो। निश्चय ही इस रचना में सुधार के पक्षपाती वह नहीं रहे हैं। समझौते और सुधार का पुराना तरीका उन्होंने 'गोदान' में आकर छोड़ दिया है। किसी एक दिशा से सुधार से कुछ न होगा। सब पद्धतियों—जमींदारी, पूंजीवादी, महाजनी, ब्रिटिश नौकरशाही एवं धार्मिक आदि सब—को बदलना होगा, मृत्यु-दण्ड देना होगा। शान्तिपूर्ण तरीकों से सम्भव हो तो शान्ति से बदलो, नहीं तो क्रान्ति से बदलो। बदलना मुख्य बात है।

व्यक्तित्व और जीवन-दर्शन

मेहता का जीवन-दर्शन

'गोदान' में प्रेमचन्द का व्यक्तित्व अत्यन्त स्पष्ट है। जीवन में जो कुछ वह आरम्भ से अन्त तक सोचते-विचारते आये, जिन जीवन-तत्त्वों और सिद्धान्तों को उन्होंने अपनाया, जो उनका जीवन-दर्शन बना, वह सब 'गोदान' में प्रकट हुआ है। 'गोदान' में मेहता प्रेमचन्द का ऐसा आदर्श पात्र है, जो प्रेमचन्द के अपने विचारों का भी प्रतिनिधित्व करता है। उसके माध्यम से प्रेमचन्द ने अपना ही जीवन-दर्शन प्रस्तुत किया है।

प्रेमचन्द स्वयं सरल निश्छल प्रकृति के मानव थे। दिखावे और बनावट से उन्हें घृणा थी। 'कथनी और करनी' में अन्तर उन्हें न भाता था। मेहता ऐसे ही स्पष्टवादी जीवनदर्शन को प्रस्तुत करता है—"मैं चाहता हूं, हमारा जीवन हमारे सिद्धान्तों के अनुकूल हो। आप कृषकों के शुभेच्छु हैं, उन्हें तरह-तरह की रियायतें देना चाहते हैं, जमींदारों के अधिकार छीन लेना चाहते हैं, फिर भी आप जमींदार हैं। "मुझे उन लोगों से जरा भी हमदर्दी नहीं है, जो बातें तो करते हैं कम्युनिस्टों की-सी, मगर जीवन है रईसों का-सा। मैं मक्खी जिन्दगी का विरोधी हूं। अगर मांस खाना अच्छा समझते हो, तो खुल कर खाओ। बुरा समझते हो तो मत खाओ, यह तो मेरी समझ में आता है। लेकिन अच्छा समझना और छिपकर खाना यह मेरी समझ में नहीं आता। मैं इसे कायरता भी कहता हूं और धूर्तता भी जो वास्तव में एक है।

जमींदारी और पूंजीवादी समाज-व्यवस्था के प्रेमचन्द विरोधी हैं। रायसाहब जब स्वयं कहता है—"किसी को भी दूसरे के श्रम पर मोटा होने का अधिकार नहीं है। उपजीवी होना घोर लज्जा की बात है। कर्म करना प्राणी मात्र का धर्म है।

समाज की ऐसी व्यवस्था जिसमें कुछ लोग मौज करें और अधिक लोग पिसें और खपें कभी सुखद नहीं हो सकती। जिन्हें पेट की रोटी मयस्सर नहीं उनके अफसर और नियोजक दस-दस पाँच-पाँच हजार फटकारें यह हास्यास्पद है और लज्जास्पद भी। इस व्यवस्था ने हम जमींदारों में कितनी विलासिता कितना दुराचार, कितनी पराधीनता और कितनी निर्लज्जता भर दी है। तो मेहता ताली बजा कर रायसाहब का अनुमोदन करते हैं। पर उन्हें रायसाहब का यह रोना मगरमच्छ के आँसू प्रतीत होता है कोरी मूर्खता लगता है।

सामूहिक हित और समाज-कल्याण के हामी होते हुए भी प्रेमचन्द व्यक्ति की सत्ता और महत्ता स्वीकार करते थे। समाज-सापेक्ष समझते हुए भी व्यक्ति की स्वतन्त्र चेतना को दबाना वह बुरा समझते थे। समाज व्यक्ति से ही बनता है। 'गोदान' में भी व्यक्ति और उसकी स्वतन्त्र चेतना का विकास महत्त्वपूर्ण माना गया है। इस दृष्टि से प्रेमचन्द गान्धीवादी दृष्टिकोण के हामी हैं। मेहता कहता है—समाज व्यक्ति ही से बनता है। और व्यक्ति को भूलकर हम किसी व्यवस्था पर विचार नहीं कर सकते। यही नहीं वह व्यक्ति की दृष्टि से समाज में छोटे-बड़े का भेद भी शाश्वत सत्य मानते हैं "मैं इस सिद्धान्त का समर्थक हूँ कि संसार में छोटे-बड़े हमेशा रहेंगे और उन्हें हमेशा रहना चाहिए। इसे मिटाने की चेष्टा करना मानव-जाति के सर्वनाश का कारण होगा। "बुद्ध प्लेटो और ईसा सभी समाज में समता के प्रवर्तक थे। यूनान रोम और सीरिया सभी सभ्यताओं ने उसकी (समाज में समानता के सिद्धान्त की) परीक्षा की पर अप्राकृतिक होने के कारण कभी वह स्थायी न बन सका। धन को आप किसी अन्याय से बराबर फैला सकते हैं। लेकिन बुद्धि को, चरित्र को रूप को प्रतिभा को और बल को बराबर फैलाना तो आपकी शक्ति के बाहर है। छोटे-बड़े का भेद केवल धन से ही तो नहीं होता?""आप रूस की मिसाल देंगे। वहाँ इसके सिवाय और क्या है कि मिल के मालिक ने राजकर्मचारी का रूप ले लिया है। बुद्धि तब भी राज करती थी अब भी करती है और हमेशा करेगी।

जो लोग 'गोदान' में प्रेमचन्द को गांधीवाद की जगह समाजवाद का समर्थक मानते हैं उन्हें मेहता की उपर्युक्त बात पर ध्यान देना चाहिए। निश्चय ही ये बातें साम्यवाद के वर्गहीन समाज-निर्माण (Classless society) के सिद्धान्त से मेल नहीं खातीं। मेहता का स्पष्ट कथन है कि सब के विकास के लिए समान सुविधाएँ नहीं दी जा सकतीं। जिन औजारों से लोहार काम करता है उन्हीं औजारों से सोनार नहीं करता। क्या आप चाहते हैं आम भी उसी दशा में फलें-फूलें जैसे बबूल या ताड़? मेरे लिए धन केवल उन सुविधाओं का नाम है जिनसे मैं अपना जीवन

दैर्यों से बोआई कराई और होरी को आधा साझा देना पड़ा। बेती में साझा हो सम्पट मातादीन किसी-न-किसी बहाने धुनिया से बात करने होरी के घर आता

धमा का मवकर मिल खुल जाने से अब किसानों की कड़ी ऊख ही जाती थी। सब ने ऊख बेच दी और मिल से ले गये। महाजन इस दिन की में वे ही। वहीं जा पहुँचे। ज्यों ही ऊख तुली पैसे मिले त्यों ही महाजनों किसानों को घेर लिया। झिंगुरीसिंह ने तो मिल के मुनीम से मिल कर ही अपने काटकर दिलवाये। होरी की ऊख के सब रुपये झिंगुरी और मोतेराम ने ही लिये। एक कौड़ी भी पल्ले न पड़ी। धनिया असहाय रह गई। गोई के लिए रुपये न रखे जा सके। वह घर में आशा लगाये बैठे बच्चों के लिए भी एक पैसे चीज न ला सका।

१८ खन्ना और उसकी पत्नी गोविन्दी में नहीं पटती। खन्ना अभिमा सम्पट और विलासी है। गोविन्दी सती-साध्वी सीधी-सरल नारी है। खन्ना मा पर लट्टू है गोविन्दी को वह कैसे भाये? पति-पत्नी में रोज तकरार रहती एक दिन बात बढ़ गई। गोविन्दी ने दुखी होकर घर से चले जाने का निश्चय कि जिस घर में उसका इतना निरादर है वहाँ कैसे रहे? वह ताँगा लेकर पार्क चली जाती है। वहाँ अचानक डा० मेहता मिल जाते हैं। मेहता गोविन्दी को आ नारी मानते हैं। वह गोविन्दी को सान्त्वना देते हैं और वापस घर छोड़ जाते हैं अपने मातृत्व का मोह त्यागना गोविन्दी के लिए भी कठिन ही था।

१९ मिर्जा खुर्शेद के अहाते में रहते गोबर को साल-भर हो गया था। बीच उसने अच्छी-खासी कमाई करली थी। नौकरी छोड़कर खोंचा लगाने लगा और अब चाय की अच्छी दुकान चलाने लगा था। अब वह छोटा-मोटा म जन बन गया था जो पास के तांगे रेहड़ी वालों को ब्याज पर रुपये उधार देता था अब उसने अपने गाँव जाने और झुनिया को लाने का निश्चय किया। सब के लि काफी वस्तुएँ खरीदीं और सैकड़ों रुपये नकद लेकर वह गाँव चला।

२ होरी अब दातादीन का मजूर बन गया। उसका सारा परिवार दातादी के खेतों में काम करने लगा। दातादीन बहुत कड़ाई से काम लेता है। वह होरी न हुक्का हाथ चलाने के लिये डाँटता है। होरी उसकी डाँट से दुखी होकर बेतहाश हाथ चलाने लगता है। उसके भूखे पेट की सूजा आँखों में अँधेरा छा जाता है गंडासा हाथ से छूट जाता है और वह अचेत हो भूमि पर गिर पड़ता है। धनिया रोने लगती है। दूध पिलाने और हवा करने से थोड़ी देर में जब होरी को होश आया, तो धनिया की जान में जान आई।

इसी समय गोबर घर पहुँचा। घर में उछाह छा गया। धनिया ने पुत्र को

आदमी थी। गोबर ने माता-पिता के चरण छुए। झुनिया ने अपना घोर मान लिया। उपहार दिए। पर भी क्षमा मांगी। और की बात सुनकर गोबर का एक क्षोभ उठा। माता भाई न गए, इसका भी गोबर को बहुत दुख हुआ। वहां लेकर और मजूरी ठाट दिखाकर गोबर गांव भर की खिल्लियां करने निकला। उसके रहन-सहन से सभी प्रभावित हुए। गांव के युवक आदर से उसके साथ लग गए। गोबर ने झिंगुरी, नोखेराम, दातादीन आदि सबको फटकारा। सबके मारे मानी ऐसी गवाई। बाजार बाद गोबर भोला के साथ पहुंचा। वहां भी उसने खूब शान जमाई। भोला के लड़के जंगी को नौकरी दिलाने का झांसा दिया और भोला को भी बाहर चलने का निमन्त्रण दिया। भोला उसके रौब में आ गया और गाय गोबर के हवाले कर दी।

२१ होली के दिन गोबर के घर अच्छा जमाव रहा। रात को अभाव हुए दिनों के अपनी बरात खूब निकाली। दातादीन, झिंगुरी, नोखेराम, पटेश्वरी आदि सबका मजाक और नोखेराम की खूब बढ़ उड़ाई। सबकी नकलें कीं और खूब खिल्ली उड़ाकर अपमान। सभी धनिया के सामने होरी-गोबर से और भी चिढ़ गए। नोखेराम ने होरी को बुलाया और लगान अदा करने का हुक्म दिया। होरी ने पाई-पाई चुका दिया था। पर नोखेराम ने रसीद न दी थी। अब नोखेराम बेईमानी से दोबारा लगान वसूल करना चाहता था। गोबर को पता चला तो वह रोष में भर कर नोखेराम के पास पहुंचा और सबके सामने यह सुनाई कि सब सन्नाटे में आ गए। घर लौट कर गोबर पिता पर क्रुद्ध हो गया तुम्हीं ने इन सबको सिर चढ़ा रखा है। मैं यहां कहां तक सुलझूं मेरे भी बाल-बच्चे हैं। वह झुनिया को साथ लेकर वापिस जाने को तैयार हो गया। उसने दातादीन को एक रुपये सैकड़े के हिसाब से ब्याज लगाकर रुपए अदा करने चाहे। ब्राह्मण ने शाप की दुहाई दे दी। होरी का धर्म-भीरु मन कांप उठा। उसने गोबर से कहा कि हमें नीति नहीं छोड़नी चाहिए। गोबर और भी चिढ़ गया। तुम धर्मात्मा बने हो तो स्वयं भुगतो। मां-बेटे और सास-बहू में खूब गरमा-गर्मी हो गई। ताने-मेहने गाली-गलौज और धक्कम-धक्का के संग्राम के उपरान्त गोबर झुनिया और बच्चे को लेकर चला गया। धनिया का मातृत्व रोता रह गया।

२२ रायसाहब अमरपालसिंह की कन्या ने यह झांसा देकर राजा सूर्यप्रताप सिंह के विवाह प्रस्ताव मानने के लिए खड़ा कर दिया कि राजा साहब से दस-बीस हजार रुपया मार कर बैठ जाने की बात बन ही जायगी। पर कन्या को इस मामले में कुछ हाथ-पैर चलाना मंजूर नहीं आया तो वह राजा साहब की ओर झुकाया।

लिए पैसे का लोभ था। बदनामी के डर से वह अब भी-चाव से इलेक्शन लड़ना चाहते थे। उधर अपनी कन्या के लिए उन्हें एक 'मान्य और उचित' वर मिल गया। इलेक्शन और कन्या की शादी दोनों समारोहों के लिए उन्होंने खन्ना के बैंक से अपनी जायदाद लिखकर रुपया कर्ज लेने के लिए खन्ना के आगे नाक रगड़े। इसी बीच वहाँ डा० मेहता महिलाओं के लिए एक व्यायामशाला बनाने का प्रस्ताव और उसके लिए चन्दे की माँग लेकर आ उपस्थित हुए। रायसाहब ने राजासाहब से अधिक दिया।

गोबर-झुनिया के जाने के बाद होरी का घर सूना हो गया। बेचारा होरी खूब परिश्रम करने लगा। एक दिन मातादीन के खेत में सिलिया अनाज उठा रही थी। उसे दुलारी सहुआइन के दो पसे देने थे। उसने उनके बदले मुट्ठी भर अनाज अभिमान से उठाकर दुलारी को दे दिया। मातादीन ने झपट कर अनाज उलटा गिरा लिया और सिलिया को डाँटने लगा तुझे क्या अधिकार है मेरा अनाज देने का? सिलिया बेचारी सन्नाटे में आ गई। कहाँ तो वह उसके पीछे चक्कर काटता फिरता था और वचन देता था कि सदा तुम्हें दिल की रानी बनाकर रखूँगा कहाँ अब यह व्यवहार! इसी समय सिलिया के माँ-बाप भाई और बिरादरी के लोग वहाँ आ पहुँचे। सिलिया के बाप हरखू ने साफ-साफ कहा कि पण्डित हमारी बेटी की इज्जत ली है तो हम यों ही नहीं छोड़ेंगे। या तो हमें ब्राह्मण बनाओ नहीं तो हमारे साथ रहो खाओ बठो चमार बनो। दातादीन और मातादीन के अकड़ने पर वे सब मातादीन को पकड़ लेते हैं और एक हड्डी का टुकड़ा उसके मुँह में घुसा देते हैं। बस ब्राह्मण का धर्म भ्रष्ट हो गया। वे जाते हुए सिलिया को भी खूब पीटते हैं। वह भी मार खाती है, पर उनके साथ नहीं जाती। जिसने एक बार बाँह पकड़ी है उसे छोड़ कर कहाँ जाये? मातादीन साफ कह देता है अब सिलिया से मेरा कोई वास्ता नहीं। बेचारी निराश्रित हो जाती है। होरी-धनिया उसे अपने पास आश्रय देते हैं।

२४ होरी को सोना के विवाह की चिन्ता सताने लगी। सौभाग्य से एक अच्छा वर मिल गया। पर दान-दहेज कहाँ से दे। आखिर होरी ने खुशामद मिन्नत करके दुलारी से दो सौ रुपये उधार देने की हामी भरा ली। सोना को जब पता चला तो वह बहुत दुखी हुई। उसने सिलिया को मथुरा के पास भेजा और कहलाया कि सोना को चाहते हो तो सोना चाँदी दान-दहेज से इन्कार करना होगा। मथुरा ने बड़ी मुश्किल से अपने बाप को राजी करके होरी के पास कह भेजा कि हम दहेज न लेंगे तुम उसका फिकर न करना। धनिया को वर-पक्ष की भलमनसाहत ने और भी प्रभावित किया। वे कुछ नहीं लेते तो क्या कन्या को यों ही भेज दिया जायगा? अपनी मरजाद तो निभानी ही पड़ती है।

२५ भोला दूसरी सगाई में आये। एक जवान विधवा मिल गई—नोहरी। अब बेटे-बहुओं से उसका झगड़ा रहने लगा। बेटों ने भोला को मार-पीट कर निकाल दिया। भोला रोता हुआ नोखेराम के पास गया। नोखेराम ने उसकी सुन्दर जवान मेहरिया देखकर अपने पास शरण दे दी। नोहरी नोखेराम की रखैल ही बन गई। भोला नौकरों की तरह रहने लगा। कुछ दिनों बाद उसके बेटे उसे मनाकर घर ले जाने आए। वह जाने को तैयार था पर नोहरी न मानी। नोहरी के बारे में फब्तियाँ होने लगीं। वह जिधर जाती लोगों की चर्चा का विषय बनती। एक दिन पटवारी पटेश्वरी ने उससे ठिठोली करना चाही। नोहरी ने नोखेराम से कह दिया। नोखेराम ने पटेश्वरी को ऐसा पछाड़ा कि बेदम हो गया।

२६ पटेश्वरी ने यह देखकर मंगरूशाह से होरी पर रुपयों के लिए दावा करा दिया। डिग्री मिली और होरी की बाकी ऊख नीलाम हो गई। ऊख तो गई ही पर एक और समस्या आ गई। दुलारी ने इसी ऊख पर दो सौ रुपये देने की हामी भरी थी। अब वह इनकार कर गई। कन्या का विवाह कैसे हो? इसी बीच नोहरी होरी के घर आई और सहानुभूति जताती हुई रुपये देने की हामी भर गई।

२७ शहर आने पर गोबर की हालत बिगड़ गई। न वह काम की दूकान रही न खोंचा लगाने की जगह। उसने चीनी के मिल में मजदूरी करली। गोबर शराब के नशे में मस्त था। झुनिया की वह परवा न करता था। उसका बच्चा चुन्नू चल बसा। उसे कुछ गम न था। झुनिया के पेट में बालक था। गोबर उसे बात-बेबात तंग करता था। वह प्रसव-वेदना से बेचैन थी गोबर को कुछ ख्याल ही न था। पड़ोस की एक भली चौगिर्द बुढ़िया ने झुनिया को बचाया। बिना दाई के ही बच्चा हुआ। गोबर के मिल में मजदूरों ने हड़ताल कर दी। दंगा हुआ। गोबर का सिर फट गया एक हाथ की हड्डी टूट गई। उसकी लाश घर आई तो झुनिया ने सर पीट लिया। झुनिया ने गोबर की खूब सेवा की। वह स्वयं मजूरी करके घास काट-बेचकर पैसे कमाती और पति का उपचार करती। गोबर अच्छा हो गया तो उसे अपनी भूल पर पश्चात्ताप हुआ। वह झुनिया से क्षमा मांगने लगा।

२८ मि० खन्ना को मजदूरों की यह हड़ताल बिल्कुल बुरा मालूम हुई। मेहता और गोविन्दी ने खन्ना को समझाया भी कि मजदूरों का पेट काटना अच्छा नहीं। एक दिन डा० मेहता और मिस मालती खन्ना के घर बैठे थे। दूर से मिल की चिमनी से भारी धुआँ निकलता दिखाई दिया। खन्ना की मिल में आग लग गई थी। तीनों मिल में पहुँचे। सब कुछ स्वाहा हो चुका था। खन्ना अचेत हो गए। एक दिन पहले वह दस लाख के आदमी थे अब एक कौड़ी भी न रही। गोविन्दी और मेहता ने उन्हें किसी तरह सान्त्वना दी। खन्ना की भी अब मानवता जाग उठी।

उन्होंने अनुभव किया कि धन के नशे में ही वह गोविन्दी पर अत्याचार करते थे।

२९. गोहरी की कुवास से बदनाम भोला ने भोलेराम के यहाँ से जाने का निश्चय किया। वह अपने कपड़े सहेजने लगा तो नोहरी ने मारे जूतों के उसकी चाँद गंजी कर दी। एक यह नोहरी है और यह एक चमारिन है सिलिया जो मातादीन के ही नाम पर जीती है, भूखी रहती है, मजूरी करती है। पर एक बार जिसने बाँह पकड़ ली फिर दूसरा और कैसा? मातादीन को काशी के ब्राह्मणों को हजारों रुपये का भोज देना पड़ा, प्रायश्चित्त करना पड़ा, शुद्ध गाय का गोबर और मूत खाना-पीना पड़ा। साथ ही वह महीना-भर बीमार रहा। अब धर्म के ढकोसले से उसे घृणा हो गई थी। समाज में उसकी मानवता जाग गई थी। अब वह सिलिया के प्रति अपने अत्याचार से दुखी था। एक दिन वह सिलिया को देने के लिए दो रुपये ले गया। जब संध्या को होरी ने सिलिया से रुपये लिये तो वह जैसे अपनी तपस्या का वरदान पा गयी। प्रसन्न हुई, वह दौड़ी-दौड़ी अँधेरे में ही सोना को खुशखबरी सुनाने नदी पार करके गई। वहाँ सोना के घर अँधेरे में मथुरा ने धृष्टता करनी चाही। सोना ने दोनों को एकान्त में देख लिया। उसने सिलिया को बहुत फटकारा। कहाँ तो बेचारी खुशखबरी सुनाने गई थी, कहाँ यह मलाड़ पड़ी। मन-मारे वापस लौट आई।

३१. मेहता के आदर्श से प्रभावित होकर मालती ने अपना रङ्ग-ढङ्ग बिल्कुल बदल लिया। अब वह सेवा और त्याग की मूर्ति बन गई थी। खन्ना और गोविन्दी के बीच से भी वह हट गई। अब कई महीनों से मेहता और मालती दोनों कभी-कभी देहातों में चले जाते थे और किसानों के दुखों में शामिल होते, उनसे सहानुभूति दिखाते थे। एक दिन दोनों होरी के गाँव निकल गए। वहाँ मालती ने गाँव की स्त्रियों को रहन-सहन-सफाई की बहुत-सी बातें सिखाईं, बच्चों का इलाज किया। फिर दोनों नदी पर चले गए। प्रकृति के सुन्दर वातावरण में मेहता चहक उठे। अभी भी मेहता मालती को परीक्षक की दृष्टि से देखते हैं। मालती मेहता के इस भाव से अब खफा हो जाती है। वह अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लेती है। और शीघ्र लौट आती है।

३२. रायसाहब का सितारा बुलन्द था। उन्होंने इलेक्शन भी जीत लिया, होम मेम्बर भी बन गए, कन्या का विवाह भी धूम-धाम से किया और लाखों रुपयों की ससुराल की जायदाद भी मुकदमा जीतकर प्राप्त करली। राजा सूर्यप्रतापसिंह ने उनके अतिशय प्रभाव को देखकर उनके बड़े लड़के रुद्रपालसिंह से अपनी कन्या के विवाह का प्रस्ताव कर दिया। रायसाहब की इससे बढ़कर और क्या विजय हो सकती थी! किन्तु रुद्रपाल ने पिता की बात मानने से जवाब दे दिया। उसका स्वच्छन्द प्रेम

मालती की बहुत करीब से था। रायसाहब को पुत्र के इस व्यवहार से बहुत धक्का लगा। जिस बेटे के लिए ही वे इतना-कुछ कर रहे थे वही उनकी बात नहीं मानता। रायसाहब की जान को एक और आफ़त आ गई। उनकी लड़की मीनाक्षी का अपने पति दिग्विजयसिंह से शादी के कुछ दिनों बाद ही सम्बन्ध-विच्छेद होगया। दिग्विजयसिंह विलासी और लम्पट था। मीनाक्षी को उसकी लम्पटता बिल्कुल न भाई। दोनों में अर्जी-पर्चा हो जाता है। एक दिन मीनाक्षी ने रणचण्डी बनकर दिग्विजयसिंह को हंटरों से पीटा। दोनों एक-दूसरे के खून के प्यासे बन गए।

१२ मिर्जा खुर्शेद ने मजदूरों की हड़ताल में भाग लेने के बाद वेश्याओं के उद्धार का बीड़ा उठाया। वह वेश्याओं की एक नाटक-मण्डली बनाना चाहते थे ताकि वेश्याओं के रोजगार का जरिया बदल दिया जाय। मि० मेहता ने उनकी इस योजना को हँसी में उड़ाते हुए कहा कि पत्तियाँ तोड़ने से कुछ न होगा। जड़ को पकड़ो सारी समाज-व्यवस्था बदलने की जरूरत है। जब तक दौलत वाले रहेंगे वेश्याएँ भी रहेंगी।

१३ डॉ० मेहता अब परीक्षक से परीक्षार्थी हो गए थे। वह मालती के सेवा त्याग संयम और मातृत्वपूर्ण करुणा आदि उच्च गुणों पर रीझ उठे थे। पहले मालती उनके लिए प्यासी थी अब वह मालती के लिए प्यासे थे। मालती ने उनकी लापरवाही की जिन्दगी को व्यवस्थित करने का काम अपने जिम्मे ले लिया। मेहता अब मालती के पास ही रहने लगे। गोबर ने अब मालती के यहाँ नौकरी कर ली थी। उसके जिम्मे बाग की देखभाल का काम था। मालती अब झुनिया के बच्चे को माता की तरह प्यार करती थी। एक बार बालक मंगल को तेज ज्वर आ गया। मालती ने बड़े स्नेह से उपचार किया। बच्चे को अपने कमरे में ही रखा। सारी रात वह स्वयं जागती और बच्चे की देखभाल करती। एक रात मेहता ने मालती की यह मातृ-मूर्ति देखी तो गद्गद् हो गए। वे भावावेश में मालती से कुछ याचना करने की अनुमति चाहने लगे। मालती का हृदय भी प्रेम-प्यार से तर था। किन्तु उसने संयत रहकर मेहता से कहा कि स्त्री-पुरुष बन कर रहने से मित्र बन कर रहना कहीं अच्छा है। संकुचित गृहस्थी के बन्धन में बँधकर अपनी आत्मा को संकीर्ण नहीं करना चाहिए। सेवा और प्रेम का मार्ग अत्यन्त प्रशस्त है। मेहता मालती की बात शिरोधार्य करते हैं। दोनों समाज-कल्याण में रत हो जाते हैं।

१४ सिलिया ने मातादीन के बच्चे को जन्म दिया। अब मातादीन बच्चे को देखने चुपके-चुपके रोज आता। लड़का ठीक उसी को पड़ा था। बड़ा चंचल नटखट। किन्तु विधि की विडम्बना बालक दो साल का होकर मर गया। मातादीन को बहुत दुख हुआ। एक दिन मातादीन सिलिया से खुल पड़ा और माला तोड़ कर अपनी

सहायक सिद्ध हुई है। एक ओर गरीब किसान हैं जिन्हें एक जून भी पेट-भर भोजन नहीं मिलता घी-दूध बच्चों तक को नहीं मिलता मामूली दवा-दारू के अभाव में उनके बच्चे मर जाते हैं चेहरों पर मुर्दनी छाई रहती है दूसरी ओर जमींदार हैं पूंजीपति हैं गुलछर्रे उड़ाते हैं, हजारों रुपये व्यसन में खर्च कर देते हैं मुकदमेबाजी दुर्व्यसन शिकार धनुष-यज्ञ आदि पर बेहिसाब व्यय करते हैं मामूली फुन्सी या सिर दर्द हो जाय तो बड़े-बड़े सर्जन वैद्य डाक्टर बुलाये जाते हैं। गरीब किसान सारा साल परिश्रम करता है सर्दी-धूप-बरसात-सोखा में मरता-खपता-गलता और सूखता है। उधर शहरी धनी लोग निठल्ले रहते हैं और मुफ्त की उड़ाते हैं। यह तुलना दिखा कर ग्रामीण कृषक-कथा में अत्यधिक करुणा भरना ही शहरी कथा का उद्देश्य है। इस दृष्टि से यह समान्तर कथा भी नहीं कही जा सकती। शहरी कथा ग्रामीण कथा की पूरक-सी बन जाती है।

फिर भी कुछ प्रसङ्ग अवश्य ऐसे हैं, जिनका विस्तार बचाने में ही अच्छाई थी। धनुष-यज्ञ का प्रसङ्ग १०—१२ पृष्ठों का विस्तृत प्रसंग है। इसमें पत्रकार ओंकारनाथ का उल्लू बनाने और मेहता के खान बनकर उपस्थित होने के दृश्य बड़े अस्वाभाविक हैं। पत्रकार ओंकारनाथ को जिस ढङ्ग से मालती बनाती है उसमें मनोवैज्ञानिक कचाई स्पष्ट नजर आती है। जो मालती पहले ओंकारनाथ का विरोध और मजाक कर रही है, उसके बाद के प्रशंसात्मक शब्दों पर एकदम ओंकारनाथ ने कैसे विश्वास कर लिया? एक साधारण व्यक्ति भी इस ओछे मजाक को समझ सकता था न जाने पत्रकार-जैसा सतर्क प्राणी उसे क्यों नहीं समझ सका! लगता है बेचारे ओंकारनाथ की प्रेमचन्द ने व्यर्थ ही दुर्गति कराई है। कोई बौद्धिक चतुराई इस प्रसंग के मूल में दिखाई नहीं देती। इसी प्रकार मेहता का खान बनकर आ उपस्थित होना और उसकी आकृति-आवाज का पहचाना न जाना अस्वाभाविक ही है। कथानक में वैचित्र्य और अद्भुत घटना चक्र प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति प्रेमचन्द में घटना प्रधान उपन्यासों के प्रभाव से कुछ-न-कुछ रही है। वे अपने उपन्यासों में कब -वैचित्र्य या चमत्कार उत्पन्न करने के फेर में कहीं-कहीं अवश्य पड़ते रहे हैं। 'कायाकल्प' इस प्रवृत्ति का विचित्र रूप है। 'प्रेमाश्रम' में भी राय कमलानन्द के चरित्र की विचित्रता तथा आकस्मिक हत्याओं के मूल में यही प्रवृत्ति है। पूर्व-उपन्यासों में आकस्मिक घटनाएँ भी इसी प्रवृत्ति का परिणाम हैं। शायद 'गोदान' में मेहता का यह चमत्कारी रूप भी इसी प्रवृत्ति का दिग्दर्शन है। धनुष-यज्ञ का यह विस्तृत छठा परिच्छेद न तो विशेष रोचक ही बन सका और न ही कथा के विकास में इतना सहायक सिद्ध हुआ है। इसका संक्षिप्त होना ही अच्छा था। अगला शिकार वाला खण्ड अपेक्षाकृत रोचक है। किन्तु यह भी १६—१७ पृष्ठों का विस्तृत हो गया है। इसे भी यदि छोटा रखा

जाता तो अच्छा रहता। इन दोनों खण्डों के ६१–७० पृष्ठों में फैल जाने से होरी गोबर की अधिक रोचक अधिक संवेदनापूर्ण कथा में व्याघात उपस्थित हुआ है। पाठक की उत्सुकता और रुचि उस कथा में अधिक थी इसलिए इन प्रसंगों को पढ़ते हुए पाठक के मन में पूर्वकथा की अग्रगति जानने की जितनी उत्सुकता बनी रहती है उतनी इन प्रसंगों में रुचि वह नहीं ले पाता। यदि ये प्रसंग संक्षिप्त होते और अधिक स्वाभाविक होते तो इनकी रोचकता भी बढ़ जाती और पाठक की उत्सुकता बनी रहती। इसी प्रकार एक-दो प्रासंगिक दृश्य और अनावश्यक-से प्रतीत होते हैं—जैसे बारहवें परिच्छेद में कोदई का प्रसंग। युवक-युवती का मानना-मनाना पहले गोबर पर बुरी तरह बिगड़ जाना और फिर एकदम उसे ठहरने का निमन्त्रण ही नहीं माता को समझा देने का अनुरोध करना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सदोष ही है। इस प्रसंग को हटा देने से कथा की कोई हानि नहीं होती बल्कि कथा-सगठन अधिक दृढ़ और अधिक मार्मिक हो जाता। इसी प्रकार ३२ वाँ परिच्छेद अनावश्यक है और यही रही कि यह प्रसंग छोटा-सा ही है लेखक ने कुर्णेद और मेहता के वेश्या-समस्या सम्बन्धी विवाद को बढ़ने से बचा लिया अन्यथा बहुत अखरता।

किन्तु कथा-सङ्गठन के ये कुछ दोष बहुत अखरने वाले नहीं। अधिकांश प्रसङ्ग रोचक और कथा-विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। शहरी प्रसङ्गों को ग्रामीण कथा की संवेदना के पूरक ही मानना चाहिए। इस तुलनात्मक अध्ययन के बिना ग्रामीण जीवन की विषमता स्पष्ट न होती जो लेखक का उद्देश्य है। कथा की रोचक नियोजना में प्रेमचन्द जी सबसे बड़ी विशेषता है उत्सुकता-वृद्धि का गुण। रोचक प्रसङ्गों का चयन भी इस गुण के बिना सम्भवत इतना प्रभावकारी न होता। रोचकता बढ़ाने के लिए प्रेमचन्द कोई-न-कोई समस्या उपस्थित रखते हैं। पहले कोई कठिन परिस्थिति प्रकट कर देते हैं फिर उसके हल की दिशा निकाल कर पाठक की उत्सुकता शान्त कर देते हैं। सोना के विवाह की समस्या है। पटेश्वरी नोखेराम के लड़के ताक-झाँक करने लगे हैं। हवा खराब है। कन्या का विवाह शीघ्र कर देना चाहिए। दहेज-खर्च की समस्या है। दुलारी से सहारा मिल जाता है। समस्या शान्त होने को है। पर उस मौसम हो जाने पर दुलारी जवाब दे देती है। फिर समस्या उपस्थित होती है। तब नोहरी उबारती है। इस प्रकार पाठक की उत्कण्ठा को बार-बार जगाकर शान्त करने का सफल प्रयास प्रेमचन्द की विशेषता है।

प्रेमचन्द ने उत्सुकता-वृद्धि का एक और उपाय नाटकीय अप्रत्याशित परिस्थितियाँ उपस्थित करके अपनाया है। गोबर ने सिलिया को भेजकर मथुरा और उसके पिता से मनवाया कि हम दान-दहेज न लेंगे। पाठक समझता है मानो समस्या

समाप्त हुई। पर जब धनिया इससे उल्टा प्रभावित होकर नाई को कहती है कि जेवें क्यों नहीं अपनी मरजाद कोई छोड़ता है। तो उसके इस अप्रत्याशित उत्तर से पाठक चमत्कृत हो जाता है और उसकी उत्सुकता बढ़ती है। इसी प्रकार का और प्रसङ्ग है। भोला होरी के दोनों बैल खोल ले जाता है। होरी अब बैलों के बिना खेती कैसे करेगा? तभी गाव के स्तम्भ और लोग भोला को ललकारते हैं। पाठक समझता है अब अब भोला को बैल लौटाने पड़ेंगे। पर होरी की बात पर सहसा दातादीन आदि अपना भाव बदल देते हैं और भोला को बैल ले जाने देते हैं। पाठक और भी उत्सुक हो जाता है। मेहता-मालती का चांदनी रात में नदी पर मिलन और वार्तालाप भी ऐसा ही प्रसङ्ग है। मेहता-द्वारा प्रेम की व्याख्या से अप्रत्याशित *और उत्सुकता-वर्द्धक परिणाम निकलता है।*

हमने आरम्भ में भी पिछले दोषों के परिहार पर विचार करते हुए, कहा था कि 'गोदान' में आने की घटनाओं के बारे में सूक्ष्म-परोक्ष संकेत देने का मनोवैज्ञानिक ढङ्ग अपनाया है। इससे भी पाठक की जिज्ञासा और उत्सुकता-वृद्धि हुई है। जहाँ पहली रचनाओं में ऐसे संकेत दोषपूर्ण थे वहाँ 'गोदान' में मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक होने से केवल उत्सुकता बढ़ाते हैं। दातादीन का यह कथन 'बाहर न बाँधना यह कहे देते हैं' और हीरा का यह कहना 'भगवान् चाहेंगे बहुत दिन गाय न रहेगी' ऐसे ही उत्सुकतापूर्ण भावी संकेत हैं। इनका पूरा अर्थ घटना के बाद ही खुलता है पहले तो ये उत्सुकता और आशङ्का को जगाते हैं। होरी का आरम्भ का कथन 'साठे तक पहुँचने की नौबत ही न आने पायेगी धनिया! इसके पहले ही चल देंगे' अन्त में सत्य सिद्ध होता है पर पहले हम केवल उत्कण्ठित रहते हैं।

इस प्रकार प्रेमचन्द ने पाठक की उत्कण्ठा को स्थान-स्थान पर जगाये रखा है। उत्कण्ठा को जगाकर क्रमशः शान्त होती हुई उत्कण्ठा को तीव्र करने या एक बार उत्कण्ठा को शान्त करके पुनः जागृत करने के ये ढंग कथा को बहुत रोचक और आकर्षक बना देते हैं। कथा का क्रमिक विकास भी अत्यन्त स्वाभाविक है। होरी की दयनीय दशा के दिन दिन बिगड़ते जाने का बड़ा मार्मिक क्रमिक चित्रण हुआ है। जौ में मकान रहन रखना पड़ा अनाज गया कर्ज दिन दिन बढ़ रहा है बैल जाते हैं खेती जाती है ऊख नीलाम हो जाती है किसी सूरत भी पैसा हाथ नहीं लगता। वह मजदूर बन जाता है बेदखली होने वाली है। बाप-दादा की जमीन बचाने के लिए रूपा रूपा का विवाह बूढ़े रामसेवक से करता है और बाद में आत्मग्लानि से जलता है। वह अपना कलङ्क धोने के लिए शक्ति से बहुत अधिक परिश्रम करता है और अन्त में अधूरी साधें लिए ही टूट जाता है। सारी परिस्थितियाँ अन्त में चरम-अवस्था को प्राप्त होती हैं वहीं उपन्यास समाप्त हो जाता है। इतना सुन्दर स्वाभाविक क्रमिक

विकास प्रेमचन्द के किसी अन्य बड़े उपन्यास का तो है ही नहीं साथ ही हिन्दी साहित्य का शायद ही कोई बड़ा उपन्यास ऐसा स्वाभाविक विकास-क्रम लिए हो।

इस विकास-क्रम में भी एक-आध हल्का-सा दोष पाया जाता है। एक-आध स्थल पर प्रसङ्गों के पूर्वापर क्रम में प्रेमचन्द ने दोषपूर्ण प्रयास किया है। चौथे परिच्छेद में गाय आ चुकी है। गाय के आने पर हीरा-धनिया का झगड़ा भी हो चुकता है। सारा गाँव गाय को देख चुकता है। पर प्रेमचन्द अगले (पाँचवें) परिच्छेद को आरम्भ करते हुए कहते हैं 'इधर गोबर खाना खाकर अहिराने में जा पहुँचा।' और इस तरह से वे गोबर-द्वारा गाय लाने और झुनिया से बात-चीत होने का प्रसङ्ग ...है। कथा का इस प्रकार का क्रम-विधान उचित नहीं माना जा सकता। जो पात्र पहले परिच्छेद में आगे की घटना में उपस्थित हो चुका उसका असर उसके पूर्व प्रसङ्ग की चर्चा बाद में युक्तियुक्त नहीं। प्रेमचन्द पर आक्षेप करने वाले 'प्रेमचन्द एक अध्ययन' के लेखक डा० राजेश्वर गुरु ने 'गोदान' के कथा-नियोजन पर सिनेमा-पद्धति का प्रभाव बताया है। उनका कथन है कि प्रेमचन्द इस समय तक सिनेमा से सम्बन्धित रहने के कारण सिने-चित्र-पद्धति से परिचित हो चुके थे। यही कारण है कि 'गोदान' में सिनेमा-जैसी झाँकियों के रूप में उन्होंने कथा प्रस्तुत की है। इस सम्बन्ध में हमारा निवेदन है कि उपन्यास की कथा-शिल्प को ही सिनेमा-जगत् ने अपनाया है। भिन्न-भिन्न उपन्यासों के ढङ्ग पर ही बनने आरम्भ हुए थे और आज तक उपन्यास का शिल्प अपनाकर प्रस्तुत किए जाते हैं। प्रेमचन्द के 'गोदान' में भिन्न भिन्न शैली के प्रभाव की कोई विशेष बात नजर नहीं आती। बल्कि उपर्युक्त क्रमदोष से लगता है कि सिनेमा की दृष्टि प्रेमचन्द की थी ही नहीं अन्यथा पर्दे पर झलकने वाला यह क्रम बहुत दर्शनीय न बनता। भिन्न-भिन्न दृश्य प्रसङ्ग चित्रों के रूप में कथा नियोजना की पद्धति उन्होंने सामान्य औपन्यासिक शिल्प से ही ग्रहण की है सिनेमा के प्रभाव से नहीं। यह पद्धति उनके सिनेमा जगत् में आने से बहुत पूर्व 'सेवासदन' में भी पाई जाती है।

कथा-क्रम का उपर्युक्त दोष अपवाद ही है। प्रेमचन्द की कथा स्वाभाविक गति से विकसित होती है। पात्रों और घटनाओं का 'गोदान' में अद्भुत सामञ्जस्य है। पात्र अपने चरित्रों की विशिष्टता से घटनाओं और परिस्थितियों का उत्पन्न करते हैं और घटनाएँ और परिस्थितियाँ भी पात्रों के चरित्रों को उद्घाटित करती हैं। इस प्रकार चरित्र और कथानक एक दूसरे के पूरक बने रहते हैं। 'गोदान' से पूर्व घटनाएँ अधिक महत्त्व रखती थीं पर 'गोदान' में दोनों का बराबर महत्त्व है।

अपने पहले उपन्यासों में तो प्रेमचन्द प्रकृति से ही आदर्शवादी रहे हैं। इसीसे उन्होंने अपने प्रायः सभी पहले उपन्यासों में कथा और चरित्रों को अपने आदर्श

के अनुरूप परिवर्तित किया है। प्रायः उनके पात्र बुराई से अच्छाई की ओर परिणति पाते हैं और यही बात कथा के बारे में कही जा सकती है। 'गोदान' में भी उद्देश्य तो आदर्श ही है पर यहाँ यथार्थ को प्रेमचन्द ने अधिक आग्रह से पकड़ा है—कम-से-कम काल्पनिक आदर्शवाद किसी सुधार या आश्रम-निर्माण के चक्कर में वे नहीं पड़े हैं। इससे कथा की यथार्थवादी रक्षा हुई है।

अतः सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि 'गोदान' का कथा-शिल्प प्रेमचन्द के कथाकार की सफलता का परिचायक है। प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा-शिल्प को एक सच्चा यथार्थवादी मोड़ प्रदान किया। 'सेवासदन' में यदि उन्होंने हिन्दी उपन्यास की कथा-वस्तु को तिलस्म और ऐयारी के चक्कर से निकालकर जीवन की वास्तविकता से सम्बद्ध किया था तो 'गोदान' में पहली बार दरिद्र कृषक को नायक बनाकर जीवन का मार्मिक चित्रण किया। कथा का मार्मिक चयन उपयुक्तावस्था के नियोजना रोचक प्रसङ्गों की उद्भावना तथा सुन्दर क्रमिक विकास उनके कथा शिल्प की विशेषता है। उपन्यास का कलेवर बड़ा होने के कारण कुछ भूलें हो गई हैं किन्तु वे बहुत अखरने वाली नहीं। ऐसी भूलों को बचाया जा सकता था यदि स्वयं प्रेमचन्द अपनी रचना को ध्यान से पढ़ लेते। जैसे भोला की पत्नी का सर्वप्रथम कामिनी नाम से परिचय दिया गया है पर बाद में सर्वत्र गोबिन्दी नाम चलता है। होरी की लड़की रूपा को पहले ही पृष्ठ पर आठ साल की बताया है और आगे तीसरे खण्ड में उसे पाँच-छः साल की छोकरी कहा है। इसी प्रकार झिंगुरी के बालक के बारे में १४ वें परिच्छेद के आरम्भ में ही कहा गया है—'झिंगुरी का बालक अब दो साल का हो रहा था और सारे गाँव में दौड़ लगाता था। अपने साथ एक विचित्र भाषा लाया था और उसी में बोलता था चाहे कोई समझे या न समझे। परन्तु आगे चौथे ही पृष्ठ पर कहते हैं "राम अब बैठने लगा था। कुछ-कुछ बकवाँ चलने भी लगा था। मुन्शीजी भूल जाते हैं कि कुछ देर पहले जिस बच्चे के बारे में वह कह आये हैं कि सारे गाँव में दौड़ लगाता है और बहुत चंचल है तोतली बोली बोलता है उसीके बारे में यह कहना कि अब बैठने लगा है और उसकी अस्पष्ट मृत्यु की सूचना देना कितना असङ्गत लगेगा। काल-दोष की एक छोटी-सी भूल और देखिए। १७ वें परिच्छेद में कहा गया है कि 'जब माघ बीत गया और भोला के रुपये न मिले तो एक दिन वह महाजन हुआ' आ धमका और होरी के बैल ले गया। किन्तु आगे इसी कथा का विकास करते हुए १७ वें परिच्छेद में मुन्शीजी कातिक के महीने पर आ जाते हैं—कातिक के महीने में किसान के बैल मर जायँ तो उसके दोनों हाथ कट जाते हैं। होरी के दोनों हाथ कट गये थे। माघ का महीना कातिक के बाद ही आता है। इसी प्रकार होरी का गाँव बेमारी है और उसके

जमींदार रायसाहब सेमरी में रहते हैं। परन्तु २१ वें परिच्छेद के आरम्भ में भूल से होरी के गाँव को सेमरी कह दिया है। १० वें अध्याय के आरम्भ में मजदूरों की समस्या सुलझाने के लिए खन्ना मेहता-मालती आदि से सलाह लेते रह जाते हैं। आगे की बात कहना प्रेमचन्द भूल ही गये हैं। कम-से-कम निर्णय का संकेत ही देते तो भी मजूर रहता। इससे इस खण्ड का आरम्भिक अंश निरर्थक बनकर रह गया है। और यही है कि यह प्रासङ्गिक बात थी। इस प्रकार की भूलें वृहद् कथा-प्रवाह में क्षम्य ही हैं। कुल मिला कर 'गोदान' की कथा-वस्तु प्रेमचन्द को श्रेष्ठ कथाकार सिद्ध करती है।

४ चरित्र चित्रण

(क) पात्र-परिचय

होरी चरित्र की वे मनोवैज्ञानिक स्थितियाँ जिनसे वह भारतीय किसान का प्रतीक प्रतीत होता है उपन्यास का नायक होरी कृषक-वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है। यह प्रेमचन्द की अमर चरित्र-सृष्टि है। उसका चरित्र-चित्रण प्रेमचन्द की अत्यन्त श्रेष्ठ कला का परिचायक है। भारतीय साहित्य में सम्भवतः पहली बार एक दरिद्र व्यक्ति का नायक के रूप में इतना सजीव चित्रण हुआ। यद्यपि उसके चरित्र की व्यक्तिगत विशिष्टता भी कुछ बातों में दिखाई देती है परन्तु अधिकांशतः वह कृषक वर्ग के प्रतिनिधि-रूप में चित्रित किया गया है। उसकी सम्पूर्ण मनोभूमि कृषक की मनोभूमि है। वह जो कुछ सोचता-विचारता करता-धरता है उस सब के मूल में उसके कृषक-संस्कार ही दिखाई देते हैं। इसी कारण 'गोदान' कृषक-संस्कृति की लोक-परम्परा का प्रतीक उपन्यास बन गया है।

आरम्भिक पृष्ठों में ही हमें उसके चिर-पुरातन कृषक-रूप का दिग्दर्शन हो जाता है। होरी कदम बढ़ाये चला जाता था। पगडण्डी के दोनों ओर ऊख के पौधों की लहराती हुई हरियाली देखकर उसने मनमें कहा—भगवान् कहीं गौ से बरखा कर दें और डाँडी भी सुभीते से रहे तो एक गाय जरूर लेगा। उसकी खूब सेवा करेगा। कुछ नहीं तो चार पाँच सेर दूध होगा है। सबेरे-सबेरे गऊ के दर्शन हो जायें तो क्या कहना! न जाने कब यह साध पूरी होगी। कब वह शुभ दिन आयेगा! गाय की लालसा भारतीय किसान की जन्म-संस्कारगत लालसा है। गऊ को वह माता मानता है। उसके बछड़े भी उसका अमूल्य धन होते हैं। और अपनी लहलहाती खेती को देखकर प्रसन्न होना और भगवान् से उसकी यही-समाधान वृद्धि और पूर्ति की कामना-प्रार्थना कृषक की शाश्वत सार्वभौमिक प्रवृत्ति है।

भारतीय किसान युग-युग से सामन्तवाद और जमींदारी पद्धति का शिकार बना चला आ रहा है। अपनी दयनीय दशा को वह भगवान् की देन समझ

वह भाग्यवादी बन गया है। होरी के मानसिक संस्कार इसी ढाँचे में ढले हैं। अपनी दयनीय दशा का उसे दुख तो है पर इस भगवान् की मरजी या भाग्य की बात समझकर वह असंतुष्ट और विद्रोही नहीं होता अपितु अपने मालिकों की खुशामद और उनका कृपा-पात्र बनने में ही अपना भला समझता है। होरी अपने जमींदार से मिलने जाता है। धनिया के विरोध करने पर वह कहता है— 'इसी मिलते-जुलते रहने का परसाद है कि अब तक जान बची हुई है। जब दूसरों के पाँवों-तले अपनी गर्दन दबी हुई है तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुसल है। जब गोबर अपने पिता की खुशामदी प्रवृत्ति की आलोचना करता है तो होरी अपने बेटे के विद्रोह भाव को दबाता हुआ कहता है—'सलामी करने न जायें तो रहें कहाँ ? भगवान् ने गुलाम बना दिया है तो अपना क्या बस है। किसान की नई पीढ़ी में विद्रोह और असंतोष तीव्र है। असंतोष होरी की पुरानी पीढ़ी में भी व्याप्त है पर वह अपनी भलाई विद्रोह में नहीं मिन्नत-समाजत में समझती है अकड़ने से निबाह नहीं होगा। गोबर कहता है भगवान् ने तो सबको बराबर ही बनाया है। पर होरी कहता है— 'यह बात नहीं है बेटा छोटे-बड़े भगवान् के घर से बनकर आते हैं। सम्पत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है। उन्होंने पूर्व जन्म में जैसे कर्म किये थे उसका आनन्द भोग रहे हैं। हमने कुछ नहीं संचा तो भोगें क्या ? इस प्रकार भगवान् की लीला में होरी का अटल विश्वास है। जन्म-जन्मान्तरवाद कर्मवाद और भाग्यवाद पर उसकी निष्ठा है। ये समूचे कृषक-वर्ग के ही विश्वास हैं।

अपने छोटे-मोटे स्वार्थों को कृषक हर समय सामने रखता है। वह उधार को मुफ्त समझता है। होरी 'जानता था घर में रुपये नहीं हैं अभी तक लगान नहीं चुकाया जा सका बिसमर साह का देना भी बाकी है जिस पर आने रुपये का सूद चढ़ रहा है लेकिन दरिद्रता में जो एक प्रकार की अदूरदर्शिता होती है वह निर्लज्जता जो तकाजे गाली और मार से भी भयभीत नहीं होती उसने' होरी को भोला से गाय उधार लेने के लिए प्रोत्साहित किया। 'उसे अभी चार सौ रुपये देने थे लेकिन उधार को वह एक तरह से मुफ्त समझता था। होरी भोला को सगाई दिलाने का झाँसा देता है। उसकी प्रशंसा करता है। वह चालाकी से उसकी गाय हथियाना चाहता है। यह सब उसकी नीति में बुराई न थी। वह गाय की लालसा पूरी करना चाहता है। 'कहीं भोला की सगाई ठीक हो गई, तो साल-दो साल तो वह बोलेगा भी नहीं। सगाई न भी हुई, तो होरी का क्या बिगड़ता है ? यही तो होगा कि भोला बार-बार तगादा करने आयेगा बिगड़ेगा गालियाँ देगा लेकिन होरी को इसकी ज्यादा शर्म न थी। इस व्यवहार का वह आदी था। कृषक के जीवन का तो यह प्रसाद है! भोला के साथ वह छल कर रहा था और यह व्यापार उसकी

उसके अनुकूल न था। अब भी लेन-देन में उसके लिए लिखा-पढ़ी होने और न होने में कोई अन्तर न था। ईश्वर का रात रूप सदा उसके सामने रहता था। पर छल उसकी नीति में छल न था। यह केवल स्वार्थ सिद्धि थी और यह कोई बुरी बात न थी। इस तरह का छल तो वह दिन रात करता रहता था। घर में दो चार रुपये पड़े रहने पर भी महाजन के सामने कसमें खा जाता था कि एक पाई भी नहीं है। सन को कुछ गीला कर देना और रुई में कुछ बिनौले भर देना उसकी नीति में जायज था।' इस प्रकार का स्वार्थ गरीब किसान की रग-रग में समाया रहता है। अपने भाइयों से होरी दो-चार रुपयों के लोभ से बेईमानी करता है। वह बसंडी बंसोर को साझे के बाँस बेचने में भाइयों से धोखा करना चाहता है। ठकुर-सुहाती उसकी प्रकृति बन गई है। होरी अपना स्वार्थ गाँठने के लिए दुलारी-सहुआइन मोहरी आदि की ठकुर-सुहाती करता है।

परन्तु वह चाहे जितना स्वार्थी हो अपने छोटे-मोटे लोभ-लाभ के लिए वह चाहे ही थोड़ा-सा छल-कपट कर लेता हो उसका मन कुत्सित नहीं। 'किसान पक्का स्वार्थी होता है इसमें सन्देह नहीं। उसकी गाँठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं भाव-ताव में भी वह चौकस होता है ब्याज की एक-एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घण्टों चिरौरी करता है जब तक पक्का विश्वास न हो जाय वह किसी के फुसलाने में नहीं आता लेकिन उसका सम्पूर्ण जीवन प्रकृति से स्थायी सहयोग है।—ऐसी सपति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहाँ स्थान! होरी किसान था और किसी के जलते हुए घर में हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था।" जब भोला भूसे की कमी के संकट से गाय बेचने की विवशता जाहिर करता है तो उसकी संकट-कथा सुनते ही होरी की मनोवृत्ति बदल गई। वह गाय लेने से इनकार कर देता है। संकट की चीज लेना उसके लिए पाप है। वह साफ कहता है—भूसे के लिए तुम गाय बेचोगे और मैं लूँगा। मेरे हाथ न कट जायँगे?" किसी भाई का नीलाम पर चढ़ा हुआ बैल लेने में जो पाप है, वही इस समय तुम्हारी गाय लेने में है। जिस भाई से वह दो-चार रुपये की बेईमानी करना चाहता है उसी के लिए जान भी दे सकता है खून-पसीना एक कर सकता है। हीरा के भाग जाने पर वह उसके खेतों में जुट काम करता है, उसकी गृहस्थी का पूरा खयाल रखता है। हीरा के वापस लौट आने पर वह उसे गले लगा लेता है उसके अपराध को क्षमा कर देता है। वह निराश्रिता सिलिया को अपने यहाँ आश्रय देता है। इस प्रकार किसान की क्षुद्र दुर्बलताएँ तथा उच्च संस्कारों की मानवीय सबलताएँ सब होरी में पाई जाती हैं।

किसान का जीवन सम्मान और आदर के अभाव का जीवन रहा है। इसी से वह थोड़ा-सा सम्मान पाकर ही फूल जाता है। वह दूसरों से अपने को विशिष्ट समझ

कर प्रसन्नता का अनुभव करता है। जब होरी रायसाहब को मिलने जाता है तो 'दोनों ओर खेतों में काम करने वाले किसान उसे देखकर राम राम करते और सम्मान भाव से चिलम पीने का निमन्त्रण देते थे'''उसके अन्दर बैठी हुई सम्मान-लालसा ऐसा आदर पाकर उसके सूखे मुख पर गर्व की झलक पैदा कर देती थी'। प्रसुप्त-मन में वह राजा जनक का माली बना फूला नहीं समाता। जब गाय घर आती है तो वह उसे बाहर बाँधना चाहता है ताकि द्वार पर ऐसी बढ़िया गाय बँधी देखकर लोग कहें कि यह होरी महतो का घर है। इसी गर्व-भावना से वह दातादीन के आगे शीट उड़ाता है कि गाय मैंने भोला से नकद ली है।

किसान धर्म-भीरु और समाज-बिरादरी-भीरु भी होता है। धर्म के बाह्यी रूप पर उसका विश्वास होता है। *जाति-पाँति और छुआछूत को वह ग्रहण किये* रखता है। होरी इसी परम्परागत संस्कार के आश्रय ब्राह्मण दातादीन को विशिष्ट मानता है। उसके रुपये वह कैसे रख सकता है! ईश्वर का उग्र रूप उसे हरदम डराता रहता है। जब गोबर दातादीन को एक रुपया सैकड़ा ब्याज के हिसाब से रुपये देना चाहता है तो होरी इसे नीति के विरुद्ध समझ कर कहता है—'हमें नीति हाथ से नहीं छोड़नी चाहिए। जिस दर पर रुपया लिया है वही देना चाहिए। और फिर ब्राह्मण के रुपये! जब सिलिया का पिता हरखू और भाई मातादीन को पकड़कर *उसके मुंह में हड्डी छुआते हैं तो होरी ब्राह्मण के प्रति इस अन्याय को न सहकर* कहता है, 'बस अब बहुत हुआ हरखू! भला चाहते हो तो यहाँ से चले जाओ।

पञ्चों और बिरादरी पर उसका अडिग विश्वास होता है। जब झुनिया के रख लेने पर बिरादरी में हो-हल्ला मचता है और पञ्चायत होरी पर डाँड लगा देती है तो होरी पञ्चों का फैसला स्वीकार करता है—'पञ्च में परमेश्वर रहते हैं। उनका जो न्याय है वह सिर-आँखों पर। अगर भगवान् की यही इच्छा है कि हम गाँव छोड़ कर भाग जायें तो हमारा क्या बस। धनिया इस अन्याय का विरोध करती हुई कहती है—*'मैं न एक दाना अनाज दूंगी न एक कौड़ी डाँड। हमें नहीं* रहना है बिरादरी में। बिरादरी में रहकर हमारी मुकुत न हो जायगी। तब होरी उसे रोकता हुआ कहता है—'धनिया तेरे पैरों पड़ता हूँ, चुप रह। हम सब बिरादरी के चाकर हैं उसके बाहर नहीं जा सकते। वह जो डाँड लगाती है उसे सिर झुकाकर मंजूर कर। आज मर जायें तो बिरादरी ही तो इस मिट्टी को पार लगायेगी।

यह दरिद्र किसान भी अपनी एक 'मरजाद' मानता है। उस मर्यादा का *पालन उसके लिए बहुत आवश्यक है। अपने बाप-दादा के दिये मकान-खेतों से उसका* मोह होता है। वह खेती करना ही अपनी मरजाद समझता है। मजूरी में उसे चाहे

जितना अधिक मिले पर वह अपनी मरजाद छोड़ना बुरा समझता है। होरी गोबर से कहता है—"हमी को खेती से क्या मिलता है ? एक आने नफरी की मजूरी भी तो नहीं पड़ती। जो दस रुपये महीने का भी नौकर है वह भी हम से अच्छा खाता पहनता है लेकिन खेतों को छोड़ा तो नहीं जाता। खेती छोड़ दें तो और करें क्या ?

फिर मरजाद भी तो पालना ही पड़ता है। खेती में जो मरजाद है वह नौकरी में तो नहीं है। वह कुल-मर्यादा का निबाह करना धर्म मानता है। अपनी लड़की सोना के विवाह में दहेज देना उसकी कुल-मर्यादा है। चाहे उधार लेकर ही दहेज देना पड़े पर कुल-मर्यादा कैसे छोड़े ! बाप-दादों की जायदाद जाने का उसे अपार दुख होता है। वह सोचता है, एक वे सपूत होते हैं जो बाप-दादों की जायदाद की रक्षा और वृद्धि करते हैं एक वह अयोग्य और अभागा है कि उसे बचा भी नहीं पाता। मकान रहन लिखने का उसे दुख है। तीन बीघा जमीन ही पूर्वजों की निशानी बची है उसकी भी बेदखली का दावा हो जाता है। वह इस निशानी को बचाने के लिए रूपा की शादी अधेड़ रामसेवक से कर देता है। वह सोचता है कन्या की ऐसी बेमेल शादी भी उसकी कुल-मर्यादा के विरुद्ध है पर क्या करे, खेतों के निकलने में भी तो मरजाद बिगड़ती है। दारोगा-द्वारा तलाशी होने में भी उसकी कुल-मर्यादा जाती है।

यह किसान होरी धर्म भीरु है, बिरादरी से डरता है ईश्वर से डरता है राजा से डरता है सरकार-हाकिमों से भय खाता है, पुलिस-दारोगा से कांपता है तलाशी को हत्या समझता है, परन्तु वैसे साहसी है। समाज की दूषित व्यवस्था से दबा होने पर भी वह प्रकृति से कायर नहीं है। धनुष-यज्ञ के प्रसंग पर मेहता पठान बनकर आता है तो जहां सब शहरी 'जवांमर्द' भयभीत हो जाते हैं, वहां होरी पठान से भय नहीं खाता वह उसे पछाड़ देता है। 'होरी गंवार था। लाल पगड़ी देखकर उसके प्राण निकल जाते थे लेकिन मस्त सांड़ पर लाठी लेकर पिल पड़ता था। वह कायर न था मरना और मारना जानता था मगर पुलिस के हथकण्डों के सामने उसकी एक न चलती थी। बंधे-बंधे कौन फिरे, रिश्वत के रुपए कहां से लाए बाल-बच्चों को किस पर छोड़े। झगड़ा करना उसकी प्रकृति के विरुद्ध था। 'मगर जब मालिक ललकारते हैं तो फिर किसका डर ? तब तो वह मौत के मुंह में भी कूद सकता है। उसने झपटकर खान की कमर पकड़ी और ऐसा अड़ंगा मारा कि खान चारों खाने चित्त जमीन पर आ रहे—।"

होरी का, मारा, पीसा, पेट की रोटियों की चिन्ता में पीसता है। वह लुटता है मालिक-महाजनों की झिड़कियां-गालियां सहता है, घर में कभी बेटे की धाक भरी बातें सुनता है कभी पत्नी की फटकार खाता है अपने भाइयों की जली-कटी

पुगता है पर सब-कुछ सहते हुए भी परिश्रम-पूर्वक कर्म करना उसकी सहज प्रवृत्ति बन गई है। इसकी कर्मशीलता कृषक की संस्कारगत प्रवृत्ति है मरना-खपना उसके भाग्य में ही बदा है। होरी भाग्यवादी है कहता भी है किसान और किसान के बैल इनको जमराज ही गिरिस दे तो मिले। (२१ वाँ परिच्छेद)। इतनी जान खपाने पर भी वह अपनी पत्नी पुत्र पतोहू पौत्र किसी को सुखी नहीं बना सका। सुख का एक क्षण भी उसकी गृहस्थी में नहीं आया। यही उसके जीवन की ट्रेजेडी है। अन्त में लड़की रूपा के बेमेल ब्याह की चोट बेटी बेचने का दुख सबसे घातक सिद्ध होता है। इस चोट ने भी उसे अपनी शक्ति से बाहर मजूरी का परिश्रम करने को उत्तेजित किया जो उसके प्राण लेकर ही रहा।

इस प्रकार होरी एक सीधा-सरल भोला-भाला साफ हृदय का किसान है। उसके छोटे-से हृदय में मानव-प्रेम की अथाह भाव-धारा है। वात्सल्य से भरा उसका हृदय अपनी सन्तान ही नहीं झुनिया सिलिया-जैसी निराश्रिताओं के लिए भी उदार बन जाता है। अपने भाइयों पर वह अब भी जान देता है। हीरा के मुँह से अपनी आलोचना और बुराई सुनकर वह झगड़ने नहीं जाता अपितु आत्म-पीड़ा का अनुभव करता हुआ गाय लौटाने को तैयार हो जाता है। उसकी कृषक प्रकृति झगड़े से दूर भागती है। चार बातें सुनकर भी चुप रह जाना ही उसके सरल स्वभाव का नियम है। अपनी पत्नी से झींखते-झगड़ते रहने पर भी वह उसके अटूट प्रेम-बन्धन में बँधा हुआ है। वह एक आदर्श ग्रामीण पति है।

कृषकोचित ये सब चारित्रिक विशेषताएँ होने के साथ-साथ होरी में कुछ निजी व्यक्तिगत चारित्रिक विशेषताएँ भी हैं। उसका चरित्र है मुख्यतः वर्गगत ही पर उसकी आकृति-प्रकृति का रेखा चित्र उसकी अतिशय उदार मानवीय भावना पेट में बात न पचा पाने तथा भोला धनिया कुमारी आदि सबकी प्रशंसा करके अपने पक्ष में कर लेने की व्यक्तिगत चारित्रिक विशेषताएँ उसके व्यक्तित्व को भी सजीव रूप प्रदान करती है।

गोबर

होरी का बेटा गोबरधन नई पीढ़ी का युवक किसान है। अपनी विषम आर्थिक दशा के कारण असन्तोष और विद्रोह उसकी नस-नस में व्याप्त हो चुका है। वह 'साँवला लम्बा एकहरा युवक है। प्रसन्नता की जगह मुख पर असन्तोष और विद्रोह छाया रहता था। अपने पिता की खुशामदी मनोवृत्ति से उसे चिढ़ है। वह स्पष्ट कहता है—"यह तुम रोज रोज मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो? बाकी न चुके तो प्यादा आकर गालियाँ सुनाता है बेगार देनी ही पड़ती है नजर-नज़राना सब तो हमसे भराया जाता है। फिर किसी की क्यों सलामी करो?

वर्ग-चेतना उसकी बहुत बढ़ी-चढ़ी है। यह छोटे-बड़े की विषमता मनुष्य ने ही उत्पन्न की है, भगवान् ने तो सबको बराबर ही बनाया है। कर्मवाद या पूर्वजन्म की बातों को भी वह दिल समझाने की बातें मानता है। 'जिसके हाथ में लाठी है वही गरीबों को कुचलकर बड़ा आदमी बन जाता है।' बड़े लोग दान धर्म-भगवद्भजन आदि गरीबों के सिर पर ही करते हैं, न करें तो पाप का धन कैसे पचे?

वह होरी के धर्मस्थापन पर व्यंग्य करता है। भोला को मुफ्त में भूसा देना उसे अच्छा नहीं लगता। जब होरी बताता है कि भोला गाय दे गया था, मैंने संकट में पड़े आदमी की गाय लेना अच्छा न समझा तो वह कहता है—'तुम्हारा यही धर्मस्थापन तो तुम्हारी दुर्गति कर रहा है। साफ-साफ तो बात है। अस्सी रुपये की गाय है, हमसे बीस रुपये का भूसा लेलें और गाय हमें दे दें। साठ रुपये रह जायेंगे वह हम धीरे-धीरे दे देंगे।'

गोबर अन्याय को सहन नहीं कर सकता। शहर में रह लेने पर उसका विद्रोह सक्रिय हो जाता है। वह दातादीन का एक रुपया सैकड़े के हिसाब से ही ब्याज देना चाहता है। वह होरी को साफ कहता है किसी को एक पैसा मत दो। सब महाजनों से एक रुपया सैकड़ा ब्याज कराना होगा। मोटेराम की बेईमानी पर वह उसे ऐसा फटकारता है कि मोटेराम देखता रह जाता है। वह सब शोषकों की खबर लेता है। सारे गाँव के युवक उसे नेता बना लेते हैं। होली के दिन वह अपने द्वार पर मण्डली जमाता है। रात-भर शोषक महाजनों और ग्राम-स्तम्भों की नकलें होती हैं। वह उन पंचों पर दावा करना चाहता है जिन्होंने उस पर डाँड़ लगाया था। वह सबके सामने अपनी हेकड़ी जमाता है। वह अधिक दिन रहे तो इन शोषकों का मिजाज ठीक कर दे। उसकी विद्रोही प्रकृति मजदूर-संघर्ष में भी पीछे नहीं रहती। झुनिया के मना करने पर भी वह आग में कूद पड़ता है और बुरी तरह घायल होता है।

आरम्भ में वह एक अल्हड़ युवक दिखाई देता है। प्रेम और पुरुष-स्त्री के सम्बन्धों में वह झुनिया से पीछे दिखाई देता है। "गाँव में जितनी युवतियाँ थीं वह या तो उसकी बहनें थीं या भाभियाँ। भाभियों से कभी-कभी वह ठठोली कर लिया करता था पर वह केवल सरल विनोद था। झुनिया से बढ़ावा पाते ही 'उस कुमार में भी पत्ता खड़कते ही किसी सोये हुए शिकारी जानवर की तरह यौवन जाग उठा। जब झुनिया उसे उत्तर में कहती है कि तुम द्वारे आने वाले भिक्षुओं को मैं मुँह नहीं लगाती। ऐसे तो कभी-कभी मिलते हैं। फिर भिक्षुक देता क्या है असीस ! असीसों से तो किसी का पेट नहीं भरता। मन्दबुद्धि गोबर उसका आशय नहीं समझ पाता। झुनिया ने भी तरल भाव से उसकी ओर देखा जिसका भाव है कुछ समझता ही

नहीं। जब झुनिया 'सर्वस देने' की बात कहती है तो वह कहने लगता है—'मेरे पास क्या है झुनिया ?

परन्तु एक बार गौबन जाय जाने पर वह उसके नशे में डूब जाता है। झुनिया को वह जब अपने साथ ले जाता है तो ताड़ी पीने लगता है अपनी काम क्षुधा को तृप्त करने के लिए वह वक्त-बेवक्त झुनिया को तंग करता है। वह आधी रात बीते घर आने लगता है। गर्भ-भार से दबी दुखी झुनिया की वह उपेक्षा करने लगता है। यहाँ तक कि वह झुनिया के प्रसव के प्रति बेपरवाही करता है।

वह स्वभाव का उद्दण्डी है। अपने अभिमान और उद्दण्डता में वह इतना आगे बढ़ जाता है कि अपने माता-पिता को भी जली-कटी सुनाने लगता है। वह यहाँ तक कहने से भी नहीं झिझकता कि माँ-बाप भी पैसे के मतलबी हैं। मैं कहाँ-कहाँ तक तुम्हारी करनी भुगतूं मेरे भी तो बाल-बच्चे हैं। उसके मुख से इतनी बड़ी बड़ी बातें कहलवाकर प्रेमचन्दजी ने कुछ अति कर दी है। यह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी सगत-सा नहीं लगता। जो गोबर शहर जाते हुए रास्ते में यह सोचता जाता था कि वह शहर में खूब मेहनत करेगा रुपये कमायगा और सबसे पहले एक पछाँही गऊ लायेगा और दादा से कहेगा कि बस गऊ माता की सेवा करो ताकि तुम्हारा यह लोक और परलोक दोनों सुधरें जो झुनिया को घर में रख लेने पर माता पिता के प्रति कृतज्ञता और सम्मान-भावना प्रकट करता है। वह माता-पिता से इतनी बुराई स पेश आये यह कुछ अजूत-सा नहीं लगता। फिर उसका स्वभाव उद्दण्डता से ओत प्रोत है इसमें सन्देह नहीं। हो सकता है पैसे की गर्मी ने उसे अधिक अभिमानी बना दिया हो। चार पैसे कमाकर वह एक तरह से महाजन बन ही गया था।

चोट लगने के बाद जब झुनिया उसकी खूब सेवा-सुश्रूषा करती है तब स्वस्थ होने पर उसकी मानवता जाग उठती है। अब वह झुनिया के प्रति अपने अत्याचारों से पछताता है। उससे क्षमा-याचना करता है। रूपा के विवाह में जब वह दोबारा घर आता है तो अपने माता-पिता के प्रति उसका अत्यन्त विनम्र व्यवहार उसके स्वभाव के परिवर्तन का परिचायक है। अब उसमें गम्भीरता आ जाती है। वह सोचने-विचारने लग गया है। जब होरी रूपा के विवाह के अपने अपराध पर उसके सामने फूट पड़ता है तो वह पिता को सान्त्वना ही देता है और उनका कोई दोष नहीं मानता। 'जिसे पेट की रोटियाँ ही मयस्सर नहीं उसके लिए मरजाद और सम्मान सब ढोंग है। वह अब अपनी जिम्मेवारी समझने लगा है। वह सब महाजनों की किस्तें कराकर स्वयं अदा करने की बात चलाता है। उसने अब समझ लिया है कि 'अपना भाग्य खुद बनाना होगा अपनी बुद्धि और साहस से इन आफतों पर विजय पाना होगा। कोई देवता कोई गुप्त शक्ति उनकी मदद करने न

लेगी। और उसमें पहली संवेदना सजग हो उठी है। अब उसमें वह पहले की स्पष्टता और अक्खड़ नहीं है। वह नम्र और उद्योगशील हो गया है। होरी को अब कोई काम करते देखता है तो उसे हटाकर खुद करने लगता है जैसे पिछले दुर्व्यवहार का प्रायश्चित करना चाहता हो। कहता है दादा अब कोई चिन्ता मत करो सारा भार मुझ पर छोड़ दो मैं अब हर महीने खर्च भेजूंगा इतने दिन तो खेते-खपते रहे कुछ दिन तो आराम कर लो मुझे धिक्कार है कि मेरे रहते तुम्हें इतना कष्ट उठाना पड़े। वह गाँव की दुर्दशा देखकर अब विशेष दुखी होता है।

इस प्रकार गोबर के चरित्र का बड़ा स्वाभाविक विकास प्रेमचन्दजी ने प्रस्तुत किया है। बीच में उसकी माता पिता के प्रति अतिशय उद्दण्डता जरा अखरती है अन्यथा उसके चरित्र की सभी रेखाएँ अत्यन्त सजीव हैं।

जमींदार रायसाहब अमरपालसिंह—रायसाहब अमरपालसिंह २० वीं शती का जमींदार है जो अपने वर्ग की समस्त दुर्बलताओं से परिचित है। उसके चरित्र में एक जबरदस्त विरोधाभास है। एक ओर वह अपने वर्ग और जमींदारी-पद्धति की भरपूर आलोचना करता है दूसरी ओर उसमें बुरी तरह चिपका हुआ भी है। वह आज के बौद्धिक युग का जमींदार है। अपने पूर्वजों से वह बहुत भिन्न हो गया है। आज के बौद्धिक युग में कोई सम्राट, कोई सामन्त अथवा पूंजीपति अपने स्वरूप का बौद्धिक औचित्य प्रकट किये बिना सम्मान नहीं पा सकता। इसी से जमींदार रायसाहब को एक तरह रंगा सियार बनना पड़ता है। वह 'प्रेमाश्रम' के राय कमलानन्द का ही विकसित रूप है। सिद्धान्त रूप में वह पूरा समाजवादी या साम्यवादी है जो अपने वर्ग और सम्पूर्ण सामन्तीय एवं पूंजीवादी समाज-व्यवस्था का विरोध करता है। विचारधारा की दृष्टि से वह पूर्ण प्रगतिवादी है। किन्तु उसके मन वचन और कर्म में भारी भेद है। वह दिखावे के लिए राष्ट्रवादी बना फिरता है एक बार जेल भी हो आया है वह प्रचारित करता है कि वह असामियों को रियायतें देना चाहता है दिखाने के लिए उसने गाँव की काफी जमीन चरागाह के लिए छोड़ी हुई है—होरी कहता है 'कई किसान इस चहड़े (गाँव की जमीन) का पट्टा लिखाने को तयार थे। अच्छी रकम देते थे पर ईश्वर भला करे राय साहब का कि उन्होंने साफ कह दिया—यह जमीन जानवरों की चराई के लिए छोड़ दी गई है और किसी दाम पर भी न उठाई जायगी। कोई स्वार्थी जमींदार होता तो कहता कि गायें जायँ भाड़ में हमें रुपये मिलते हैं तो क्यों छोड़ें'। किन्तु यह सब दिखावा-मात्र है लोगों में अपना सिर रखने के लिए बाह्याडम्बर है। मेहता रायसाहब को आड़े हाथों लेते हुए कहते हैं— मैं चाहता हूँ हमारा जीवन हमारे सिद्धान्तों के अनुकूल

आदि सबकी कड़वी बातों को पी जाते हैं। इस दृष्टि से राजा सूर्यप्रताप से उनका भेद स्पष्ट है। राजा सूर्यप्रताप रायपाल के साथ अपनी लड़की के विवाह में काँटा बनी हुई सरोज के अस्तित्व को ही मिटा डालने की नीच बात कहते हैं, जबकि रायसाहब ऐसा सोच भी नहीं सकते। रायसाहब अपने वर्ग के लोगों की मनोवृत्ति के बिल्कुल विपरीत भोग-विलास से कोसों दूर हैं। वह विधुर-जीवन ही बिताते हैं दूसरी शादी तक नहीं करते। शराब नहीं पीते। वह स्पष्ट कहते हैं—हम लोगों (अपने वर्ग के भाई बन्धुओं) ने भूख मांस विलास में फँसाने के लिए कम चालें नहीं चलीं और अबतक चलते जाते हैं। इस प्रकार रायसाहब का चरित्र अत्यन्त सजीव और स्वाभाविक है। उसके चरित्र में प्रेमचन्द ने जो विरोधाभास प्रस्तुत किया है वह एक अत्यन्त सफल मनोवैज्ञानिक युग-सत्य है।

मेहता

डा० मेहता यूनिवर्सिटी में दर्शन-शास्त्र के अध्यापक हैं। उनका चरित्र आदर्शवादी है। 'गोरा चिट्टा रंग स्वास्थ्य की लालिमा गालों में चमकती हुई, नीची अचकन चूड़ीदार पाजामा सुनहरी ऐनक सौम्यता के देवता से लगते हैं। 'दर्शन के गहरे अध्ययन में भी डा० बी० मेहता ने अपने स्वास्थ्य की पूरी रक्षा की थी।" उनकी मांसल भुजाएँ चौड़ी छाती और मछलीदार जाँघें किसी पुरानी प्रतिमा के सुगठित अङ्गों की भाँति उनके पुरुषार्थ का परिचय दे रही थी। ऐसा आकर्षक व्यक्तित्व है मेहता का। उनकी योग्यता और व्यक्तित्व की विशिष्टता पर मालती एकबारगी मुग्ध हो जाती है।

मेहता अपनी आत्मा का सच्चा पुत्र है। उसे दिखाव और बनावट से घृणा है। उसके मन-वचन और कर्म में सङ्गति है। वह जो कहता है वही करता है। उसका चरित्र व्यक्ति-वैचित्र्य से पूर्ण है। दर्शन का प्राध्यापक होते हुए भी वह विनोद प्रिय फक्कड़ और मस्त है। शिकार में वह बहुत आनन्द लेता है। प्रकृति के बीच वह चहक उठता है। प्रकृति उसके लिए आह्लाद और प्रेरणा की वस्तु है। अपने बगीचे में उसने तरह-तरह के फूल-पौधे लगवाये हुए हैं और घण्टों उनमें खो जाता है। चाँदनी रात में नदी के तट पर वह चहक उठते हैं। वह स्वयं मालती से कहते हैं—'प्रकृति का स्पर्श होते ही जैसे मुझमें एक नया जीवन आ जाता है। नस-नस में स्फूर्ति दौड़ने लगती है। एक-एक पक्षी एक-एक पशु जैसे मुझे आनन्द का निमन्त्रण देता हुआ जान पड़ता है।" यह आनन्द मुझे और कहीं नहीं मिलता—सङ्गीत के मोहक स्वरों में भी नहीं दर्शन की ऊँची उड़ानों में भी नहीं। मेहता की मस्ती का यह हाल है कि शराब पीकर वह ऐसा मस्त हो जाता है कि 'उस मस्ती में उनका बचपन उड़ जाता है और विनोद सजीव हो जाता है। खान का अभिनय करने और

सेंड़ बाबा से रुपये झाड़ लाने में उनकी बिदादिली सजीव हो उठी है। अभिनय का उन्हें बहुत शौक है। इस धारने में वह मक्खे-मच्छों को चकित कर देते थे।

आत्मसेवा से बढ़कर उनकी नजरों में कोई पाप नहीं था। उनका जीवन परोपकार, परसहायता और उदारता का जीवन है। अपने वेतन का अधिकांश वह गरीब विद्यार्थियों अनाथों और विधवाओं की सहायता में दे देते हैं। अपने बारे में वह इतने लापरवाह हैं कि पुरानी अचकन से ही काम चलाते आ रहे हैं। नई बन वाने का उन्हें ध्यान ही नहीं। अपने व्यय का वह कोई हिसाब नहीं रखते। मकान का किराया कई-कई महीने चुक जाता है। उनकी घरेलू व्यवस्था मालती ही ठीक करती है। जब मालती उनके लिए दो नई अचकनें और एक नई म.ी मँगाकर देती है तो संकोच के मारे मेहता कई दिन घर से बाहर ही न निकले। आत्मसेवा से बड़ा उनकी नजर में दूसरा अपराध न था।

मेहता सतत् कर्मशील व्यक्ति हैं। अपना समय वे व्यर्थ नहीं गँवाते। 'डा० मेहता को काम करने का नशा था। आधी रात को सोते थे और बड़ी रात रहे उठ जाते थे। कैसा भी काम हो उसके लिए वे कहीं न कहीं से समय निकाल लेते थे। हाकी खेलना हो या यूनिवर्सिटी डिबेट हो ग्राम्य संगठन हो या किसी शादी का नेवता सभी कामों के लिए उनके पास लगन थी और समय था। लेखक के रूप में भी उनकी व्यस्तता कुछ कम नहीं थी। वह पत्रों में लेख लिखते थे। वह कई साल से एक वृहत् दर्शन-ग्रन्थ लिख रहे थे। अपने बगीचे में बैठे वह पौधों पर विद्युत संचार क्रिया की परीक्षा करते थे। उन्होंने हाल में एक विज्ञान परिषद् में यह सिद्ध किया था कि फसलें बिजली के जोर से बहुत थोड़े समय में पैदा की जा सकती हैं। उनकी पैदावार बढ़ाई जा सकती है और बेफसल की चीजें भी उपजाई जा सकती हैं। आखिर अपने अनवरत परिश्रम का वह फल पाते हैं। उनकी एक रचना को फ्रांस की एकेडमी ने इस शताब्दी की सबसे उत्तम कृति कहकर सम्मानित किया।

मेहता का विविध जीवन-दर्शन है जो पहले प्रकट कर आए हैं। वह रूप की अपेक्षा गुणों से आकर्षित होते हैं। नव युग की रमणियों से पनाह माँगते थे। पुरुषों की मण्डली में खूब चहकते पर ज्योंही कोई महिला आई, आपकी जबान बन्द हुई। वह नारी-स्वच्छन्दता के विरोधी हैं। नारी का आदर्श वह सेवा त्याग स्नेह और कष्ट-सहन-परायणता मानते हैं। मातृत्व उसकी उच्च सिद्धि है। नारी का कार्यक्षेत्र वह सेवा त्याग परोपकार, उदारता आदि में ही स्वीकार करते हैं व्यर्थ के अन्य क्षेत्रों में नहीं। फैशन और विलास-भावना से उन्हें चिढ़ है। गोविन्दी को वह आदर्श नारी मानते हैं। दाम्पत्य से बाहर नर-नारी के प्रेम को वह धोखा कहते हैं। गोविन्दी के प्रति श्रद्धा से गद्‌गद् होकर वह उसके जरा-से संकेत पर जीवन-भर शराब न पीने की

भी मानता हूँ कि दौलत इन्सान को कितना खुदगरज बना देती है कितना ऐश पसन्द कितना मक्कार, कितना बेगरत।

'मिर्ज़ा का हाता क्लब भी है कचहरी भी अखाड़ा भी। दिन भर जमघट लगा रहता है। मुहल्ले में अखाड़े के लिए कहीं जगह न मिलती थी। मिर्ज़ा ने एक छप्पर डलवाकर अखाड़ा बनवा दिया। वहाँ नित्य सौ-पचास लड़न्तिये आ जुटते हैं। मिर्ज़ाजी भी उनके साथ जोर करते हैं। मुहल्ले की पचायतें भी यहीं होती हैं। मिर्ज़ा की उदार प्रकृति है कि गोबर उनकी कोठरी में साल भर रहता है मगर उन्होंने एक पैसा किराया नहीं लिया। शराब की लत मिर्ज़ा को गोबर से रुपये उधार माँगने पर मजबूर करती है। उनके हाथ में रुपये टिकते ही न थे इधर आये उधर गायब। शराब के बिना मिर्ज़ा जिन्दा नहीं रह सकते। वह दो रुपये न अपनी अँगूठी तक गोबर के पास रखने को तैयार हो जाते हैं।

मिल-मालिक चन्द्रप्रकाश खन्ना व्यावसायिक बुद्धि का पूँजीपति है। वह एक मामूली आदमी से बैंक का मैनेजर और उद्योगपति बन जाता है। शक्कर मिल खोल लेता है। पैसा कमाने के लिए जो 'तपस्या' करनी पड़ती है वह उसने खूब की। सारा दिन धन कमाने की धुन में लगा बीवी-बच्चों और घर से वैराग्य लिया। अपने सिद्धान्तों की हत्या की। मिल में किसानों की ऊख तौलने के लिए खास नौकर रखे नकली बाट रखे 'बिज़नेस इज़ बिज़नेस' का टका-सा मन्त्र अपनाया तब कहीं जाकर दौलत जमा हुई। शक्कर मिल में आग लग जाने से उन्हें भारी दुःख हुआ। वह सिर पीट लेता है। धन की हानि से उनकी मानवता जाग जाती है। वह अब अनुभव करने लगे हैं कि गोविन्दी के प्रति उन्होंने कितना अत्याचार किया।

खन्ना के चरित्र में भी प्रेमचन्दजी ने मानवीय 'सु' और 'कु' प्रवृत्तियों का अच्छा द्वन्द्व प्रस्तुत किया है। 'अन्य कितने ही प्राणियों की भाँति खन्ना का जीवन भी दोहरा या दो-रुखी था। एक ओर वह त्याग और जनसेवा और उपकार के भक्त थे तो दूसरी ओर स्वार्थ और विलास और प्रभुता के। कदाचित् उनकी आत्मा का उत्तम आधा सेवा और सहृदयता से बना हुआ था मध्यम आधा स्वार्थ और विलास से। पर उत्तम और मध्यम में बराबर संघर्ष होता रहता था। और मध्यम ही अपनी उद्दण्डता और हठ के कारण सौम्य और शांत उत्तम पर गालिब आता था। उनका मध्यम मालती की ओर झुकता था उत्तम मेहता की ओर। मिल में आग लगने से पूर्व खन्ना का मध्यम प्रबल था। वह अपने धन के नशे में विलास और ऐश्वर्य को ही जीवन समझते थे। मिस मालती पर वह बुरी तरह रीझे हुए थे। वह इसी कारण अपनी सती-साध्वी पत्नी गोविन्दी को भी खातिर में नहीं लाते थे पर बच्चों से विशेष लगाव नहीं रखते थे। मालती की एक-एक फर्माइश पूरी करना वह

अपना कर्तव्य समझते थे। उनकी व्यावसायिक बुद्धि अपने मित्रों से भी लाभ कमाने में नहीं हिचकती थी। जब रायसाहब को इलेक्शन और मुकदमा लड़ने तथा लड़की की शादी करने के लिये रुपये की सख्त जरूरत होती है, तो खन्ना अपने प्रयत्नों से बड़ी कठिनाई से रुपया दिलाने की सूरत में अपना कमीशन माँग लेते हैं। रायसाहब उनके अन्तरंग मित्रों में थे। पर इस मामले में लिहाज करना उन्होंने सीखा ही न था। 'बिजनेस इज बिजनेस'—भला व्यापार में भाई और मित्र कैसे? व्यापार व्यापार है मित्रता और भाईचारा अलग बात है। इस प्रकार की स्वार्थी मनोवृत्ति वाले खन्ना की आँखें तब खुलती हैं जब उसकी मिल जलकर राख हो जाती है। वह सिर पीट लेता है सान्त्वना के वचनों को पाने के लिए निरीह प्राणी की तरह मेहता और गोविन्दी की ओर देखता है। इसके साथ ही जब मालती उसे अँगूठा दिखा जाती है तब उसे अपनी पत्नी के सच्चे प्रेम का ज्ञान होता है। तब उसका दम्भ गलित हो जाता है और मनुष्य जग जाता है।

शहरी पात्रों में 'बिजली'-सम्पादक ओंकारनाथ भी उल्लेखनीय हैं। आप खद्दर के धोती-कुरता पहनते हैं और ऐनक लगाते हैं। 'देश-चिन्ता ने इन्हें घुला डाला है। प्रेमचन्द ने समाज में विकसित होने वाले नये-नये वर्गों और उनके प्रतिनिधि व्यक्तियों का भी ध्यान रखा है। शहरी पात्रों में पत्रकार ओंकारनाथ और खन्ना ऐसे ही व्यक्ति हैं। ओंकारनाथ अपना पत्र चलाने के लिए एड़ी चोटी का जोर लगाते हैं। सिद्धान्त उन्होंने बहुत ऊँचे बना रखे हैं—जनता की सेवा सच्चाई और स्वदेशी आदि देश-हितों की रक्षा अन्याय का पर्दाफाश करके न्याय की निर्भीक प्रतिष्ठा आदि उनके आदर्श हैं पर सिद्धान्तों और व्यवहार में टक्कर होती रहती है। उनके पत्र को आर्थिक संकट हरदम रहता है। इसे दूर करने के लिए उन्हें अपने सिद्धान्तों को किनारे रखना पड़ता है सहायता के लिए याचना करनी पड़ती है और स्वार्थ का पल्ला पकड़ना पड़ता है। स्वदेशी के जबरदस्त हामी होते हुए भी विज्ञापन का लाभ कमाने के लिए, विदेशी दवाइयों और वस्तुओं के वह विज्ञापन छापते हैं। रायसाहब से भी ग्राहकों के चन्दे का वायदा पाकर उनकी सत्य-वाणी गूँगी हो जाती है। पत्र की सहायता के लिए वह मिसेस खन्ना की चापलूसी करते हैं। अपने पत्र को जनता में लोकप्रिय बनाने के लिए वह कोई-न-कोई शिगूफा छेड़े रखना चाहते हैं। मजदूरों को भड़का कर हड़ताल करा देते हैं पर कुर्बानी के वक्त पीछे हट जाते हैं।

ओंकारनाथ सरल-सीधे स्वभाव के हैं। जरा-सी प्रशंसा और सहानुभूति से वह फूल जाते हैं। धनुष-यज्ञ-अभिनय पर मालती जिस ढंग से उनका उल्लू बनाती है कोई पत्रकार शायद ही ऐसा हुआ हो कि मालती के मजाक को न समझ पाए। पर ओंकारनाथ की यह विचित्र दुर्बलता है। इसी कारण उनकी [illegible]

कहती है— "इसीलिए तो मैं तुम्हें भुग्ग कहती हूँ कि किसी ने सहानुभूति दिखाई और तुम फूल उठे।" मालती-द्वारा प्रशंसा सुनकर ओंकारनाथ ऐसा उल्लू बन गया कि शराब न पीने के अपने नियम को भी उसने एक क्षण में तोड़ डाला।

श्यामबिहारी तंखा एक और विचित्र शहरी पात्र है। वह इस ढंग के नवयुग के स्वार्थी व्यक्तियों का प्रतिनिधि भी है और अपने विचित्र रूप चरित्र से व्यक्ति-विशिष्ट भी है। 'दूसरे महाशय जो कोट-पैन्ट में हैं वह हैं तो वकील पर वकालत न चलने के कारण एक बीमा-कम्पनी की दलाली करते हैं। और ताल्लुकेदारों को महाजनों एवं बैंकों से कर्ज दिलाने में वकालत से कहीं ज्यादा कमाई करते हैं। तंखा पूरा स्वार्थी और चालबाज आदमी है। वह जहाँ जाता है अपने मतलब की बात करता है। शिकार में उसे कोई रुचि नहीं। प्रेमचन्द उसका परिचय देते हुए कहते हैं 'मि० तंखा दाँव-पेंच के आदमी थे, सौदा पटाने में, मुआमला सुलझाने में, अड़ंगा लगाने में, बालू से तेल निकालने में, गला दबाने में, दुम झाड़ कर निकल जाने में बड़े सिद्धहस्त। कहिये तो रेत में नाव चला दें, पत्थर पर दूब उगा दें। ताल्लुकेदारों को महाजनों से कर्ज दिलाना, नयी कम्पनियाँ खोलना, चुनाव के अवसर पर उम्मेदवार खड़े करना—यही उनका व्यवसाय था। खासकर चुनाव के समय उनकी तकदीर चमकती थी। किसी पोढ़ उम्मीदवार को खड़ा करते दस-बीस हजार बना लेते। जब जिसका जोर देखा उधर हो गये। शहर के रईसों व अफसरों से मेल-जोल रखते थे। वह रायसाहब को राजा सूर्यप्रतापसिंह के विरुद्ध खड़ा कर देता है इस विश्वास पर कि बाद में राजा साहब से बीस-तीस हजार उड़ाकर राय साहब को बिठा दिया जाय। मगर इस तरह कुछ बनता न देख और रायसाहब से कुछ मिलने की उम्मीद न पाकर राजा सूयप्रतापसिंह का पक्ष लेता है और उनसे दस-बीस हजार बनाना चाहते हैं। राजा सूर्यप्रतापसिंह उसे परले दर्जे का बेईमान कहता है। जब रायसाहब मिनिस्टर बन जाते हैं तो तंखा उनकी खुशामद और चिरौरी के लिये हाजिर हो जाता है। वह मतलब के लिए गधे को भी बाप बना लेता है। जब खुर्शेद उसे यह लोभ देते हैं कि वह चुनाव में तंखा की मर्जी के मुताबिक खड़े हो जायेंगे और जैसे वह कहेंगे बैठ जायेंगे तब लोभ में आकर वह हिरन को उठा ले चलता है। मिर्जा खुर्शेद ने उसको खूब उल्लू बनाया।

गाँव के पुरुष-पात्रों में—दातादीन, झिंगुरी, नोखेराम, पटेश्वरी आदि एक *ही थैली के चट्टे-बट्टे शोषक पात्र हैं। ये ग्राम-समाज के स्तम्भ बने हुए हैं* और अपने धन और पैसे की उच्चता से प्रतिष्ठित हैं। धर्म-कर्म, पूजा-पाठ, छापा-तिलक सब करते हैं पर भगवान के सामने से उठते ही इनकी मनुष्यता न-जाने कहाँ भाग जाती है। ये सब स्वार्थी-शोषक हैं। बेगार और दलाली, अत्यधिक सूद लेकर ये किसानों

को छूते हैं। पर इनके भी व्यक्तित्व की विशिष्ट अलग-अलग रेखाएं स्पष्ट प्रस्तुत की गई हैं। झिंगुरीसिंह सबसे अलग—'मोटे मोटे अक्खाट, काला लम्बी नाक और बड़ी-बड़ी मूछों वाले आदमी थे बिल्कुल विदूषक जैसे। और वे भी बड़े हँसोड़। इस गाँव को अपनी ससुराल बनाकर मर्दों से साले या ससुर और औरतों से साली या सलहज का नाता जोड़ लिया था। रास्ते में लड़के उन्हें चिढ़ाते—पण्डितजी पालागी। (क्योंकि ठाकुर झिंगुरी ने एक ब्राह्मणी रखी हुई थी)। और झिंगुरीसिंह उन्हें चटपट आशीर्वाद देते—तुम्हारी आँखें फूटें घुटना टूटे— आदि— मगर लेने-देने के मामले में वह कठोर थे। वह शहर के बड़े महाजन का एजेन्ट है। पक्का स्टाम्प लिखाता है, नजराना अलग लेता है, दस्तूरी अलग स्टाम्प की लिखाई अलग। म पर एक साल का ब्याज अलग पेशगी काटकर रुपया देता है। पचीस रुपये का मन लिखो तो मुश्किल से सत्रह रुपये हाथ लगते थे।

नोखेराम—'नाटे मोटे अक्खाट लम्बी नाक और छोटी-छोटी आँखों वाले से आदमी थे। बड़ा-सा पगड़ बाँधते नीचा कुरता पहनते और जाड़ों में लिहाफ ओढ़कर बाहर आते-जाते थे। उन्हें तेल की मालिश कराने में बड़ा आनन्द आता था इसलिए उनके कपड़े हमेशा मैले चीकट रहते थे। राम-भक्ति उन्होंने पिता की परम्परा से पाई थी। बच्चे बैठे पत्तियाँ बजाते थे। वेतन तो थोड़ा ही था पर रोब बहुत था। जमींदार रायसाहब के कारिन्दे थे। उसी से लगान वसूल करते थे। बेगार लेना नजर-नजराना उगाना और कभी-कभी बेईमानी से दोबारा लगान वसूल करना तथा महाजनी चलाना उनके भयङ्कर अस्त्र हैं। डाँड-रिश्वत का मौका भी नहीं छोड़ते। गोबर के प्रसंग में उनकी विशिष्टता पूरी तरह लक्षित होती है। गोबर को वह रख लेते हैं। कोई उनकी या गोबर की शान में एक शब्द भी ऐसा-वैसा नहीं कह सकता। पटेश्वरी को वह ऐसा आड़े हाथों लेते हैं कि वह खत्म हो जाता है।

दातादीन गाँव के नारद हैं। जन्म में शादी-ब्याह में मरण में सब अवसरों पर पुरोहित बनकर लेने वाले। पोथी-पत्रा बाँचकर वह कमाएँ बेगार वह लेवें महाजनी उनकी डाँड-नजराना उनका। धर्म के नाम पर शोषण वह करें व्यवहार के नाम पर वह। स्वार्थी और हृदय-हीन। अपनी जवानी में कम रसिया भी नहीं थे। हँसते हुए उनकी हँसी लम्बी मूछों में छिप जाती है। जात-पाँत छुआ-छूत उनका सामाजिक विधान है। उनका बेटा मातादीन भी आरम्भ में पिता का अनुचर है। वह सिलिया चमारिन को फँसा लेता है। उसका सब तन-मन ले लेता है पर अपना छोक-छराम भी नहीं देता। पर चमारों-द्वारा उसकी दुर्गति होने पर, उस को पश्चाताप करना पड़ता है और वह बीमार रहता है उससे उसकी मानवता जाग्रत हो जाती है। प्रेमचन्द के पात्रों में एक यह भी सामान्य मनोवैज्ञानिक तथ्य रहता है कि

अपने पुत्र और सोना की विधवा लड़की के सम्बन्ध को भाप लेती है। वह दारोगा और पंचों की बदमाशी समझ जाती है। गाय आने के बाद जब रात को हीरा की बात सुनकर होरी का मन क्षुब्ध हो जाता है और वह गाय वापस लौटाने की सोचता है और धनिया से कहता है कि लोग हमारी चर्चा करते हैं कहते हैं भाइयों के बाँट हुए रुपयों से ही गाय लाई गई है तो धनिया एक दम भाँप जाती है कि यह स्वर किसका है। वह निश्चित भाव से कहती है— "हीरा कहता होगा ?"

वह एक अनपढ़ औरत है। अत: ऐसी नारी में विद्यमान अन्ध-विश्वास आदि दुर्बलताएँ भी उसमें पाई जाती हैं। गाय के आने पर उसे नजर लगने का भय है। वह गाय को बाहर बाँधने नहीं देती। वह गाय के गले में काला धागा बाँध देती है। अपने देवरों के प्रति भी उसके मन में क्रोध और असहिष्णुता का भाव है। वह हीरा से भिड़ जाती है और उसे जेल भिजवाने पर तैयार हो जाती है। जिन देवर-देवरानियों के लिए एक समय उसने इतना किया अपनी जान खपाई, देवरों को पुत्रों की तरह रखा उनकी ईर्ष्या और जलन वह सह नहीं सकती। अपनी जरा सी प्रशंसा सुनकर धनिया फूल जाती है। पहले तो वह सोना को भूसा देने का बहुत विरोध करती है पर जब होरी कहता है कि सोना तेरी बहुत प्रशंसा कर रहा था—'ऐसी लक्ष्मी है ऐसी समझदार है! तो यह सुनकर धनिया के मुख पर स्निग्धता झलक आती है हृदय गद्‌गद् हो जाता है। वह एक नहीं तीन-तीन बड़े झाँबे भूसे के भरकर देने का आग्रह करने लगती है। होरी उसके इस परिवर्तनशील स्वभाव की आलोचना करता हुआ कहता है— 'या तो चलेगी नहीं या चलेगी तो दौड़ने लगेगी।

इस प्रकार धनिया का चरित्र एक कृषक-नारी का वर्गगत सजीव रूप भी है और व्यक्तिगत विशिष्टता से ओत-प्रोत भी। अपनी परिश्रमशीलता मातृत्व स्नेह दया ममता असन्तोष अन्धविश्वास सामाजिक नैतिक विश्वास जबान की तेजी आदि में वह सोलह आने अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है किन्तु अपनी अतिशय उदारता अन्यतम साहस (गण्डासिंह जैसे दारोगा को भी लताड़ देने में—जिसके एक मामूली प्यादे-सिपाही की लाल पगड़ी से उसके मर्द किसान भय खाते हैं) अपने अनोखे रूप में वह विशिष्ट है। धनिया के चरित्र में विद्रोह है असन्तोष है क्रोध है होरी में नम्रता झुकना दबना समझौता करना विवश रह जाना खून के घूंट पीना है। होरी के लिए प्रतिरोध का अर्थ है चुप रह जाना आत्मपीड़न या विवशता जाहिर करना पर धनिया के लिए प्रतिरोध का अर्थ है विद्रोह अन्याय के खिलाफ खुला आवाज उठाना खिल्ली उड़ाना व्यंग्य करना क्रोध से फुंकार मारना। उसके दग्ध हृदय से निसृत असन्तोष और विद्रोह की ज्वाला तथा ममता का पिघला हुआ मोम दोनों ही स्थान-स्थान पर शब्द-रूप लिये पड़े हैं।

सिलिया, झुनिया और सोना 'गोदान' के तीन नारी-पात्र ऐसे हैं जिनके जीवन और चरित्र में दाम्पत्य-प्रेम के तीन भावना भिन्न-भिन्न रूपों में मिलते हैं। सिलिया चमारिन है, 'साँवरी सलोनी छरहरी बालिका जो रूपवती न हो कर भी आकर्षक थी। उसके हास में चितवन में अङ्गों के विलास में हर्ष का उन्माद था जिससे उसकी बोटी-बोटी नाचती थी। मातादीन के प्रेम में वह फँस जाती है। इसी प्रेम में उन्मत्त हुई वह मातादीन के खेत-खलिहानों में खूब परिश्रम से काम करती है 'सिर से पाँव तक भूसे के अणुओं में सनी पसीने से तर, सिर के बाल आधे खुले वह दौड़ दौड़ कर अनाज ओसाती है, मानो तन-मन से कोई खेल खेल रही हो। इसी प्रेम ने उसे स्वच्छन्द और मन-मौजी बना दिया है। वह जात-बिरादरी माँ-बाप-भाई, मरजाद किसी की परवाह नहीं करती। अपने प्रेम में वह एकनिष्ठ है। लम्पट मातादीन उससे छला करता है। सिलिया को भी दुख तो होता है जब मातादीन उसके दिये हुए मुट्ठी-भर दाने दुलारी सहुआइन के पल्ले से झड़वा लेता है और कहता है—तूने अनाज क्यों दे दिया? किससे पूछकर दिया? तू कौन होती है मेरा अनाज देने वाली? सिलिया हक्का-बक्का होकर मातादीन का मुँह देखने लगती है। 'ऐसा जान पड़ा जिस डाल पर वह बैठी हुई थी वह टूट गई है और अब वह निराधार नीचे गिरी जा रही है। परन्तु इस क्षणिक दुख के बाद उसका मन प्रेम में दृढ़ हो जाता है। यदि मातादीन उसका तन और मन दोनों लेकर भी बदले में कुछ नहीं देना चाहता उसे अब काम करने की मशीन-मात्र समझता है तो वह तो धर्म नहीं छोड़ सकती। घर वालों और बिरादरी के आक्रमण और अत्याचार ने उसके अनुराग को और भी प्रचण्ड बना दिया। वह अपनी माता और भाइयों के साथ जाने पर राजी नहीं होती उनकी मार खाती रहती है। बाप के पैरों से लिपट कर वह रोती हुई कहती है—मार डालो दादा सब जने मिल कर मार डालो। हाय! मेरे पीछे पण्डित को भी तुमने भिरस्ट कर दिया। उसका धरम लेकर तुम्हें क्या मिला? अब तो वह भी मुझे न पूछेगा लेकिन पूछे या न पूछे, रहूँगी तो उसी के साथ। मुझे चाहे भूखी रखे चाहे मार डाले पर उसका साथ न छोड़ूँगी। ... मर जाऊँगी पर हरजाई न बनूँगी एक बार जिसने बाँह पकड़ ली उसी की रहूँगी। यह है सिलिया का एकनिष्ठ प्रेम। वह प्रेम का प्रतिदान नहीं चाहती। निराश्रिता होकर वह सुखी रहती है अपने परिश्रम की बूँदें निकाल कर पेट की ज्वाला शान्त करती है पर मातादीन के नाम को नहीं छोड़ती। अपनी मेहनत पर उसे विश्वास है। इस वियोगिनी बल्कि परित्यक्ता के हर्ष का उस दिन पारावार नहीं था जब उसे पछताता मातादीन नहीं उसके भेजे हुए दो रुपये ही मिलते हैं। पछताते मातादीन को पाकर तो वह

प्रेम-पुजारिन अपने मन से जुड़ा नहीं है।

झुनिया भोला अहीर की कन्या है। इस जाति में विवाह त्याग नाता सब प्रचलित है। जवानी में ही वह विधवा हो जाती है। ससुराल में कोई सहारा न पाकर पिता के घर रहती है पर भावजें उससे झगड़ती हैं। 'उसके मांसल स्वस्थ सुगठित अंगों में मानो यौवन लहरें मार रहा था। मुँह बड़ा और गोल था, कपोल फूले हुए, आँखें छोटी और भीतर धँसी हुई, माथा पतला। पर वक्ष का उभार और गात का वही गुदगुदापन आँखों को खींचता था। वह शहर-गाँवों में ग्राहकों को दूध दही देने जाती रही है। तरह-तरह के लोगों से उसका वास्ता पड़ता रहा है। रसिकों की लगावटबाजियाँ उस गृहस्थ-कन्या के गृहिणीत्व को कुचल नहीं पाई थीं। गोबर को देखकर उसका यौवन चञ्चल हो उठता है। वह स्थायी सहारा पाना चाहती है। वह बात चीत करने सौदा पटाने में बड़ी चतुर है। गोबर से कहती है— 'प्राण देने का अरथ है साथ रह कर निबाह करना। एक बार हाथ पकड़ कर उमिर-भर निबाह करते रहना चाहे दुनिया कुछ कहे चाहे माँ बाप भाई-बंद घर-द्वार सबकुछ छोड़ना पड़े। मुँह से जान देने वाले बहुतों को देख चुकी।

वह अपने प्यार का पूरा प्रतिदान चाहती है। इस बारे में वह पूरी नाप-जोख से काम लेती है। जितना प्यार देती है ठीक उतना ही वापस चाहती है। वह गोबर से साफ शब्दों में कह देती है— 'सर्बस तो तभी पाओगे जब अपना सर्बस दोगे।' दोनों ओर से प्यार मिले तो वह निभाने को तैयार है अन्यथा यदि पुरुष अपने को स्वच्छन्द समझता है, तो वह भी स्वच्छन्द है। उसने अपने पहले पति को भी साफ-साफ कह दिया था— 'अगर तुम इधर-उधर लपके तो मेरी भी जो इच्छा होगी वह करूँगी।' वह सिलिया की तरह एकनिष्ठ रहने वाली नहीं है या एकनिष्ठ तभी रह सकती है जबकि पुरुष से भी एकनिष्ठ प्रेम की सम्भावना हो। जब मातादीन किसी न-किसी बहाने होरी के घर आकर झुनिया से बातें करना और अपना रङ्ग जमाना चाहता है तो 'सिवाय मीठी-मीठी बातों के वह झुनिया से कुछ नहीं पा सकता। और अपनी मीठी बातों को महँगे दामों बेचना भी उसे आता है।' वह सोना से कहती है— 'मैं ऐसी अनीसी नहीं हूँ कि किसी के झाँसे में आ जाऊँ। हाँ जब जान जाऊँगी कि तुम्हारे भैया ने वहाँ किसी को रख लिया है तब की नहीं चलाती। तब मेरे ऊपर किसी का कोई बन्धन न रहेगा।

इतना होते हुए भी वह नारी की धीरता और सहनशीलता का गुण प्रकट करती है। शहर में जाकर गोबर उसकी उपेक्षा करने लगता है। उसे केवल वासना पूर्ति का खिलौना समझता है तब भी वह धैर्यपूर्वक सहन करती है। वह पति के चोट लगने पर उसकी सब सेवा करती है। गोबर के मुँह से पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त के

यह सुनकर तो उसका प्रेम और भी हरा-भरा हो जाता है।

सोना का आदर्श और भी उग्र है। वह पति का ज़रा-सा बहक जाना भी क्षण भर के लिए भी बर्दाश्त नहीं कर सकती। 'सोना की दृष्टि में सब से बड़ा पाप किसी पुरुष का पर-स्त्री और स्त्री का पर-पुरुष की ओर ताकना था। इस अपराध के लिए उसके यहाँ कोई क्षमा न थी।' जब सिलिया उसे अपने विशुद्ध प्रेम के बदले की पुरस्कारी देने उसके घर आती है और सोना अपने पति की छेड़-छाड़ उससे उसे बता देती है, तो वह एकदम प्रचण्ड हो जाती है और कठोर शब्दों में कहती है—"तूने उस पापी को लात क्यों नहीं मारी? दाँत क्यों नहीं काट लिया? उसका खून क्यों नहीं पी लिया? चिल्लाई क्यों नहीं?" यह है सोना के प्रेम का प्रचण्ड आदर्श। वह भारतीय वीर पतिव्रता नारी है। विवाह से पहले प्यार की बात को वह व्यभिचार समझती है।

सोना के चरित्र का बड़ा स्वाभाविक विकास प्रेमचन्द ने दिखाया है। वह भोली-भाली किशोरी-रूप में भी विचारशील बालिका थी—अपने माता पिता के साथ खेतों पर खूब काम करने वाली। घर-गृहस्थी की समस्याओं ने ही उसका बौद्धिक विकास किया। अपने रूप-गुण और अपने कुल का उसे गर्व है। अपने पिता की दयनीय अवस्था को वह समझती थी। इसी से जब दहेज देने की बात चली तो उसने सिलिया के हाथ अपने भावी पति को साफ़ कहला भेजा कि सोना को पाना चाहते हो तो दहेज लेने से जवाब देना होगा। उसके गर्व स्वाभिमान पितृ प्रेम चरित्र की दृढ़ता स्वभाव का सन्तुलन आदि गुण उसके इस साहसिक आचरण से ही प्रकट हो जाते हैं। वह भाग्य की भी 'सोना' निकली। वर, घर-गृहस्थी सब सुखद मिले। सिलिया जब विवाह के बाद उसके घर जाकर मिलती है तो उसके सुगृहिणी के रूप बनाते वैभव को देखकर चकित रह जाती है। उसके प्रचण्ड आदर्शवाद के मूल में उसके पैतृक-संस्कार ही हैं। वह महतो कुल की है और अपने पिता और अपनी माता के दाम्पत्य का आदर्श उसका संस्कार बना हुआ है।

एक ही गाँव की ये तीनों नारियाँ अपने-अपने कुल जाति-वातावरण के संस्कारों के साथ कितनी सजीव हैं! तीनों के प्रेम में कितनी समानता है, और कितनी विषमता भी!

पुनी या पुनिया हीरा की पत्नी पुनिया भी गाँव का एक यथार्थ नारी चित्र है। कड़ुआ जबान की तेज! 'बच्चे दो ही हुए थे लेकिन ढल गई थी। अभाव और विपन्नता ने उसकी प्रकृति का जल सुखाकर कठोर और शुष्क बना दिया था जिस पर एकबार फावड़ा भी उचट जाता था।" वह अपने घर की मालकिन थी। इसी के विद्रोह से भाइयों में अलगौझा हुआ था। पुनिया को परास्त करके धेर हो

गई थी। हीरा कभी-कभी उसे पीटता था। लेकिन अपना पत्नाधिकार वह किसी तरह न छोड़ती थी।" इसी अधिकार को वह वमड़ी बंसोर प्रसंग में बताती है। वह यह बर्दाश्त नहीं कर सकती कि उसके साझे के बाँस उसके पूछे बिना कोई कम दामों पर काट-कटवा ले। वह वमड़ी बसोर के पीछे पड़ जाती है और पुनियाने तक लग जाती है। वास्तविक वे अधिकार का अभिमान वह पति के आगे भी नहीं छोड़ती। जब हीरा उसे मारता है तो वह भी उसे बराबर गालियाँ देती है। जब हीरा वमड़ी बसोर को पन्द्रह रुपये के भाव ही बाँस काटने को कह देता है तब "कहाँ तो पुनी बैठी रो रही थी। कहाँ समझकर उठी और अपना सिर पीट कर बोली—लगा दे घर में आग मुझे क्या करना है? भाग फूट गया कि तुम-जैसे कसाई के पाले पड़ी।" कैसा मनोवैज्ञानिक चित्र है इस नारी-स्वभाव का! पुनिया को अपनी गृहस्थी का पूरा ध्यान है। गाय-कांड के बाद हीरा के भाग जाने पर वह अपने घर-खेत का सारा काम सँभालती है। अकेली होकर वह रोती-सूखती नहीं और भी प्रचण्ड हो जाती है। अपनी पठानी से उसका दृप था। पर उसकी आँखों का पानी बिल्कुल मर नहीं गया है। वह होरी के उपकार को मानती है और जब उसे पता चलता है कि धनिया के घर अनाज का एक दाना भी नहीं है तो ढेर-सारा अनाज अपने यहाँ से दे देती है। महतो ने ही तो उसकी खेती बचाई है और युद्ध के दिन चाहे लड़कर काटो मुसीबत तो मेल से ही कटती है।

नोहरी नोहरी पुरुष-समाज की विलास-वासना तथा दूषित वैवाहिक-पद्धति का शिकार गाँव का ऐसा नारी-पात्र है जिसके कारण ग्राम-जीवन में नैतिक पतन आता है। वह जवानी में ही विधवा हो गई थी। बूढ़े भोला की लार टपक पड़ी। झटपट विवाह मार साम। जब तक सगाई न हुई, उसका (नोहरी का) घर खोद डाला। नोखेराम के विशेष आश्रय में नोहरी चंचल हो जाती है। नोखेराम उससे अनुचित सम्बन्ध गाँठ लेता है। नोहरी की बड़ी खातिर होती है। प्यादे और कहने तक उसका दबाव मानने लगते हैं। वह भी गर्व से फूली नहीं समाती। वह बूढ़े पति की चंचला पत्नी बन जाती है। जब नोहरी के बारे में कनबतियाँ होती हैं और भोला वहाँ से चलने का प्रस्ताव उसके सामने रखता है तो वह साफ जवाब दे देती है—तुम्हें जाना हो तो जाओ मैं नहीं जाती। वह भोला की दुर्बलता से परिचित हो चुकी थी। किन्तु जब भोला उसे छोड़ स्वयं जाने को तैयार होता है तो वह धूर्तों से उसकी ऐसी खबर लेती है कि बेचारे को दुम दबाकर बैठ रहना पड़ता है। नोखेराम के दम पर नोहरी घमण्ड करने लगती है। पटेश्वरी ने उससे जरा छेड़ छाड़ की तो उसने भी खूब सुनाई और क्रोध का ऐसा अभिनय किया कि नोखेराम और पटेश्वरी दोनों को नचा डाला। उसके इस क्रिया-चरित्र का बहुत सुन्दर और

सजीव चित्रण हुआ है। वह लोगों का मुंह बन्द करने के लिए होरी को लड़की के विवाह के लिए रुपये देती है। वह अपनी उड़ती हुई भद्द को रोकना चाहती है। वह खूब डींट उड़ाती है। वह होरी को अपना समधी मानती है और रुपये देकर अपने पक्ष में करना चाहती है। होरी से कहती है—तनिक समझा नहीं देते रामत को। जब इन्हीं लोगों के बीच रहना है तो ऐसे रहना चाहिए न कि चार आदमी अपने हो जायें और इनका हाल यह है कि सबसे लड़ाई, सबसे झगड़ा। अब तुम मुझे घरते में नहीं रख सकते मुझे दूसरों की मजूरी करनी पड़ती है तो यह कैसे निभ सकता है कि मैं न किसी से हँसू न बोलूं न कोई मेरी ओर ताके न हँसे। उसकी समझ में कोई बात आती ही नहीं कभी लड़कों के साथ रहने की सोचते हैं कभी लखनऊ जाकर रहने की सोचते हैं। इस प्रकार नोहरी की चंचलता चप बता उस चतुर भी बना देती है। वह भोला की तो दुर्गति ही कर डालती है।

मिस मालती—ग्राम-समाज के इन उपर्युक्त प्रमुख नारी-पात्रों के अतिरिक्त 'गोदान' में शहरी जीवन के परिचायक नारी-पात्र भी अपना महत्त्व रखते हैं। इन शहरी नारी-पात्रों में प्रमुख है मालती। मालती का चरित्र चित्रण भी बहुत सजीव है। प्रेमचन्द ने इन शब्दों में मालती का परिचय दिया है— 'दूसरी महिला जो ऊंची एड़ी का जूता पहने हुए है—और जिनकी मुख-छवि पर हँसी फूटी पड़ती है मिस मालती हैं। आप इंगलैण्ड से डॉक्टरी पढ़ आई हैं और अब प्रैक्टिस करती हैं। ताल्लुकेदारों के महलों में उनका बहुत प्रवेश है। आप नवयुग की साक्षात् प्रतिमा हैं। गात कोमल पर चपलता कूट-कूट कर भरी हुई। झिझक या संकोच का कहीं नाम नहीं मेकअप में प्रवीण बला की हाजिर-जवाब पुरुष-मनोविज्ञान की अच्छी जानकार, आमोद प्रमोद को जीवन का तत्त्व समझने वाली लुभाने और रिझाने की कला में निपुण जहाँ आत्मा का स्थान है वहाँ प्रदर्शन जहाँ हृदय का स्थान है वहाँ हाव-भाव मनोद्‌गारों पर कठोर निग्रह जिसमें इच्छा या अभिलाषा का लोप-सा हो गया है। मालती के इस चरित्र-चित्र की स्पष्टता हमें छठे और सातवें परिच्छेदों के पढ़ने से ही ज्ञात हो जाती है। चञ्चलता बुद्धि-चातुर्य आत्माभिमान नजाकत स्वार्थपरता आदि उसके स्वभाव की सभी विशेषताएँ और दुर्बलताएं उपयुक्त प्रसङ्ग में ही स्पष्ट हो जाती हैं। विदेशी-शिक्षा के प्रभाव ने उसे तितली बना दिया है। मनोरञ्जन और हास-विलास ही उसके जीवन की ऊपरी सतह पर छाया हुआ है। दूसरों की हँसी उड़ाने व्यंग्य कसने में वह बहुत तेज है। वह क्षण भर में ही ओंकारनाथ को उल्लू बना डालती है। उसका मनबहलाव हरदम अपने चारों ओर रसिकों का जमघट चाहता है। अपने हाव-भाव से पुरुषों को नचाना वह खूब जानती है। मिल-मालिक खन्ना को उसने इसी तरह उल्लू बना रखा है। वह मिस्टर मेहता

के प्रति आकर्षित है। स्वार्थ भी ऐसी कि मुसीबत सिर पर आने से भी वह हाथ आये हजार रुपये आसामी से छोड़ना नहीं चाहती। पठान को देखकर वह भयभीत हो जाती है। पर पठान की प्रेम-भरी बातों और रसीली आँखों को देखकर उसका आवारा मन आश्वस्त हो गया। 'उसका हृदय कुछ देर इन नर-पुरुषों के बीच में रहकर उसमें बर्बर प्रेम का आनन्द उठाने के लिए ललचा रहा था। शिष्ट-प्रेम की दुर्बलता और निर्जीवता का उन्हें अनुभव हो चुका था। आज अक्खड़ अनगढ़ पठानों के उन्मत्त प्रेम के लिए उसका मन दौड़ रहा था।" उसका हृदय संकुचित भी इतना है कि वह एक ग्रामीण मजूरी स्त्री के सेवा-भाव को भी अवज्ञा की दृष्टि से देखती है और मेहता को उसके प्रति श्रद्धा प्रकट करते देखकर ईर्ष्या से जल उठती है। वह नारी-स्वच्छन्दता की हामी है। आश्चर्य है कि वह एक बार जेल भी हो आई है।

किन्तु यह मालती के चरित्र का ऊपरी पक्ष ही है। वह बाहर से तितली है भीतर से मधुमक्खी। उसके जीवन में हँसी ही हँसी नहीं है केवल गुड़ खाकर कौन जी सकता है। वह हँसती है इसलिए कि उसे इसके भी दाम मिलते हैं। उसका चहकना और चमकना इसलिए नहीं है कि वह चहकने और चमकने को ही जीवन समझती है या उसने निजत्व को अपनी आँखों में इतना बढ़ा लिया है कि जो कुछ करे, अपने ही लिए करे। नहीं वह इसलिए चहकती है और विनोद करती है कि इससे उसके कर्त्तव्य का भार कुछ हल्का हो जाता है। सचमुच मालती घर का सारा दायित्व आप निभाती है। पिता के रोग से निकम्मा हो जाने के कारण घर का सारा खर्च मालती के ही दम से चलता है। दोनों बहनों की पढ़ाई-लिखाई का भी वही खर्च उठाती है पिता के अनियमित खर्च को बर्दाश्त करती है। पाश्चात्य शिक्षा से उसका ऊपरी ढाँचा ही रँगा गया है अन्तस्तल भारतीय नारी का ही है। सेवा कर्त्तव्य गम्भीरता दयालुता आदि गुणों के बीज उसमें विद्यमान हैं। उसके संस्कार लुप्त नहीं हो गए। वह चाहे कितने ही हाव भाव दिखावे पुरुषों को नाच नचाकर उपहार एंठे पर उसका नारी-हृदय इसमें सन्तोष नहीं पाता। वह एक ऐसा आश्रय चाहती है जो दृढ़ हो स्थायी हो। उसका मधुमक्खी मन मेहता के गुणों पर रीझ जाता है। वह जी-जान से मेहता को चाहने लगती है। वह मेहता के एक-एक गुण को अपने हृदय में सञ्चित करना चाहती है।

मेहता का दृढ़ आधार पाने की आशा में उसका चारित्रिक परिवर्तन आरम्भ होता है। वह अब सेवा और कर्त्तव्य का मार्ग अपना लेती है। वह महिलाओं के लिए एक व्यायामशाला का आयोजन करती है। व्यायामशाला कमेटी की सभानेत्री बनकर चन्दा इकट्ठा करती है। वह अब मेहता का संकेत पाकर खन्ना की चलतफ्रेमी भी दूर कर देती है और गोविन्दी-खन्ना के बीच से बिल्कुल हट जाती है। वह खन्ना

को साफ शब्दों में कह देती है—मैं कपटनी हूँ। तुम भी मेरे मनक चाहने वालों में से एक हो। यह मेरी कृपा थी कि यहाँ मैं औरों के उपहार लोग देती थी तुम्हारी उपस्थ में सामान्य चीजें भी धन्यवाद के साथ स्वीकार कर लेती थी और जरूरत पड़ने पर तुमसे रुपए भी माँग लेती थी मगर तुमने अपने अनाग्रह में इसका कोई इतर अर्थ निकाल लिया तो मैं क्षमा करूँगा। यह पुरुष-प्रकृति है अपवाद नहीं मगर यह समझ लो कि मन ने आज तक किसी नारी के हृदय पर विजय नहीं पायी और न कभी पायेगा।

जो मालती कभी खुद अपने जूते भी न पहनती थी जो खुद कभी बिजली का बटन तक न दबाती थी वही अब पैदल चलकर गाँवों में सेवा-कार्य के लिए जाने लगी है, गरीबों का मुफ्त इलाज करने लगती है। मालती के रहन-सहन की वासनामय होती जाती थी। 'अब तक जितने मर्द उसे मिले सभी ने उसकी विलास वृत्ति को ही उकसाया। उसकी त्याग-वृत्ति दिन-दिन क्षीण होती जाती थी पर मेहता के संसर्ग में आकर उसकी त्याग-भावना सजग हो उठी थी।" किन्तु मेहता अब अब भी उसे परीक्षा की दृष्टि से देखते हैं और कहते हैं कि मैं जिस आधार पर जीवन का भवन खड़ा करना चाहता हूँ वह अस्थिर है तो मालती मेहता का उपेक्षा-भाव देखकर अब क्षुब्ध हो कह उठती है— तुमने सदैव मुझे परीक्षा की आँखों से देखा कभी प्रेम की आँखों से नहीं। मैं क्यों अस्थिर और चंचल हूँ, इसीलिए कि मुझे वह प्रेम नहीं मिला जो मुझे स्थिर और अचंचल बनाता अगर तुमने मेरे सामने उसी तरह आत्म-समर्पण किया होता जैसे मैंने तुम्हारे सामने किया है तो तुम आज मुझ पर यह आक्षेप न रखते।" वह साफ कहती है— मैं प्रेम को सन्देह से ऊपर समझती हूँ। वह देह की वस्तु नहीं आत्मा की वस्तु है।— 'वह सम्पूर्ण आत्म-समर्पण है। उसके मन्दिर में तुम परीक्षक बन कर नहीं उपासक बनकर ही वरदान पा सकते हो।"

और सचमुच ही मालती अब मेहता को उपासक बना छोड़ती है। 'आज मेहता ने जैसे उसे ठुकराकर उसकी आत्मशक्ति को जगा दिया। अब तक वह मेहता के आदर्श का सहारे चलती थी तब स्वयं आदर्श बनने का दृढ़ संकल्प उसने कर लिया। वह सेवा और त्याग की मूर्ति बन गई। मेहता अब परीक्षक से परीक्षार्थी बन गए। मालती मेहता के अव्यवस्थित जीवन को व्यवस्थित करती है। उनकी सुख सुविधाओं का पूरा ध्यान रखती है पर मन में कोई व्याकुलता नहीं लाती सहज भाव से अपना कर्त्तव्य निभाती है। उसके मातृ-वात्सल्य पर मेहता मुग्ध हो उठते हैं। 'तब मालती प्यासी थी अब मेहता प्यास से विकल हैं। सुनिया के बालक मङ्गल के प्रति जो वात्सल्य मालती ने दिखाया उससे मेहता की नजरों में मालती

बहुत ऊँची उठ गई— मालती केवल रमणी नहीं है माता भी है और ऐसी-वैसी माता नहीं सच्चे अर्थों में देवी और माता और जीवन देने वाली जो पराये बालक को भी अपना समझ सकती है जैसे उसने मातापन का सर्वस्व संचय किया हो और (मधुमक्खी की तरह) आज दोनों हाथों से उसे लुटा रही हो। उसके अङ्ग-अङ्ग से मातापन फूटा पड़ता था मानो यही उसका यथार्थ रूप हो। यह हाव-भाव यह शौक सिंगार उसके मातापन के आवरण-मात्र हों जिसमें उस विभूति की रक्षा होती रहे।

मालती को अब अनुभव हुआ कि "इस त्याग के जीवन में कितना आनन्द है! दूसरों के कष्ट-निवारण में उसने जिस सुख और उल्लास का अनुभव किया वह कभी भोग-विलास के जीवन में न किया था। अब वह प्रेम की वस्तु नहीं श्रद्धा की वस्तु थी। जब मेहता याचना करते हैं और विवाह का प्रस्ताव मालती के सामने रखते हैं तो वह कहती है— "मित्र बनकर रहना स्त्री-पुरुष बनकर रहने से कहीं सुखकर है।" "अपनी छोटी-सी गृहस्थी बनाकर, अपनी आत्माओं को छोटे-से पिंजड़े में बन्द करके अपने दुख-सुख को अपने ही तक रख कर, क्या हम असीम के निकट पहुँच सकते हैं? तुम्हारे-जैसे विचारवान प्रतिभाशाली मनुष्य की आत्मा को मैं इस कारागार में बन्द नहीं करना चाहती।

इस प्रकार मालती का चरित्र आदर्श में परिणति पाता है। यह विकास अत्यन्त सजीव और स्वाभाविक है। वह जीवन की पूर्णता का आदर्श प्रस्तुत करती है।

गोविन्दी— आरम्भ में प्रेमचन्द ने गोविन्दी का परिचय कामिनी खन्ना नाम से दिया है—वह जो खद्दर की साड़ी पहने बहुत गम्भीर और विचारशील-सी है मिस्टर खन्ना की पत्नी कामिनी खन्ना है। किन्तु इस प्रसंग के बाद से सब जगह गोविन्दी नाम ही आता है। शायद भूल से ही ऐसा हुआ है। गोविन्दी एक ऐसी पति-परायणा सती साध्वी भारतीय नारी है जिसका उज्ज्वल मातृत्व स्वार्थ के स्थान पर त्याग आत्मरति के स्थान पर सेवा साज-सज्जा और कृत्रिमता की जगह सादगी और स्वाभाविकता द्वारा विलास की जगह कर्तव्य-पालन को ही ग्रहण करता है। दुर्भाग्य से उसका पति विपरीत स्वभाव का है। वह अपने मनोभाव में ही मस्त रहता है। विलास रसिकता के कारण घर-गृहस्थी में वह कोई रुचि नहीं लेता। वह गोविन्दी की उपेक्षा करता है और मिस मालती के चक्कर में फँसा है। गोविन्दी को यह बहुत खटकता है। फिर भी वह उसी प्रेम और निष्ठा से पति की सेवा किये जाती है। पति की 'अपार सम्पत्ति जैसे उसकी आत्मा को कुचलती रहती है। इन आडम्बरों और पाखण्डों से मुक्त होने के लिए उसका मन सदैव ललचाया करता है।

'इस खारे सागर में वह प्यासी पड़ी रहती है। विनोदप्रिय पति की उच्छृंखलता और

जैसा समझा होती जाती है। खन्ना अपमान ही नहीं मार-पीट भी करने लगे हैं। एक दिन पति के साथ झगड़ा बढ़ जाता है। गोविन्दी क्षुब्ध होकर घर बच्चों का मोह त्याग कर घर से निकल जाने का निश्चय कर लेती है। वह केवल गोद के बालक को लेकर चली जाती है—'यह महाशय इसीलिए रौब जमाते हैं कि वह मेरा पालन करते हैं मैं अब खुद अपना पालन करूँगी।' पार्क में उसे मेहता मिल जाते हैं और उसकी प्रशंसा तथा उसके प्रति श्रद्धा-भाव प्रकट करते हुए सान्त्वना बताकर घर वापस छोड़ जाते हैं। वह भी मातृत्व का मोह कहाँ त्याग पाई थी? मिल के जल जाने पर वह अपने पति को समझाती हुई कहती है कि धन-सम्पत्ति के नाश पर इतना दुख क्यों? धन के लिए दुख जो सारे पाप की जड़ है? धन खोकर अगर हम अपनी आत्मा को पा सकें तो यह कोई महँगा सौदा नहीं है। उसकी सेवा उसका त्याग उसका मातृत्व विजय पाते हैं। खन्ना उसका महत्त्व समझने लगते हैं।

चरित्र चित्रण की विशेषतायें

पात्रों के चरित्र-चित्रण में प्रेमचन्द की सफलता असंदिग्ध है। प्रेमचन्दजी की चरित्र-सृष्टि की एक प्रमुख विशेषता है इसकी विविधता। प्रेमचन्द ने विभिन्न प्रकार के पात्रों को अपनाया है। न केवल वर्ग और पेशे की दृष्टि से पात्र विभिन्न हैं अपितु स्वभाव और प्रकृति में भी उनमें पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है। राजा सूर्यप्रतापसिंह रायसाहब अमरपालसिंह जैसे जमींदार, मिल मालिक खन्ना पत्रकार ओंकारनाथ प्रोफेसर डा० मेहता मौजी मस्त खुर्शेद मुफ्तखोर चालाक तंखा दरि-सान होरी पटवारी पटेश्वरी ग्राम-पंडित दातादीन जमींदार का कारकुन नोखे-म पुलिस दारोगा गण्डासिंह झिंगुरी-मंगरू आदि महाजन भोला अहीर, मजदूर। स्वच्छन्द युवतियाँ मालती-सरोज आदर्श पत्नी गोविन्दी तथा धनिया-मुनिया सिलिया आदि भिन्न-भिन्न श्रेणी की ग्राम-नारियाँ आदि अनेक प्रकार के पात्र उपास के बृहत् कलेवर में यथा-स्थान उचित मात्रा में ठीक प्रकार चित्रित हैं। इन भिन्न-भिन्न वर्ग-पेशे के पात्रों के चित्रण से जीवन की एक विस्तृत झाँकी स्वतः ही स्तुत हो गई है। जीवन के इतने व्यापक चित्र-पट को छूने वाले पात्रों का चयन लेखक की विस्तृत जीवन दृष्टि का परिचायक है।

पात्रों में 'कु' और 'सु': स्वभाव और प्रकृति की दृष्टि से 'गोदान' के पात्रों को हम चार भागों में बाँटा जा सकता है। १—सर्वाधिक पात्र साधारण सामान्य यथार्थवादी के हैं, जिनमें अच्छाई-बुराई दोनों ही विद्यमान रहती हैं न तो वे आदर्श पात्र कहे जा सकते हैं न अधम निकृष्ट। गोबर, होरी धनिया सिलिया मुनिया भोला पुनिया आदि ग्रामीण शोषित पात्र तथा खुर्शेद ओंकारनाथ आदि शहरी पात्र प्रायः सब यथार्थ श्रेणी में आते हैं। न तो वे अपनी अच्छाइयों में देवता बनते हैं न बुरा

यह अब ब्राह्मण की अपेक्षा चमार बनकर रहना अच्छा समझता है सिलिया से क्षमा याचना करता है। इसी प्रकार शहर में झुनिया को भेजकर गोबर उसकी उपेक्षा करने लगता है उसके साथ दुर्व्यवहार करने लगता है, मारता-पीटता है। किन्तु जब वह हड़तालियों के संघर्ष में बुरी तरह घायल होता है दुखी होता है तब मानो दुख की अग्नि में पड़कर उसकी आत्मा का कलुष जल जाता है। अब वह पछताने लगता है और झुनिया से अपने दुर्व्यवहार के लिए क्षमा माँगता है। मनोविज्ञान की दृष्टि से भी यह बहुत यथार्थ है। दुखों में हम अपने दोषों का परिष्कार और परिहार करने लगते हैं।

सजीवता—ये सभी पात्र अत्यन्त सजीव हैं। अनावश्यक भी शायद कोई नहीं है। कथा के प्रवाह में सब अपना-अपना स्थान रखते हैं। गौण-से-गौण पात्र का भी अपना महत्व है। मामूली पात्रों को भी प्रेमचन्द ने सजीव रूप प्रदान किया है। चुहिया गिरधर दातादीन आदि गौण पात्र भी अत्यन्त स्वाभाविक और सजीव हैं। चुहिया का आगमन केवल चार-पाँच पृष्ठों के प्रसङ्ग में होता है किन्तु उसका चरित्र कितना कुशलतापूर्वक चित्रित हुआ है ! "दोहरी देह की काली-कलूटी नाटी कुरूपा बड़े-बड़े स्तन वाली स्त्री ! उसका पति एक्का हाँकता था और वह खुद लकड़ी की दुकान करती थी। उसकी झुनिया के प्रति सहानुभूति स्वयं दाई का काम किया देना उसकी निर्भीकता गोबर को भी फटकार देना आदि प्रसंग भुलाए भी नहीं भूलता। किसी को माटस्सी कहते सुन लेती थी तो उसके सात पुरखों तक चढ़ जाती थी। चरित्र-चित्रण-कला की यही सबसे बड़ी विशेषता होती है कि लेखक प्रमुख पात्रों को तो सजीव रूप प्रदान करे ही गौण पात्रों को भी निर्जीव और विस्मरणीय न रहने दे। होरी गोबर, धनिया मेहता खुर्शेद मालती आदि पात्र तो प्रेमचन्द की अमर चरित्र-सृष्टि हैं ही, चुहिया जैसे गौण पात्र अविस्मरणीय हैं।

वर्गगत और व्यक्तिगत चरित्र-सृष्टि— प्रेमचन्द के सजीव व्यक्तित्व रखते हैं। सब अपने संस्कारों परिस्थिति अनुरूप विकसित हुए हैं लेखक के हाथ की कठपुतली नहीं बन गए हैं कि पहले उपन्यासों में ज्ञानशङ्कर, मुन्शी वोहरा आदि के इशारे पर चलते दिखाई देते हैं किन्तु 'गोदान' में ऐसा सभी पात्र अपने मन वचन और कर्म की संगति प्रकट करते हैं। स्वाभाविकता पाई जाती है।

अपने पात्रों को सजीव व्यक्तित्व देने के लिए प्रेमचन्द ने अपनाई है। वे प्रायः प्रत्येक पात्र का रेखा-चित्र प्रस्तुत कर

बाह्य आकार-प्रकार, व्यक्तित्व आँखों के आगे सजीव हो जाता है। प्रेमचन्द के रेखा-चित्र भी पात्र के आन्तरिक व्यक्तित्व से पूर्ण संगत होते हैं एक-दो उदाहरण देखिए। हरखू चमार (सिलिया का पिता)—"साठ साल का बूढ़ा काला दुबला सूखी मिर्च की तरह पिचका हुआ पर उतना ही तीक्ष्ण। मंगरू साहु—काला रंग तोंद कमर के नीचे लटकती हुई, बड़े-बड़े दाँत सामने जैसे काट खाने को निकले हुए, सिर पर टोपी गले में चादर उम्र अभी पचास से ज्यादा नहीं पर लाठी के सहारे चलते थे गठिया का मरज हो गया था और खाँसी भी आती थी।' हीरा—'गाँव में क्रोध के लिए प्रसिद्ध। छोटा डील गठा हुआ शरीर, आँखें कौड़ी की तरह निकल आयी थीं और गर्दन की नसें तन गयी थीं। बसावन—घुटकेवाला सिर घुटा खिचड़ी दाढ़ी और काना। प्रेमचन्द के 'गोदान' से पहले उपन्यासों में यह रेखा चित्र-चित्रण-कला भी विशेष विकसित नहीं हुई थी। प्रेमचन्द ने पात्रों की आकृति-प्रकृति को इन रेखा चित्रों के सहारे नपे-तुले शब्दों में स्पष्ट कर दिया है। गौण-मुख्य सभी पात्रों के रेखा-चित्र पाये जाते हैं। इस रेखा चित्र के साथ ही प्रेमचन्द कभी-कभी पात्रों की बोल चाल चाल-ढाल में उनकी भाव भंगिमाओं की विशिष्टता भी प्रकट कर देते हैं जिससे पात्र का व्यक्तित्व और उभर आता है।

प्रेमचन्द सामाजिक उपन्यासकार हैं। अतः उनकी चरित्र-सृष्टि में मुख्य रूप से वर्गगत पात्र ही हैं। *सामाजिक उपन्यासकार का मुख्य ध्यान समष्टि की ओर रहता है।* अतः वह पात्रों के उन्हीं क्रिया-कलापों और प्रवृत्तियों को प्रस्तुत करता है जो उसके सामाजिक आचरण को स्पष्ट करें। प्रेमचन्द ने मानव का स्वतन्त्र अध्ययन करने की अपेक्षा सामाजिक परिवेश में ही उसका चरित्र अध्ययन किया है। यही कारण है कि उनके पात्रों में भिन्न-भिन्न वर्गों के प्रतिनिधि पात्र ही मुख्य-रूप से मिलते हैं व्यक्ति-वैचित्र्यपूर्ण पात्र बहुत कम होते हैं। प्रेमचन्द ने इन भिन्न-भिन्न वर्गगत पात्रों का ऐसा सजीव चरित्र-चित्रण किया है कि लगता है प्रेमचन्द ने इन सब वर्गों में रह कर पूरा आन्तरिक परिचय प्राप्त किया हो। कृषक-वर्ग की समूची परिस्थितियाँ प्रवृत्तियाँ संस्कार और भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ होरी के जीवन और चरित्र में चित्रित हुई हैं। जमींदार-वर्ग का सम्पूर्ण परिचय रायसाहब और राजा सूर्यप्रतापसिंह के चरित्रों से मिल जाता है। महाजनी मनोवृत्ति झिंगुरी आदि गाँव के महाजनों में सजीव हो उठी है। दातादीन गाँव के पण्डित-ब्राह्मण-वर्ग का भव्य प्रतीक है। मालती और सरोज आधुनिक शिक्षित युवती-वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं। ओंकार नाथ आजकल के टटपुँजिये असमर्थ पत्रकार-वर्ग के प्रतिनिधि हैं। इस प्रकार भिन्न भिन्न वर्गों का सजीव अध्ययन प्रेमचन्द के वर्गगत पात्रों से अनुभूत हो जाता है।

इस वर्गगत चरित्र-सृष्टि की एक विशेषता यह है कि न केवल प्रेमचन्द का ध्यान

वह अब ब्राह्मण की अपेक्षा चमार बनकर रहना अच्छा समझता है सिलिया से क्षमा याचना करता है। इसी प्रकार शहर में झुनिया को लेजाकर गोबर उसकी उपेक्षा करने लगता है उसके साथ दुर्व्यवहार करने लगता है मारता-पीटता है। किन्तु वह हड़तालियों के संघर्ष में बुरी तरह घायल होता है, दुखी होता है तब मानो दुःख की अग्नि में पड़कर उसकी आत्मा का कलुष जल जाता है। अब वह पछताने लगता है और झुनिया से अपने दुर्व्यवहार के लिए क्षमा माँगता है। मनोविज्ञान की दृष्टि से भी यह बहुत यथार्थ है। दुःखों में हम अपने दोषों का परिष्कार और परिहार कर लगते हैं।

सजीवता—ये सभी पात्र अत्यन्त सजीव हैं। अनावश्यक भी शायद कोई नहीं है। कथा के प्रबन्ध में सब अपना अपना स्थान रखते हैं। गौण-से-गौण पात्र का भी अपना महत्त्व है। नगण्य पात्रों को भी प्रेमचन्द ने सजीव रूप प्रदान किया है। चुहिया गिरधर, बड़पाल आदि गौण पात्र भी अत्यन्त स्वाभाविक और सजीव हैं। चुहिया का आगमन केवल चार-पाँच पृष्ठों के प्रसङ्ग में होता है किन्तु उसका चरित्र कितना कुशलतापूर्वक चित्रित हुआ है। "दोहरी देह की काली-कलूटी नाटी कुरूपा बड़े-बड़े स्तन वाली स्त्री! उसका पति एक्का हाँकता था और वह खुद लकड़ी की दुकान करती थी। उसकी झुनिया के प्रति सहानुभूति स्वयं दाई का काम निभा देना उसकी निर्भीकता गोबर को भी फटकार देना आदि प्रसंग भुलाए भी नहीं भूलता। किसी को मोटल्ली कहते सुन लेती थी तो उसके सात पुरखों तक चढ़ जाती थी। चरित्र-चित्रण-कला की यही सबसे बड़ी विशेषता होती है कि लेखक प्रमुख पात्रों को तो सजीव रूप प्रदान करे ही गौण पात्रों को भी निर्जीव और विस्मरणीय न रहने दे। होरी गोबर, धनिया मेहता खुर्शेद मालती आदि प्रमुख पात्र तो प्रेमचन्द की अमर चरित्र-सृष्टि हैं ही चुहिया जैसे गौण पात्र भी अविस्मरणीय हैं।

वर्गगत और व्यक्तिगत चरित्र-सृष्टि—प्रेमचन्द के सब पात्र अपना स्वतन्त्र सजीव व्यक्तित्व रखते हैं। सब अपने संस्कारों परिस्थितियों तथा वातावरण के अनुरूप विकसित हुए हैं लेखक के हाथ की कठपुतली नहीं बने हैं। पीछे हम कह आए हैं कि पहले उपन्यासों में ज्ञानशंकर, मुन्नी जोहरा आदि पात्र कई बार लेखक के इशारे पर चलते दिखाई देते हैं किन्तु 'गोदान' में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं। सभी पात्र अपने मन वचन और कर्म की संगति प्रकट करते हैं। सब में मनोवैज्ञानिक स्वाभाविकता पाई जाती है।

अपने पात्रों को सजीव व्यक्तित्व देने के लिए प्रेमचन्द ने रेखा-चित्र-शैली भी अपनाई है। वे प्रायः प्रत्येक पात्र का रेखा-चित्र प्रस्तुत कर देते हैं जिससे उनका

बाह्य आकार-प्रकार व्यक्तित्व आँखों के आगे सजीव हो जाता है। प्रेमचन्द के रेखा-चित्र भी पात्र के आन्तरिक व्यक्तित्व से पूर्ण समन्वित होते हैं एक-दो उदाहरण लीजिए। हरखू चमार (सिलिया का पिता)—'साठ साल का बूढ़ा, काला, दुबला सूखी मिर्च की तरह सिकुड़ा हुआ पर उतना ही तीक्ष्ण। मंगरू साह—काला रंग तोंद कमर के नीचे लटकती हुई, बड़े-बड़े दाँत सामने जैसे काट खाने को निकले हुए, सिर पर टोपी गले में चादर, उम्र अभी पचास से ज्यादा नहीं पर लाठी के सहारे चलते थे गठिया का मरज हो गया था और खाँसी भी आती थी। हीरा—'गाँव में क्रोध के लिए प्रसिद्ध। छोटा कद गठा हुआ शरीर, आँखें कौड़ी की तरह निकल आयी थीं और गर्दन की नसें तन गयी थीं। दातादीन—दुबलेपतला सिर घुटा खिचड़ी दाढ़ी और काना। प्रेमचन्द के 'गोदान' से पहले उपन्यासों में यह रेखा-चित्र-चित्रण-कला भी विशेष विकसित नहीं हुई थी। प्रेमचन्द ने पात्रों की आकृति प्रकृति को इन रेखा-चित्रों के सहारे चुने-चुने शब्दों में स्पष्ट कर दिया है। गौण-मुख्य सभी पात्रों के रेखा-चित्र पाये जाते हैं। इन रेखा-चित्र के साथ ही प्रेमचन्द कभी-कभी पात्रों की बोल-चाल पास-डाल में उनकी भाव भङ्गिमों की विशिष्टता भी प्रकट कर देते हैं जिससे पात्र का व्यक्तित्व और उभर आता है।

प्रेमचन्द सामाजिक उपन्यासकार हैं। अतः उनकी चरित्र-सृष्टि में मुख्य रूप-से वर्गगत पात्र ही हैं। सामाजिक उपन्यासकार का मुख्य ध्यान समष्टि की ओर रहता है। अतः वह पात्रों के उन्हीं क्रिया-कलापों और प्रवृत्तियों को प्रस्तुत करता है जो उसके सामाजिक आचरण को स्पष्ट करें। प्रेमचन्द ने मानव का स्वतन्त्र अध्ययन करने की अपेक्षा सामाजिक परिवेश में ही उसका चरित्र अध्ययन किया है। यही कारण है कि उनके पात्रों में भिन्न-भिन्न वर्गों के प्रतिनिधि पात्र ही मुख्य-रूप से मिलते हैं व्यक्ति-वैचित्र्यपूर्ण पात्र बहुत कम होते हैं। प्रेमचन्द ने इन भिन्न-भिन्न वर्गगत पात्रों का ऐसा सजीव चरित्र-चित्रण किया है कि लगता है प्रेमचन्द ने इन सब वर्गों में पैठ कर पूरा आन्तरिक परिचय प्राप्त किया हो। कृषक-वर्ग की समूची परिस्थितियाँ प्रवृत्तियाँ संस्कार और भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ होरी के जीवन और चरित्र में चित्रित हुई हैं। जमींदार-वर्ग का सम्पूर्ण परिचय रायसाहब और राजा सूर्यप्रतापसिंह के चरित्रों से मिल जाता है। महाजनी मनोवृत्ति झिंगुरी आदि गाँव के महाजनों में सजीव हो उठी है। दातादीन गाँव के पण्डित-ब्राह्मण-वर्ग का पूर्ण प्रतीक है। मालती और मेहता आधुनिक शिक्षित युवती-वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं। ओंकारनाथ आजकल के टप्पूशिये असमर्थ पत्रकार-वर्ग के प्रतिनिधि हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न वर्गों का सजीव अध्ययन प्रेमचन्द के वर्गगत पात्रों से अनुभूत हो जाता है।

इस वर्गगत चरित्र-सृष्टि की एक विशेषता यह है कि न केवल प्रेमचन्द का ध्यान

पुराने वर्गों की ओर गया है अपितु आधुनिक युग में विकसित होने वाले नये टाइपों का भी उन्होंने अनुभव किया है। तथा ऐसा ही टाइप है। वर्तमान युग में ऐसे स्वार्थी मुफ्तखोर अवसरवादी व्यक्ति भी अपना एक विशेष टाइप बना चुके हैं। मालती के पिता मि० कौल के परिचय में भी ऐसे वर्ग की झलक मिलती है उसके बाप उन विचित्र जीवों में थे जो केवल जबान की मदद से लाखों के वारे-न्यारे करते थे। बड़े बड़े जमींदारों और रईसों की जायदादें बिकवाना उन्हें कर्ज दिलाना या उनके मुआमलों को अफसरों से मिलकर तय करा देना यही उनका व्यवसाय था। दूसरे शब्दों में दलाल थे। " किसी राजा की शादी किसी राजकुमारी से ठीक करवा दी और दस-बीस हजार उसी में मार लिये।" पत्रकार ओंकारनाथ का वर्ग भी नया है। तंखा और ओंकारनाथ का परिचय हम ऊपर दे चुके हैं।

प्रेमचन्द ने वर्गगत चरित्र-चित्रण में पीढ़ियों के अन्तर का ध्यान रखा है। होरी पुरानी पीढ़ी का किसान है जो भाग्यवाद, समझौता, धर्मानुराग में विश्वास करता है गोबर, रामसेवक, गिरधर आदि युवक नई पीढ़ी के प्रतीक हैं, जिनमें असन्तोष विद्रोह और उग्रता है। रायसाहब और रुद्रपाल की पीढ़ियों में भी अन्तर स्पष्ट है। यही नहीं, प्रेमचन्द ने एक ही वर्ग में विभिन्न टाइपों के सूक्ष्म अन्तर भी पहचाने हैं। झिंगुरीसिंह शक्कर के महाजन का एजेन्ट है जो लिखा-पढ़ी करा के ही कर्ज देता है मगरूशाह आदि कागज नहीं लिखाते। रायसाहब और राजा सूर्यप्रताप सिंह में भी अन्तर है। दूसरा परम दर्जे का क्रूर और निर्दयी है रायसाहब इतना नहीं।

प्रेमचन्द के वर्गगत पात्रों में भी व्यक्तिगत विशेषताएँ रहती हैं जिनके कारण उनका चरित्र दोहरा रहता है। एक ओर वे अपने-अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, दूसरी ओर अपना स्वतन्त्र निजी व्यक्तित्व भी रखते हैं। प्रेमचन्द ने रेखाचित्रों तथा विशिष्ट मनोवृत्तियों के प्रकाशन-द्वारा अपने वर्गगत पात्रों को भी विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान किया है। धनिया जहाँ एक कृषक-नारी है वहाँ उसकी निर्भीकता विशेषकर पुलिस दारोगा को भी फटकार देना पञ्चों को भी आड़े हाथों लेना उसका निजीपन है। जिस वर्ग के पुरुषों की जान पगड़ी से कपकपी चढ़ जाती है उनकी नारी में इतनी निर्भीकता विरल ही है। उसकी कर्मठता अदम्य साहस असन्तोष-विद्रोह उसे विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करता है। इसी प्रकार झिंगुरीसिंह में जहाँ और बातें वर्गगत ही हैं वहाँ उसका हँसमुख स्वभाव सारे गाँव को परशुराम बनाकर रखना सबको साला समझना बच्चों को गालियाँ देना-सुनना आदि उनके व्यक्तित्व को विशेषता प्रदान करते हैं। रायसाहब जमींदार वर्ग का है पर कुछ ऐसी बातें उसमें भी हैं जो उसे विशिष्ट बनाती हैं जैसे उसका दृढ़ चरित्र वह भोग-विलास से दूर रहता है यहाँ तक कि दूसरी शादी भी नहीं करता। धनुष-यज्ञ रचाता है सामा आप लिख

नेता है, चतुर सिद्धान्तवादी है, आदि।

प्रेमचन्द कई बार एक ही वर्ग और प्रकृति के पात्रों में भी परिस्थिति विशेष में अन्तर दिखा कर उनके अलग-अलग व्यक्तित्व को उभारने का प्रयत्न करते हैं जैसे दारोगा-द्वारा होरी की तलाशी लेने की धमकी देने पर जहाँ दातादीन, मानराम आदि बहुत दम भरते हैं और ५० रुपये से कम देने की नहीं सोचते "मगर पटेश्वरी से यह अन्याय न देखा गया। कोई डाका या कत्ल तो हुआ नहीं। केवल तलाशी हो रही है। इसके लिए बीस रुपये बहुत हैं।" इसी प्रकार दातादीन और मातादीन एक ही थैले के हैं, पर उनकी मजूरी करते हुये जब होरी मूर्छित हो जाता है तो वहाँ दातादीन को दया छूती भी नहीं वहाँ मातादीन उसके लिए कुछ भी ले आता है। वह अपने बाप-जैसी निर्दयता नहीं बताता।

प्रेमचन्द के 'गोदान' में कम-से-कम दो पात्र ऐसे हैं जो व्यक्ति-वैचित्र्यपूर्ण चरित्र-कला के द्योतक हैं। एक हैं डॉ० मेहता और दूसरे मिर्जा खुर्शेद। इन दोनों में वर्ग-प्रवृत्ति विशेष नहीं है, बल्कि इनका चरित्र व्यक्तिगत विशिष्टताओं से ओत-प्रोत है। मेहता विशिष्ट सिद्धान्तवादी है। उसका विशिष्ट आदर्शवादी-व्यावहारिक भौतिक जीवन-दर्शन है। वह दार्शनिक गम्भीर और विवेकशील है। पर साथ ही उसमें दर्शन का विनोदप्रिय जो समय में चूर होकर चहक और महक दोनों ही प्रकट करता है। वह अपनी आत्मा का सच्चा आज्ञाकारी पुत्र है। उसका मन-व्यापार भी विचित्र है। इसी प्रकार खुर्शेद एक मस्त जीव है। उनके चरित्र की विशिष्टता को भी हम ऊपर स्पष्ट कर चुके हैं।

इस प्रकार 'गोदान' में यद्यपि अधिकतर वर्गगत चरित्र-सृष्टि हुई है, तथापि प्रेमचन्द ने पात्रों की व्यक्तिगत विशेषताओं और उनके चरित्रों के स्वतन्त्र विकास का भी पूरा ध्यान रखा है। मेहता-खुर्शेद जैसे एक-दो पात्र व्यक्ति-वैचित्र्यपूर्ण भी हैं। उनका व्यापक चरित्र-चित्रण भी उनके विस्तृत जीवन-अनुभव का परिचायक है।

मनोविज्ञान — चरित्र-चित्रण में प्रेमचन्द ने मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन तो नहीं किया है उनके सरल अशिक्षित और अर्धशिक्षित पात्रों में मनोवैज्ञानिक ग्रन्थियों और कुण्ठाओं के लिए व्यापक गुञ्जाइश भी नहीं थी फिर भी पात्रों का चरित्र-चित्रण सर्वथा मनोविज्ञान-सम्मत है। किसी पात्र की कोई हरकत कोई विचार कोई कथन ऐसा प्रतीत नहीं होता जो अमनोवैज्ञानिक हो। अपवाद-स्वरूप इक्का-दुक्का स्थान पर कोई मनोवैज्ञानिक कमी निकल आए तो बात दूसरी है। कई स्थानों पर तो पात्रों की मनोवृत्तियों का अध्ययन अत्यन्त सूक्ष्म मनोवैज्ञानिकता का परिचायक है। झुनिया के आने पर धनिया के भाव-परिवर्तन का मनोवैज्ञानिक स्पष्टीकरण हम पीछे कर चुके हैं। जिस प्रकार मातृत्व और नारीत्व के समय होने

पर उसकी वह उग्रता और प्रचण्डता समाप्त हो जाती है यह स्पष्ट ही है। गाय के आने पर भी नजर लगने के उसके भय की बड़ी सुन्दर मनोवैज्ञानिक झाँकी प्रस्तुत हुई है। जब दातादीन गाय का दूध माँगता है तो धनिया ने तुरन्त टोका—अरे नहीं महाराज इतना दूध कहाँ? बुढ़िया तो हो गई है। फिर कहाँ रातिब कहाँ धरा है? उसकी मनोवृत्ति का कैसा सुन्दर चित्रण है। भाइयों के मनोभाव विशेषकर हीरा के वचन सुनकर होरी का भाव परिवर्तन कितना मनोवैज्ञानिक है। वह इतनी साध से लाई हुई गाय को भी वापस करने की सोच लेता है। दमड़ी बसोर के प्रसङ्ग में भी होरी की मनोवृत्तियों का कैसा भव्य चित्रण हुआ है। जब हीरा इसी प्रसङ्ग में पुनिया को मारता है तो पुनिया की मनोवृत्ति का कैसा मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। जब हीरा दमड़ी बसोर को १५ रुपये के साथ ही बाँस काटने को कह देता है तो कहाँ तो पुनी बैठी रो रही थी कहाँ झमक कर उठी और सिर पीट कर बोली—सभा है पर मैं आज मुझे क्या करना है। भाग फूट गया कि तुम जैसे कसाई के पाले पड़ी।" मानो मनोविज्ञान का एक और अत्यन्त सुन्दर उदाहरण गोबर के शहर से आने पर धुनिया के शोक मान का है। तात्पर्य यह कि प्रेमचन्द ने पात्रों की मनोवृत्तियों का बड़ी सूक्ष्मता से अध्ययन किया है।

अपवाद-स्वरूप एक-आध स्थल पर मनोविज्ञान कुछ कच्चा भी दिखाई देता है। एक उदाहरण है होरी और उसकी पत्नी के पारस्परिक झगड़े का प्रसङ्ग। इस प्रसङ्ग में प्रेमचन्द पूरी मनोवैज्ञानिकता नहीं ला सके। उसका पहले गोबर पर बुरी तरह बिगड़ जाना और फिर तुरन्त उसे ठहरने का निमन्त्रण ही नहीं माता को समझा देने का अनुरोध करना मनोवैज्ञानिक दृढ़ता नहीं रखता। इसी प्रकार की मनोवैज्ञानिक कमी एक और प्रसङ्ग पर दिखाई देती है। गोबर शहर से जब कमा कर आता है तो उसका माँ-बाप से भी झगड़ा हो जाता है। प्रेमचन्द ने इस प्रसङ्ग में गोबर की बदतमीजी की अति कर दी है जो अखरने लगती है। वह अपनी माँ से यहाँ तक कह देता है—"और यह तो स्वारथ का संसार है। जिसके साथ चार पैसे गम खाओ वही अपना। खाली हाथ तो माँ-बाप भी नहीं पूछते।"—और "दादा भी चाहते हैं कि मैं सारा करजा चुकाऊँ लगान दूँ लड़कियों का ब्याह करूँ, जैसे मेरी जिन्दगी तुम्हारा देना भरने ही के लिए है। मेरे भी तो बाल-बच्चे हैं। मेरे भी तो बाल-बच्चे हैं!" आदि वचन गोबर-जैसे बेटे के मुँह से होरी-धनिया जैसे माँ-बाप के सामने नहीं निकल सकते। यद्यपि झगड़े और क्रोध की अवस्था में बेटा भी माँ-बाप के प्रति उद्दण्डता का व्यवहार कर सकता है पर गोबर का उपर्युक्त कथन कुछ सीमा के बाहर हो गया है—इस अपवाद के सिवा 'गोदान' में सर्वत्र मनोवैज्ञानिक सङ्गति है।

'गोदान' के अधिकांश पात्र मिश्रित प्रकृति के हैं। गोबर, मालती मातादीन हीरा आदि ऐसे पात्र हैं जिनमें परिवर्तन हुआ है। प्रेमचन्द ने इन पात्रों के चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विकास ही प्रस्तुत किया है। पहले उपन्यासों में प्रेमचन्द के पात्रों का चरित्र-परिवर्तन कहीं-कहीं अमनोवैज्ञानिक-सा हो जाता था किन्तु 'गोदान' के पात्रों के बारे में यह नहीं कहा जा सकता। प्रेमचन्द ने पात्रों के शारीरिक विकास का भी ध्यान रखा है। छोटी बालिका से युवती और गृहिणी हो जाती है तो उसके शारीरिक विकास की रेखाएं भी स्पष्ट की हैं। निश्चित प्रकृति के पात्रों में चारित्रिक परिवर्तन नहीं होता किन्तु अवसर, घटना तथा परिस्थिति-विशेष पर उनके मनोभावों तथा प्रवृत्तियों में मनोवैज्ञानिक विकास और परिवर्तन आदि स्पष्ट लक्षित होते हैं। ये पात्र स्वयं भी अपने आचरणों से परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं और परिस्थितियाँ तथा घटनाएँ भी उनके चारित्रिक विकास में सहयोग देती हैं। इस प्रकार कथा और चरित्र-चित्रण का सामञ्जस्य घटित होता चलता है।

प्रेमचन्द ने अपने पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए रेखाचित्र शैली व्याख्यात्मक शैली तथा नाटकीय शैली आदि सब को अपनाया है। वे अधिकतर अपनी ओर से रेखा-चित्र तथा व्याख्या ही प्रस्तुत करते हैं पात्रों की मनोवृत्तियों का मनोविश्लेषण नहीं करते। मनोवैश्लेषिक शैली वैसे भी जटिल वैयक्तिक पात्रों के लिए ही प्रयुक्त की जाती है। प्रेमचन्द के पात्र जटिल वैयक्तिक पात्र नहीं हैं वे सरल सामाजिक पात्र हैं। अतः प्रेमचन्द को मनोवैश्लेषिक शैली की जरूरत नहीं पड़ी। नाटकीय शैली अर्थात् पात्रों के क्रियाकलाप कथोपकथन तथा परिस्थितियों द्वारा उनके चरित्रों पर अधिक प्रकाश पड़ता है। यद्यपि प्रेमचन्द के पात्र इतने सरल हैं कि उनके चरित्र उनके कार्यकलापों संवाद आदि से ही पूरी तरह स्पष्ट हो जाते हैं फिर भी प्रेमचन्द अपनी लेखनी से उनका रेखा-चित्र और सरल चारित्रिक व्याख्या प्रस्तुत करके उन्हें बिल्कुल बोधगम्य बना देते हैं।

इस प्रकार चरित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रेमचन्द पूर्ण सफल कहे जा सकते हैं। उनकी चरित्र-सृष्टि अत्यन्त व्यापक है। भिन्न भिन्न वर्गों के पात्रों का उन्होंने सजीव चित्रण किया है। पात्रों में वर्गगत प्रवृत्तियाँ होते हुए भी व्यक्तिगत विशेषताएं रहती हैं। रेखा चित्रों द्वारा भी पात्रों का व्यक्तित्व सजीव कर दिया गया है। चरित्र चित्रण में मनोवैज्ञानिक सगति पाई जाती है। पात्रों में मानव-सुलभ 'कु' और 'सु' दोनों प्रवृत्तियाँ रहती हैं। ये पात्र इसी धरती के हमारे परिचित-से सजीव प्राणी हैं।

५ देशकाल-वातावरण

प्रेमचन्द सामाजिक उपन्यासकार हैं। सामाजिक उपन्यासकार को भी ऐ

हासिक उपन्यासकार की तरह देशकाल-वातावरण के पूर्ण-निर्वाह का ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि सच्चे सामाजिक उपन्यास भी कालान्तर में ऐतिहासिक उपन्यास बन जाते हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों का ऐतिहासिक महत्त्व असन्दिग्ध है। इस ऐतिहासिक महत्त्व का एकमात्र कारण है उनमें देश-काल-वातावरण की सजीवता। प्रेमचन्द के उपन्यासों में हमारे भारतीय जीवन का कम-से-कम पिछली अर्द्ध शताब्दी का सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक इतिहास सजीव हो उठा है।

'गोदान' का चित्र-पट पर्याप्त विस्तृत है। यह भारतीय ग्राम-जीवन का तो वर्णन है ही, साथ ही शहरी जीवन के भी कुछ सजीव चित्र इसमें उभर कर आये हैं। गाँवों से शहर तक जीवन का व्यापक परिवेश इसमें है। अतः देशकाल-वातावरण के भी स्पष्टतः दो पक्ष इसमें मिलते हैं—एक ग्राम्य जीवन और वातावरण तथा दूसरा शहरी जीवन-वातावरण।

ग्राम-जीवन का वर्णन—प्रेमचन्द गाँवों के चितेरा हैं, उनका अपना जीवन बहुलांशतः गाँवों में ही बीता था। अतः उन्हें ग्राम-जीवन के प्रत्येक आयाम और हर पहलू का व्यक्तिगत अनुभव था। उनकी अनेक कहानियों तथा 'प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि', 'रंगभूमि' आदि 'गोदान' से पूर्व के उपन्यासों में भी उन्होंने ग्राम्य-जीवन की अनेक झाँकियाँ दी हैं, पर समग्र रूप में एकत्रित ग्राम-जीवन का जैसा भव्य और पूर्ण चित्रण 'गोदान' में हुआ है वह पहले की किसी रचना में नहीं। सच तो यह है कि प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास के पिछले पचीस-तीस वर्षों में भी ग्राम्य-जीवन की पूर्णता को उद्घाटित करने वाला 'गोदान'-जैसा दूसरा उपन्यास उपलब्ध नहीं हुआ। 'गोदान' कृषक-संस्कृति की लोक-परम्परा का प्रतीक प्रेमचन्द का अन्यतम उपन्यास है। यह ग्राम-जीवन का महाकाव्य है।

ग्राम्य जीवन का सामाजिक ढाँचा 'गोदान' में बड़ी सजीवता से प्रस्तुत हुआ है। गाँव में कई वर्गों और जातियों के लोग रहते हैं। उनकी सामाजिक मर्यादाएँ, स्थितियाँ और स्तर भी अलग-अलग हैं। दातादीन-जैसे ब्राह्मण हैं जिन्हें ग्राम-समाज धर्म-धुरा मान कर आदर की दृष्टि से देखता है। चौधरी महतो हैं, जिनकी अपनी सम्मान है। हरखू-जैसे निम्नवर्ग के चमार हैं जिन्हें उच्चवर्ग वाले नीच समझते हैं। भोला-जैसे अहीर हैं जिनमें पुनर्विवाह, त्याग, तलाक सब मान्य है। ग्राम समाज के स्तम्भ उच्चवर्ग के लोग हैं। उच्चता के दो आधार हैं—एक जाति और दूसरे प्रभाव और पैसा। दातादीन वंश की उच्चता का लाभ उठा रहे हैं तो नोखेराम और पटेश्वरी अपने अधिकार के प्रभाव से पंच बने हुए हैं। झिंगुरीसिंह अपने पैसे के बल पर अधिकार प्राप्त किए हुए हैं।

परम्परागत समाज-व्यवस्था का गाँवों में आतंक है। लोग अभी स्वेच्छा

तथा विश्वासपूर्वक इस पर विश्वास रखते हैं। पंच परमेश्वर माने जाते हैं और बिरादरी उद्धारक। व्यक्ति या परिवार को पंच और बिरादरी के शासन में ही रहना पड़ता है। परम्परागत झूठी-यथार्थ मर्यादाओं का उल्लंघन करने वालों को पंचायत करके दण्डित किया जाता है। बिरादरी से बाहर कर देने का भय भी रहता है। बिरादरी में हुक्का-पानी बन्द होने से व्यक्ति या परिवार कहाँ रहे और कैसे रहे? इस प्रकार प्राचीन ग्राम-पंचायत का रूप विकृत हो गया है। यह सब महाजनी संस्कृति के विकास का कुफल है। इन बातों में पैसे की नाप-जोख चलती है।

ग्राम-पंचायत का रूप बिगड़ गया है और प्राचीन सम्मिलित परिवार-पद्धति भी नष्ट ही होती जा रही है। शायद ही कोई घर ऐसा हो जहाँ दो भाई साथ मिल कर रहते हों। एक तो आय के अल्प-साधनों से भाइयों में खटपट हो जाती है दूसरे नवागत बहुएँ बड़ों के शासन से मुक्त होकर अलग रहना चाहती हैं और अलगौझा करवा देती हैं। भाइयों में आपस में ईर्ष्या-द्वेष रहता है किन्तु मुसीबत के समय भाई ही भाई की मर्यादा रखता है भाई ही भाई के काम आता है। सम्मिलित परिवारों में सास-बहू ननद-भावजों देवरानी-जेठानी में रोज तकरार रहती है, मामूली-मामूली बातों पर झगड़ा और कहा-सुनी ही नहीं मार-पीट तक हो जाती है।

ग्राम-समाज भी पुरुष-प्रधान समाज है। पुरुष नारी को पर्दे में रखना चाहता है। उच्चवर्ग की नारियाँ विशेष रूप से पर्दे में रहती हैं। किसान अहीर और निम्न वर्ग की नारियाँ खेत-खलिहान और पशु-ढोर का भी सब काम करती हैं। इस कारण वे भी अपना कुछ अधिकार मानती हैं। फिर भी पुरुष की ही प्रमुखता है। पुरुष पत्नी को मारना और अपने शासन में रखना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझता है। धनिया-जैसी नारियाँ अधिकारों की टक्कर होने पर, मार खाती हुई भी गालियों और रुदन द्वारा अपना अधिकार जताती हैं। वैवाहिक पद्धति में अनेक दोष आगए हैं। अनमेल विवाह आम होते हैं। भोला-जैसा बूढ़ा जवान पत्नी का शिकार मार लाता है। झिंगुरीसिंह दो जवान पत्नियाँ रखे हुए हैं। कई बार विवशतावश होरी-जैसे पिता को भी अपनी लड़की अधेड़ उमर के रामसेवक को बेचनी पड़ जाती है। उच्च वर्ग में विधवा विवाह नारी का पुनर्विवाह त्याग आदि वर्जित है। निम्नवर्ग में यह सब मान्य है। बेमेल विवाह के परिणाम-स्वरूप कभी-कभी पर्दे की आड़ में या टट्टी की ओट में ताक-झांक अनुचित सम्बन्ध आदि अनैतिक आचरण भी दिखाई देते हैं।

छुआ-छूत और जात-पाँत के बंधन भी काफी कड़े हैं। गोबर जब अहीर की विधवा झुनिया को ले आता है और होरी-धनिया उसे अपने घर रख लेते हैं तो समाज-बिरादरी में तूफान मच जाता है। उच्च-वर्ग के लोग विजातीय नारियों को चोरी-चोरी ही रखैल बनाते हैं। ब्राह्मण आदि उच्च वर्ग के लोग चमारों आदि

निम्न वर्ग से छुआछूत का व्यवहार करते हैं।

ब्राह्मण-धर्म अपने पूरे पाखण्डों-सहित गाँवों में विराजमान है। ब्राह्मण ही पूजा-पाठ, धर्म-कर्म शादी-ब्याह अन्त्येष्टि आदि कर्मों के नियामक हैं और अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए धर्म का ढोंगी रूप प्रचारित करते हैं। इस धर्म ने ही ग्रामीणों को भाग्यवाद पुनर्जन्म कर्म-फल पाप-पुण्य तथा ईश्वरीय न्याय आदि के अन्ध-विश्वासों में जकड़ रखा है। वही धर्मात्मा समझा जाता है जो नियमपूर्वक स्नान-ध्यान करे, तिलक-छापा लगाये किसी का छुआ भोजन न खाये कथा-व्रत पूजा निभाये। दातादीन अपने धर्म का ऐसा ही दम्भ इन पंक्तियों में प्रकट करते हैं— "कोई हमारी तरह नेमी बन तो ले। कितनों को जानता हूँ, जो कभी सन्ध्या बन्दन भी नहीं करते न उन्हें धरम से मतलब न करम से न कथा से मतलब, न पुरान से। वह भी अपने को ब्राह्मण कहते हैं। हमारे ऊपर क्या हँसेगा कोई, जिसने अपने जीवन में एक एकादशी भी नागा नहीं की कभी बिना स्नान-पूजन किये मुँह में पानी नहीं डाला। नम निभाना कठिन है। कोई बता दे कि हमने कभी बाजार की कोई चीज खाई हो या किसी दूसरे के हाथ का पानी पिया हो तो उसकी टाँग की राह निकल जाऊ। सिलिया हमारी चौखट नहीं लाँघने पाती चौखट, बरतन-भाँडे छूना तो दूसरी बात है। किसी कारण धर्म भ्रष्ट हो जाने पर ब्राह्मणों को भोज देने तथा प्रायश्चित्त की व्यवस्था निभाने से बिगड़ा धर्म सुधर सकता है। काशी के पण्डित इन गाँवों के ब्राह्मण-पण्डितों से भी बड़े धर्म-ध्वजी माने जाते हैं। मुँह में हड्डी छू जाने से ही मातादीन का धर्म नष्ट हो गया और काशी के पण्डितों से प्रायश्चित्त कराके सुधार किया।

धर्म-भीरुता और समाज-भीरुता किसानों में संस्कार-बद्ध होगई है। झूठी मर्यादा की वह नहीं उठा सकते। ब्राह्मण का पैसा मारना उनके लिए पाप है। इस धर्म-समाज-भीरुता ने जहाँ उनमें कुछ दुर्बलताएँ तथा अन्धविश्वास पैदा कर दिये हैं वहाँ इसके कारण गाँव वालों का नैतिक आचरण भी काफी हद रहता है। अपनी आर्थिक विवशता के कारण थो,।-बहुत झूठ बोल लेना या छोटी छोटी बेईमानी कर लेना आदि नैतिक शिथिलता अत्यन्त नगण्य है। कृषक-वर्ग के लोग फिर भी किसी के भरते घर में हाथ नहीं डालते प्रकृति के संसर्ग में रहने के कारण स्वार्थ की कलुषित-कालिमा उनको छू़ती भी नहीं। गाँव के युवकों का आचरण भी इतना नहीं बिगड़ा जितना शहर वालों का बिगड़ गया है। गोबर के लिए गाँव की सभी युवतियाँ और बहुएँ बहनें अथवा भाभियाँ थी वह किसी की ओर बुरी दृष्टि से कभी नहीं देखता था। किन्तु जब से गाँव के लड़के शहर में पढ़ने लगे हैं उनकी लाज-हया न जाने कहाँ गुम हो गई है। पटेश्वरी और झोंझेराम के लड़के गाँव की

बेटियों की ताक-झाँक करते घूमते फिरते हैं। ग्राम-समाज अशिक्षित है असभ्य फिर भी मानवता के नाते ये लोग अनेक शिक्षितों से अच्छे हैं।

गाँवों की आर्थिक स्थिति बहुत बिगड़ गई है। इने-गिने महाजनों को छोड़ कर शेष सब लोग पैसे-पैसे को मोहताज हैं। सारा साल परिश्रम करने पर भी उन्हें उसका पूरा फल नहीं मिलता। दो जून भोजन भी मयस्सर नहीं होता। भूमि टुकड़े-टुकड़े हो गई है—बटवारे तथा बेदखली के कारण खेत छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट गए हैं। पुराने ढंग से ही खेती होती है। भगवान्-भरोसे ही खेती रहती है। किसान पुश्त-दर-पुश्त कर्ज के बोझ से दबते जा रहे हैं। एक आना या दो आना रुपया तक ब्याज देना पड़ता है। महाजनी-व्यवहार का बोल-बाला है। लगान चुकाने फसल बोने ब्याह शादी आदि सब अवसरों पर किसानों को महाजनों का मुँह ताकना पड़ता है। होरी ५ बीघे और एक हल का किसान है उसकी हालत जब इतनी बुरी है तो उन हजारों किसानों की अवस्था का अनुमान लगाया जा सकता है जिनके पास न अपनी जरा भी जमीन है और न हल। किसान के पास से जमीन छिनती जा रही है और वह मजदूर बनता जा रहा है—गाँव में जमींदार का और शहर जाकर मिलमालिकों का। होरी कहता है— "गाँव में इतने आदमी तो हैं किस पर बेदखली नहीं आई!" जमींदार भारी लगान को सख्ती से वसूली करके तथा डाँड़-बाँध चन्दा बेगार आदि लेकर जमींदार का कारिन्दा भी बेगार तथा ब्याज-बट्टा वसूल करके महाजन भारी ब्याज खाकर, पटवारी अपने रौब से बेगार तथा नजर-नजराना लेकर, मिल वाले ऊख आदि उपज को कम तौल कर, ब्राह्मण अपनी पुरोहिताई तथा महाजनी चलाकर—सब लोग तरह-तरह से गरीब किसानों का शोषण कर रहे हैं। किसान इस शोषण की चक्की में पिस रहा है। ग्रामीण बेचारे मोटा-झोटा खाते हैं मोटा-झोटा पहनते हैं फिर भी न पेट भरता है न तन पूरा ढकता है।

'गोदान' में ग्राम्य वातावरण अत्यन्त सजीव है। ग्रामीणों का खान-पान पहनावा संस्कार, बातचीत व्यवहार सब सजीव हैं। तीसरे परिच्छेद की एक झाँकी देखिए— "होरी अपने गाँव के समीप पहुँचा तो देखा अभी तक गोबर खेत में ऊख गोड़ रहा है और दोनों लड़कियाँ भी उसके साथ काम कर रही हैं। तीनों ने कुदालें उठाईं और उसके साथ हो लिए।—बड़ी लड़की सोना—गाढ़े की लाल साड़ी जिसे वह घुटनों से मोड़कर कमर में बाँधे हुए थी उसके हल्के शरीर पर कुछ लदी हुई-सी थी छोटी रूपा "मैली सिर पर बालों का एक घोंसला सा बना हुआ एक लँगोटी कमर में बाँधे [illegible]। द्वार पर कुआँ था। होरी और गोबर ने एक-एक कलसा पानी सिर पर उँडेला रूपा को नहलाया और भोजन करने गये।

जौ की रोटियाँ थीं पर गेहूँ जैसी सुफेद और चिकनी। मटर की दाल थी जिसमें कच्चे आम पड़े हुए थे। रूपा बाप की थाली में खाने बैठी।" भोला के आने पर उसकी पाहुनों-जैसी खातिर हुई। 'गोबर ने खाट डाल दी भोला एक ओर मामी क्या तमाखू भर लायी। 'होरी और गोबर मिलकर एक खाँचा भूसा भर लाये। भोला ने तुरन्त अपने अँगोछे की बीड़ बनाकर सिर पर रखते हुए कहा—मैं इसे रख कर अभी भागा आता हूँ। एक खाँचा और धुंगा। इसी प्रकार का पूरा ग्रामीण वातावरण सारे उपन्यास में सजीवता के साथ प्रकट हुआ है। उनकी बातचीत में ग्राम्य संस्कार विद्यमान हैं। भाषा भी ग्रामीण बोलचाल की है जो वातावरण को बिल्कुल सजीव कर देती है। क्या खेत-खलिहान में काम करने का वर्णन क्या होली के उत्सव का राग रंग ढोल-मंजीरों की बजवाल चौपाल घर-झोंपड़ी सब का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक है।

<u>शहरी जीवन-वातावरण</u>— गोदान में शहरी जीवन की कुछ झलकियाँ ही मिलती हैं। नगरों के वातावरण और जीवन का पूर्ण चित्र वैसा नहीं है जैसा ग्रामीण है। वास्तव में शहरी जीवन केवल तुलना के हेतु मात्र प्रस्तुत किया गया है यह लेखक का मुख्य उद्देश्य नहीं है। शहरों में अनेक प्रकार के राजनीतिक सामाजिक आन्दोलन और तरह-तरह की विचारधाराएँ प्रचलित हैं। नारी-स्वच्छन्दता का आन्दोलन शिक्षित नारियों ने स्वयं चलाया हुआ है। पाश्चात्य स्वच्छन्दता और भारतीय मर्यादावाद का संघर्ष है। सरोज मालती आदि नवयुवतियाँ पाश्चात्य स्वतन्त्रता के पक्ष में हैं मेहता उसके स्थान पर नारीत्व का भारतीय आदर्श प्रचारित करते हैं। 'बिजली सम्पादक ओंकारनाथ और उनका पत्र ग्राम-सुधार का बीड़ा उठाए हुए हैं। मिर्जा खुर्शेद को तरह-तरह की हसरतें सूझती रहती हैं। कभी तो वह पैसे वाले शहरियों को कबड्डी दिखाने के लिए, उनसे टिकट के पैसे झाड़ कर गरीब मजूरों में बाँटता है कभी वेश्याओं की समस्या का इलाज ढूँढता है तो कभी मजदूरों को हड़ताल के लिए भड़काता है। नगरों में नई-नई व्यापारिक कम्पनियाँ बीमा-कम्पनियाँ बैंक तथा मिल-कारखाने खुल रहे हैं। बड़े-बड़े पूँजीपति और उद्योगपति विकसित हो रहे हैं। दूसरी ओर शहरों में मजदूरों और गरीबों का जमाव हो रहा है। प्रेमचन्द ने शहरी मजदूरों और बेकारों की बड़ी सजीव झाँकी प्रस्तुत की है—गाँव (बेलारी के गाँव) के और कई आदमी मजूरी की टोह में शहर जा रहे थे। बातचीत में रास्ता कट गया और नौ बजते-बजते सब लोग अमीनाबाद के बाजार में जा पहुँचे। गोबर हैरान था। इतने आदमी नगर में कहाँ से आ गये? आदमी पर आदमी गिरा पड़ता था।

'उस दिन बाजार में चार-पाँच सौ मजदूरों से कम न थे। राज बढ़ई, लोहार, बेलदार, खाट बुनने वाले टोकरी ढोने वाले और संगतराश सभी जमा थे।

र यह जमघट देखकर निराश हो गया। इतने सारे मजूरों को कहाँ काम मिला ता है।" धीरे-धीरे एक-एक करके मजूरों को काम मिलता जा रहा था। कुछ ोग निराश होकर घर लौटे जा रहे थे। अधिकतर वह बूढ़े और निकम्मे बच रहे थे जिनका कोई पुछत्तर न था।"

प्रेमचन्द ने 'गबन' में शहरी निम्न मध्यवर्ग का जीवन चित्रित किया था। किन्तु गोदान में मुख्यतः उच्चवर्ग के जमींदार, मिल-मालिक शिक्षित प्रोफेसर और कर पार्टियाँ देते-लेते हैं शराब-कबाब आम चलता है वे चन्दा देते हैं और लुगा ऊँचा जीवन बिताते हैं। कारों में घूमते हैं बढ़िया खाते-पहनते हैं, कोठी-बंगलों में ते हैं। गरीब लोग गन्दी गलियों तथा कोठरियों अहातों में गुजर करते हैं। र में मजूरों गाँव-बस्ति वालों का जीवन दरिद्रता की करुण कहानी है।

शहरी उच्चवर्ग—विशेषकर जमींदार और पूँजीपति विलास-पूर्ण जीवन बिताते है। कुँवर दिग्विजयसिंह घोर विलासी है। खन्ना राजा सूर्यप्रतापसिंह भी रसिक और विलासी है। उन्मुक्त भोग और स्वच्छन्द विहार शिक्षित नारियों और पुरुषों का जीवन-सिद्धान्त बनता जा रहा है। शिक्षिता नारी पाश्चात्य रङ्ग में रङ्गी फैशन की पुतली बन रही है। वह तितली बनकर पुरुषों का मन इशारे पर नचाने में आनन्द मनाती है। शिक्षित युवक-युवतियाँ स्वच्छन्द प्रेम पर विश्वास करते हैं। रुद्रपाल और सरोज में ऐसा ही प्रेम-सम्बन्ध हो गया। माँ-बाप के विरोध की भी परवाह नहीं की जाती। रायसाहब की बात को रुद्रपाल ठुकरा देता है। पुरुष की लम्पटता के कारण कई बार पति-पत्नी में कलह हो जाता है और पारिवारिक शान्ति नहीं रहती। खन्ना-गोविन्दी का उदाहरण ऐसा ही है। मीनाक्षी और दिग्विजयसिंह का मामला तो दूसरी सीमा तक ही पहुँच जाता है। नगर-समाज में भी पुरुष की ही प्रधानता है वही कमाता है और अपना प्रभाव रखता है किन्तु बहुत-सी शिक्षित नारियाँ भी अब जीवन के अनेक क्षेत्रों में काम करने लगी हैं। मालती अपने माता पिता-बहनों के खर्च का भार स्वयं वहन करती है।

शहरी जीवन में स्वार्थ अधिक मात्रा में घुसता जा रहा है। गाँव के छोटे महाजनी रूप का शहरी विकास पूँजीपतियों की व्यावसायिक बुद्धि के रूप में हुआ है। इस वर्ग का नारा है Business is business अर्थात् व्यापार व्यापार है। व्यापार अलग चीज है दोस्ती अलग। खन्ना अपने मित्र रायसाहब से भी सूद समेत धन वसूल करता है। वे लोग जहाँ भी मिलते हैं, अपने मतलब की बात करते हैं। विचार में तन्खा मंडा को रुचि नहीं। तन्खा रायसाहब के पास अपनी कम्पनी के मेम्बर बनना चाहता है। तन्खा इलेक्शन में मिर्ज़ा खुर्शेद का नाम करके हमारे पक्ष में हजारों रुपये उड़ाने की बात सोचता है। मिल-मालिक मजूरों को कम मजूरी देते

है मजदूरों को दो जून खाना भी नहीं जुटता।" खन्ना स्वयं मैनेजिंग डायरेक्टर बना हजारों रुपये मासिक वेतन लेता है। पर मजदूरों की मजूरी और भी घटा देता है। ऐसी स्थिति मजदूरों की अशांति का कारण बनती है। मजदूर हड़ताल कर देते हैं। संघर्ष तन जाता है। मिलों में मजदूरों की हड़तालें और संघर्ष उस युग में आए दिन होने लगे थे। पत्र-सम्पादक ओंकारनाथ और खुर्शेद जैसे नेता मजदूरों को भड़का कर आग में झोंक देते हैं आप आग से अलग हो जाते हैं। ऐसे ढोंगी नेता जन-सेवा के नाम पर कई बार अपने स्वार्थों को ही सिद्ध करने की धुन में रहते हैं। रायसाहब और मिस मालती-जैसों का मेल हो जाना ऐसे ही प्रयत्न थे। इस स्वार्थी मनोवृत्ति के कारण शहर में किसी को एक-दूसरे से सच्ची सहानुभूति और संवेदना नहीं रही। रायसाहब अपने वर्ग की सच्ची तसवीर प्रस्तुत करते हुए कहते हैं— 'नहीं सह सकता उनकी हँसी जो अपने बराबर के हैं क्योंकि उनकी हँसी में ईर्ष्या व्यंग्य और जलन है।...सम्पत्ति और सहृदयता में बैर है। हम भी दान देते हैं, धर्म करते हैं, लेकिन केवल अपने बराबर वालों को नीचा दिखाने के लिए... हम में से किसी पर डिग्री हो जाय कुर्की आ जाय हवालात हो जाय ...और किसी का जवान बेटा मर जाय तो उसके और भाई उस पर हँसेंगे बगलें बजायेंगे ... और मिलेंगे तो इतने प्रेम से जैसे हमारे पसीने की जगह खून बहाने को तैयार हैं। ह्रासोन्मुखी जमींदारी का बहुत सुन्दर चित्रण प्रेमचन्द ने किया है। जमींदार भी अब शहर के बैंकों और पूँजीपतियों पर आधारित हो गये हैं। अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए अनेक ढोंग रचते हैं—एक ओर जनता के रक्षक बनते हैं दूसरी ओर सरकारी अफसरों से बनाकर रखते हैं।

ब्रिटिश नौकरशाही और पुलिस-पद्धति के काले कारनामों का भी अच्छा चित्रण हुआ है। दारोगा रिश्वत लेने की ही ताक में रहते हैं अमले-हाकिम डालियाँ लेते और नजर-नजराने खाते हैं और टिड्डीदल गाँवों पर हमेशा बोझ रहते हैं।

इस प्रकार प्रेमचन्दजी ने शहरी जीवन की भी अनेक झाँकियाँ प्रस्तुत करके सामयिक समाज और वातावरण का सच्चा चित्रण किया है। इस यथार्थ देश-काल वातावरण के चित्रण से रचना में युग-धर्म की पूरी रक्षा होती है। पाठक को सब कुछ स्वाभाविक प्रतीत होता है। शहरी शिक्षित पात्रों की बातचीत भी उनके शिक्षित संस्कारों और बौद्धिक विकास की परिचायक होती है। उनकी भाषा में भी नागरिकता है।

देशकाल-वातावरण की यह सजीवता और स्वाभाविकता जहाँ एक ओर रचना का ऐतिहासिक महत्त्व बढ़ाती है वहाँ रस-परिपाक में भी सहायक होती है।

न रस-सामग्री अर्थात् साहित्य-अनुभूतियों में औचित्य की प्रतिष्ठा हो जाती है। सभी परिस्थितियों और भावों का साधारणीकरण और सहज सम्प्रेषण हो जाता। अतः देश-काल की सजीवता प्रेमचन्द के उपन्यासों के ऐतिहासिक एवं साहित्यिक हत्व को बढ़ाने में खूब सहायक सिद्ध हुई है। उनके व्यापक मानव-जीवन-अध्ययन र से वातावरण-चित्रित होना पड़ता है।

६. संवाद-शैली

संवाद या कथोपकथन भी किसी प्रबन्ध रचना में अत्यावश्यक है। हमारा दैनिक बात-चीत वार्तालाप से ही चलता है। व्यापक और विस्तृत जीवन-प्रसङ्गों की बातचीत के बिना कल्पना ही नहीं की जा सकती। अतः कथोपकथन एक ओर जीवन-प्रसङ्गों को स्वाभाविक बनाते हैं दूसरी ओर उनके समावेश से प्रबन्ध में रोचकता की वृद्धि होती है। किन्तु कथा-प्रबन्ध में उन संवादों को ही स्थान मिलना चाहिये जो कथा तथा चरित्रों के विकास से सम्बन्ध रखते हों अन्यथा प्रबन्ध में नीरसता का कारण बन जाते हैं। हम पहले भी विवेचन कर चुके हैं कि सर्वप्रथम प्रेमचन्द ने ही सजीव स्वाभाविक रोचक और सार्थक कथोपकथन का आदर्श प्रस्तुत किया। उनके 'गोदान' में संवाद-शैली भी कला के उत्कर्ष पर पहुँची हुई है।

'गोदान' के प्रायः सभी संवाद पूर्ण सार्थक हैं। वे कथा और चरित्रों के स्वाभाविक विकास में भी सहायक सिद्ध हुए हैं तथा रोचक और सजीव-स्वाभाविक भी हैं। गोदान का आरम्भ भी इन्हीं सार्थक संवादों से हुआ है—होरीराम ने दोनों बैलों को सानी-पानी देकर अपनी स्त्री धनिया से कहा—गोबर को ऊख गोड़ने भेज देना। मैं न जाने कब लौटूँ। जरा मेरी लाठी दे दे।

धनिया के दोनों हाथ गोबर से भरे थे। उपले पाथ कर आई थी। बोली—अरे, कुछ रस-पानी तो कर लो। ऐसी जल्दी क्या है?

और पाठकों को बताने की आवश्यकता नहीं कि किस प्रकार होरी-धनिया का यह पहले दो पृष्ठों का वार्तालाप है कितना स्वाभाविक और सजीव है। यह होरी-धनिया के प्रगाढ़ पारस्परिक-प्रेम उनकी नितान्त निर्धनता और दयनीय स्थिति का तो परिचायक है ही साथ ही इसमें होरी और धनिया की मूल-प्रकृति तथा चरित्र-स्वभाव का पूरा पता चल जाता है। होरी की दब्बू खुशामदी प्रकृति और धनिया का असन्तोष विद्रोह और ममता कितने स्पष्ट और सजीव हैं। यह वार्तालाप अद्भुत रोचक है। उदात्त शृङ्गार और हास्य-विनोद तथा करुणा की छाया का कैसा त्रिवेणी-सङ्गम इन दो पृष्ठों में पाया जाता है। बात-चीत रोष और असन्तोष से कैसे हास-परिहास में बदल जाती है और फिर उसमें 'साठ तक पहुँचने की नौबत ही न आने पावगी' से कैसे एकदम करुणा की छाया घनीभूत हो

जाती है यह सब पढ़ते ही बनता है। कथोपकथन के समस्त गुण इस संवाद में विद्यमान् हैं। संक्षिप्तता स्वाभाविक-सजीवता नाटकीयता, रोचकता और प्रबंध में सार्थकता आदि सब विशेषताएं पाई जाती हैं।

प्रेमचन्द की संवाद शैली में नाटकीयता का गुण खूब पाया जाता है 'गोदान' में यह चरमोत्कर्ष पर है। प्रेमचन्द वार्तालाप कराते हुए पात्रों की भाव भंगियों और चेष्टाओं का ऐसा सजीव वर्णन करते हैं कि पात्रों का अभिनय साकार आँखों के आगे नाचने लगता है। इस आरम्भिक संवाद में ही 'होरी ने अपने झुर्रियों से भरे हुए माथे को सिकोड़कर कहा' —धनिया ने 'परास्त होकर होरी की लाठी मिरजई पगड़ी जूते और तमाखू का बटुआ लाकर सामने पटक दिये' 'होरी ने उसकी ओर आँखें तरेरकर कहा' 'होरी के गहरे साँवले पिचके हुए चेहरे पर मुसकराहट की मृदुता झलक पड़ी। धनिया ने लजाते हुए कहा' आदि में नाटकीय तत्व कितने स्पष्ट और स्वाभाविक हैं। इसी प्रकार कहीं धनिया 'हाथ मटकाकर' बोलती है तो कहीं दातादीन 'पनी हाँडि से ताक कर' बात करते हैं। कोई रोष में कौड़ी की-सी आँखें निकालकर उत्तर देता है तो कहीं रायसाहब 'मूंछों में मुस्कराहट लपेट कर' खन्ना से बात करते हैं। कथोपकथन कराते समय भावानुकूल भावभंगियों के ये नाटकीय संकेत बहुत ही उपयुक्त हैं।

'गोदान' में अधिकांशतः सुन्दर, स्वाभाविक सजीव, संक्षिप्त रोचक और सार्थक संवाद ही पाये जाते हैं। प्रेमचन्दजी ने स्वाभाविकता की रक्षा के लिए पात्रानुकूलता का पूरा ध्यान रखा है। सभी पात्र अपने-अपने स्वभाव प्रकृति संस्कार, शिक्षा और परिस्थिति के अनुसार बातचीत करते हैं। उनकी भाषा भी उनके शिक्षा अनुभव के अनुरूप ही होती है। प्रेमचन्द की पात्रानुरूप संवाद शैली की एक बड़ी विशेषता यह है कि बहुधा उनके समूचे उपन्यास में पात्रों के वार्तालाप विशिष्ट प्रतीत होते हैं। यह पात्र-वैशिष्ट्य धनिया होरी गोबर मेहता आदि के संवादों में स्पष्ट दिखाई देता है। धनिया के कथन सर्वत्र या तो निवारण गरीबी और अन्याय से क्षुब्ध उसके हृदय के सच्चे उग्र विक्षोभकारी निर्भीक व्यंग्यपूर्ण उद्‌गार होंगे या अपने आत्मीय बन्धुओं के प्रति उसके ममतापूर्ण स्निग्ध स्नेह के परिचायक होंगे। गरीबी से असन्तोष होरी के भोलेपन तथा शोषकों और समाज के ठेकेदारों के प्रति उसके उद्‌गारों में व्यंग्य की निर्ममता विशिष्टता प्रकट करती है। गोबर के भी विद्रोह और असन्तोष के उद्‌गार ऐसे ही व्यंग्यपूर्ण हैं। वास्तव में प्रेमचन्द की शैली में व्यंग्य का विशेष पुट सर्वत्र पाया जाता है। इस व्यंग्यात्मक संवाद-शैली ने उपन्यास में मजा ला दिया है। यह वीभत्स रस और हास्य रस का अङ्ग बनकर प्रकट हुई है। एक-दो उदाहरण देखिए। होरी मालिकों की खुशामद करने गया था। गोबर ने सीधा कटाक्ष

दिया—"यह तुम रोज़ रोज़ मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो।" होरी यह सफाई देता हुआ कहता है कि मतलब न जाता हूँ, पाँव में सनीचर नहीं है और न सलामी करने में कोई बड़ा सुख मिलता है।" या मालिक की व्याप्ति देखिए—"बड़े आदमियों की हाँ में हाँ मिलाने में कुछ-न-कुछ आनन्द तो मिलता ही है। नहीं तो लोग मेम्बरी के लिए क्यों खड़े होते?" होरी और धनिया की बातचीत के समय धनिया के वचन कितने सजीव और मार्मिक व्यंग्यपूर्ण हैं! शहर में जब गोबर झुनिया को मारता है और झुनिया को बचाने वाली सहानुभूतिवाली बुढ़िया को भी कहता है—"तुम मेरे घर में मत आया करो" तो बुढ़िया व्यंग्य के साथ कहती है—"तुम्हारे घर न आऊँ तो मेरी रोटियाँ कैसे चलेंगी? यहीं से माँग-जाँच कर ले जाती हूँ, तब तो पेट होता है। मैं न होती भैया तो यह बच्ची आज तुम्हारी लातें खाने के लिए बैठी न होती।" होरी ने भोला से गाय लेने के लिए सगाई कराने का झाँसा दिया किन्तु जब भोला ने अपना संकट सुनाया तो संकट की चोट से उसने अस्वीकार कर दिया और भूसा देने का वायदा कर लिया। गोबर-झुनिया ने जब यह बात सुनी तो बहुत बिगड़ी। गोबर बोला—"तो तुम अब उसकी सगाई ठीक करोगे दादा?" झुनिया ने तीखी आँखों से देखा—"अब यही एक उद्यम तो रह गया है। नहीं देना है हमें भूसा किसी को। यहाँ रोटी-ओढ़ना किसी का कर्ज नहीं खाया है।" और जब भोला भूसा लेने आ पहुँचता है तो गोबर बाहर बोला—"भोला दादा आ पहुँचे। मन-ही-मन खुश हैं यह उन्हें दे दो फिर उनकी सगाई ढूँढने निकलो!" कैसी बढ़िया व्यंग्य-शैली है! खन्ना का बच्चा बीमार है। गोविन्दी डा० नाम को बुलाने के लिए कहती है। खन्ना मालती को बुलाने के पक्ष में हैं। गोविन्दी व्यंग्य करती है—"मुझे उन पर भरोसा नहीं है। वह मरदों के दिल का इलाज करलें और किसी का दवा उनके पास नहीं है।" इस प्रकार की व्यंग्यात्मक संवाद शैली ने रोचकता खूब उत्पन्न कर दी है। इन संवादों में पात्रों की वास्तविकता भी खूब दिखाई देती है। इस प्रकार के वार्तालाप से खूब उभार प्रेमचन्द की कला की बड़ी शक्ति है। हास्य-परिहासपूर्ण संवाद भी कुछेक स्थलों पर मिलते हैं। जब धनिया भोला को भूसा देने का विरोध करती है तो होरी ने पुचकार दिया—"—लेकिन उसकी बदमाशी का भी तो देखो। मुझ से जब मिलता है, तेरा बखान ही करता है—ऐसी लक्ष्मी है, ऐसी सलीकेदार है।"

धनिया के मुख पर स्निग्धता झलक पड़ी। मन भाव छुपाकर हिकारत के भाव से बोली—मैं उनके बखान की भूखी नहीं हूँ, वे अपना बखान अपने रखें।

होरी ने स्नेह-भरी मुस्कान के साथ कहा—मैंने तो कह दिया, भैया, नाक पर मक्खी भी नहीं बैठने देती, बातियों से बात करता है, ...

जाय कि यह औरत नहीं लक्ष्मी है। कहता था जिस दिन तुम्हारी बरवाली का मुँह सबेरे देख लेता हूँ उस दिन कुछ-न-कुछ चक्कर हाथ लगता है। मैंने कहा—तुम्हारे हाथ लगता होगा यहाँ तो रोज देखते हैं कभी पैसे से भेंट नहीं होती।

कथोपकथन की रोचकता और आकर्षण प्रत्युत्पन्न-मति अर्थात् हाजिर-जवाबी से खूब बढ़ जाते हैं। यद्यपि 'गोदान' के संवादों में हाजिरजवाबी बहुत अधिक नहीं है हालांकि शिक्षित नागरिक पात्रों के वार्तालाप में वाक् चातुर्य और प्रत्युत्पन्नमति का पर्याप्त अवसर था फिर भी मेहता मालती खुर्शेद आदि के कुछ वार्तालाप हाजिरजवाबी से ओत-प्रोत हैं। मालती बात चीत करने में बहुत पटु है। वह मेहता के प्रति आकर्षित है इसी से उनके हास्यपूर्ण चतुर मुद्रार्थ-संवाद का एक उदाहरण देखिए। वह कहती है 'फिलासफर हमेशा मुर्दा-दिल होते हैं जब देखिए, अपने विचारों में मग्न बठे हैं। आपकी तरफ ताकेंगे मगर आपको देखेंगे नहीं आप उनसे बातें किये जायें कुछ सुनेंगे नहीं। जैसे शून्य में उड़ रहे हों। आक्सफोर्ड में मेरे फिलासफी प्रोफेसर मिस्टर हसबेंड थे

खन्ना ने टोका—नाम तो निराला है।

'जी हाँ और थे क्वारे हैं

'मिस्टर मेहता भी तो क्वारे

'यह रोग सभी फिलासफरों को होता है।

अब मेहता को अवसर मिला। बोले—आप भी तो इसी मर्ज में गिरफ्तार हैं।

'मैंने प्रतिज्ञा की है कि किसी फिलासफर से शादी करूँगी और यह वर्ग शादी के नाम से घबराता है। हसबैंड साहब तो स्त्री को देखकर घर में छिप जाते थे।"

इन शहरी पात्रों के कुछ संवाद बड़े हल्के भी हैं। तंखा और खन्ना आदि जब अपने मतलब की बातें करते हैं तो उनके कथन बहुत उपयुक्त नहीं लगते उनमें चातुर्य और स्वाभाविकता भी नहीं दीखती। जैसे खन्ना जब शिकार खेलने के प्रसङ्ग में बूटियाँ मोल लेता है और रायसाहब से दूसरों का उल्लू बनाने या अपने भद्र मानु की प्रशंसा के वचन बोलता है या मालती ओंकारनाथ को बनाने के लिए उनकी प्रशंसा करती है तो ऐसे स्थलों में कृत्रिमता और अस्वाभाविकता ही प्रतीत होती है। मालती के इस अवसर के कथनों में कोई चातुर्य या चमत्कार नहीं है। पता नहीं ओंकारनाथ उसका मजाक क्यों नहीं समझ सका। इसी प्रकार तंखा का निम्न कथन भी अस्वाभाविक और कुछ थोथा हुआ-सा लगता है— 'नाटक कोई भी अच्छा हो सकता है अगर उसके अभिनेता अच्छे हों। अच्छे-से-अच्छा नाटक बुरे अभिनेताओं के हाथ में पड़कर बुरा हो सकता है। जब तक स्टेज पर शिक्षित अभि

मेंढकी नहीं जातीं हमारी नाट्यकला का उद्धार नहीं हो सकता।" खन्ना का हिन्दी नाट्यकला से न कोई सम्बन्ध है न उसका यह क्षेत्र ही है। अतः उनके मुँह से महाराज-जैसे साहित्यकार के-से शब्द उपयुक्त नहीं लगते।

नागरिक पात्रों के ही वार्तालाप में कहीं-कहीं लम्बे-लम्बे कथोपकथन दोषपूर्ण हो गए हैं। वस्तुतः इनका उद्देश्य सिद्धान्त-प्रतिपादन अथवा विविध विचारों को प्रकट करना है। फिर भी मनुष्यत्व का सैद्धान्तिक वार्तालाप रायसाहब की स्वीकारोक्ति आदि संक्षिप्त और अधिक सारगर्भित होते तो कला का उत्कर्ष होता।

'गोदान' में स्वीकारोक्ति के रूप में संवाद का एक विलक्षण प्रयोग पाया जाता है। रायसाहब और खन्ना की स्वीकारोक्तियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। अपने वर्ग के दोषों को मानने का यह ढङ्ग बड़ा चमत्कारपूर्ण है। किन्तु रायसाहब के कुछ शब्द तो मनोविज्ञान और कला दोनों दृष्टियों से अनुचित हैं जैसे वह अपने असामी के सामने अपने लिए 'गधा' शब्द तक का प्रयोग कर लेता है, और यहाँ तक कहता है— 'लक्षण कह रहे हैं कि बहुत जल्द हमारे वर्ग की हस्ती मिट जाने वाली है।" 'क्यों तुम्हारी आहों का दावानल हमें भस्म नहीं कर डालता?' आदि। ठीक है कि ऐसा जमींदार जो दिखाने के रूप में जन-सेवक बना हुआ है अपने वर्ग और पद्धति की आलोचना कर सकता है किन्तु फिर भी इतने भड़कीले वाले शब्द व्यक्त करना कुछ मनोवैज्ञानिक दोष है।

'गोदान' में कहीं-कहीं चतुराईपूर्ण विदग्ध संवाद भी हैं। पात्रों का मनोगत भाव तो कुछ और होता है किन्तु उस भाव को चतुराई से छिपाकर अपना मतलब पूरे करने के लिए कुछ और ही बात करते दिखाई देते हैं। होरी के मन में गाय को देखकर लालसा जाग उठी। अतः वह भोला को सगाई का झाँसा देता हुआ कहता है—मेरे ससुराल में एक मेहरिया है। तीन-चार साल हुए, उसका आदमी उसे छोड़ कर कलकत्ते चला गया।" देखने-सुनने में भी अच्छी है। बस सच्छमी समझ लो। भोला झाँसे में आकर कहता है कि गाय चित चढ़ गई हो तो ले लो। तब होरी अपने मन के भाव को छिपाता हुआ चतुराई से सौदा पटाता है— 'यह गाय मेरे मान की नहीं है दादा! मैं तुम्हें नुकसान नहीं पहुँचाना चाहता। अपना धरम यह नहीं है कि मित्रों का गला दबावें। जैसे इतने दिन बीते हैं वैसे और भी बीत जायेंगे। इसी प्रकार शहर में ऊख ले जाकर बेचने की बात को होरी छिपाना चाहता है। दाम को मिरजा ने पूछा—तुम्हारी ऊख कब तक जायगी होरी काका?

होरी ने झाँसा दिया—अभी तो कुछ ठीक नहीं है भाई! तुम कब तक ले जाओगे?

परिस्थिति और प्रसङ्ग के अनुसार बात करने में प्रेमचन्द बहुत कुशल हैं।

दातादीन होरी के सामने रुपा के विवाह की योजना जिस ढङ्ग से प्रस्तुत करता है वह पढ़ने ही बनता है। दातादीन ने आकर कहा—"क्या हुआ होरी, तुम्हारी लड़की के बारे में ?" "सुना तारीख को पन्द्रह दिन और रह गये हैं।" होरी ने विवशता बताई। पण्डितजी बोले "लेकिन मरजाद तो बचानी ही पड़ेगी। विवाह कैसे होगा? बाप-दादों की इतनी ही निशानी बच रही है। वह निकल गयी तो कहाँ रहोगे ?"

'भगवान की मरजी है, मेरा क्या बस !

'एक उपाय है जो तुम करो।' यह सुनते ही निराश होरी ने आशा से भर कर पण्डितजी के पाँव पकड़ लिए। पण्डितजी ने कहा—'निराश होने की कोई बात नहीं। बस इतना ही समझ लो कि सुख में आदमी का धरम कुछ और होता है, दुख में कुछ और। सुख में आदमी दान देता है, मगर दुख में भीख तक माँगता है।'" शरीर अच्छा रहता है तो हम बिना असनान-पूजा किये मुँह में पानी भी नहीं डालते लेकिन बीमार हो जाते हैं तो बिना नहाये-धोये कपड़े पहने खाट पर बैठे पथ्य लेते हैं।""आपत्काल में श्री रामचन्द्र ने सेवरी के जूठे फल खाये थे, बालि का छिप कर बध किया था। जब संकट में बड़े-बड़ों की मर्यादा टूट जाती है तो हमारी तुम्हारी कौन बात है। रामसेवक महतो को तो जानते हो न ?

होरी को लड़की का विवाह अधेड़ रामसेवक से करने के लिए राजी करने में इससे बढ़िया वार्तालाप की कल्पना नहीं हो सकती। होरी के मन में संस्कार का मोह जमाने और उसकी मर्यादा भावना को शिथिल करने का कैसा मनोवैज्ञानिक ढङ्ग बरता गया है। ऐसी प्रभावपूर्ण (Convincing) विश्वासोत्पादक वार्तालाप प्रेमचन्द-जैसे भाव शिल्पी कलाकार से ही सम्भव हो सकती है।

कुल मिलाकर प्रेमचन्द की संवाद-शैली सजीव कलात्मक शैली कही जा सकती है। कथोपकथन के सभी गुण—रोचकता संक्षिप्तता स्वाभाविकता नाटकीयता सजीवता पात्रानुकूलता प्रसङ्गानुकूलता भावानुकूलता सार्थकता आदि सब—उनके संवादों में पाये जाते हैं। व्यंग्यात्मकता ने इनमें विशेष शक्ति भर दी है।

७ भाषा शैली

मुन्शी प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा-साहित्य के लिए एक आदर्श भाषा-शैली का निर्माण किया। गद्य-शैली निर्माता के रूप में भी उनका अमर स्थान हिन्दी में सदा बना रहेगा। भाषा के सम्बन्ध में प्रेमचन्द ने सरलता, सहज स्वच्छन्दता, मुहावरा लोकोक्ति-प्रयोग, स्वाभाविक भावाभिव्यक्ता आदि का जो आदर्श अपनाया वह आज तक सर्वमान्य है। जन-भाषा का जो प्यारा रूप उनकी रचनाओं में पाया जाता है वही प्रायः सब लेखकों—विशेषकर कथाकारों—के लिए अनुकरणीय बना। प्रेमचन्द की भाषा-शैली के दो रूप स्पष्ट लक्षित होते हैं—एक है ग्रामीण पात्रों की बोल चाल

की भाषा का रूप और दूसरा प्रेमचन्द की निजी भाषा का साहित्यिक रूप। ग्रामीण पात्रों की भाषा में ग्राम्य भाषा—शब्दों का तद्भव रूप और स्थानीय जनभाषा का रूप पाया जाता है। ठेठ ग्रामीण शब्द जैसे—पुछत्तर, बखोर, मजूरी, पोंगा, बन पड़ गया, टूल, रासिब, भईया, भाटमग्गी, गोड़ना, कोल्हाड़, बेगलिया, महावट, जनीमी, दुबकापन आदि भी कहीं-कहीं ऐसे हैं जो प्रसंग के सही ज्ञान से ही और जानने पर अपना अर्थ आभासित कराते हैं। अधिकतर शब्द अर्द्धतत्सम या तद्भव रूप में ही प्रकट हुए हैं जिनका समझना कठिन नहीं है जैसे—गिरस्त, रसन, छिरस्त, भामा, बिसम (विस्मय) सुम (शुभ) कारन, निबाह, राच्छसिन, चाड़ीदार, सरूप, साछी, मच्छन, मरजाद, परान, परमात आदि। इन ग्रामीण पात्रों की भाषा में उर्दू-फारसी के कुछ तद्भव शब्द भी पाये जाते हैं जैसे—नजीब (नजदीक) तहकिकात, माम-दराम, जैजात, जरीवाना, मरद, बरकत, साबित, हकनाहक, वहावत, हमा-सुमा आदि। हरमुनियाँ, इसटाम, कासिब, पुलुस आदि कुछ अंग्रेजी शब्द भी तद्भव रूपों में ग्रामीणों की भाषा का अंग बने हुए हैं। प्रेमचन्द ने जोड़ी शब्दों का प्रयोग सफल किया है। ग्रामीण पात्रों की भाषा में भी जुड़वाँ शब्द खूब व्यञ्जक बने हुए हैं जैसे—रस-पानी, सानी-पानी, असबाब-पूँजी, मिलना-जुलना, साली-सलहज, पूछ-ताछ, घूम-घास, बोरे-बखरा, ताक-झाँक, दाँव-घात, दवा-दारू, टीक-टाक, मोल-भाव, नजर-न्यवछाना, धूप-घाम, लेना-देना, चलना-उगाना, दाम-कौड़ी, सँभालना-सहेजना आदि।

काठ का उल्लू, दुम दबाकर बैठना, पानी रखना, टाँग अड़ाना, पाँव सहलाना, साठे पर पाठा, नाटन बेड़ी, बहुरिया, घर, पम में रहकर मगर से बैर, जले पर नमक छिड़कना, आँखों में धूल झोंकना, गरदन पर सवार होना, आड़े हाथों लेना, मुँह में ताला लगाना, आँखें निकल आना, भारी कमना होना, बाजार तेज होना आदि मुहावरे और लोकोक्तियाँ भी ग्रामीणों की जबान पर चढ़े हुए हैं। इनके प्रयोग से उनकी भाषा अत्यधिक प्रभावशाली बनी हुई है। ग्रामीण-पात्रों की भाषा में भावानुकूलता और संक्षिप्त वाक्य-योजना भी दो विशेषता है। ग्रामीण-भाषा का सुन्दर रूप इस वार्तालाप में देखिए, स्वाभाविक मुहावरे, सार्थक व्यञ्जक शब्द, शिष्ट शब्द, सरल तद्भव शब्द, छोटे छोटे वाक्य, कोई-कोई ठेठ ग्रामीण शब्द, भावानुकूलता आदि सब गुण इसमें विद्यमान हैं—"अब की बाजार बहुत तेज था महतो, इनके अस्सी रुपये देने पड़े। आँखें निकल गयीं। तीस-तीस रुपये तो दोनों कलोरों के दिये। तिस पर गाहक रुपये का आठ सेर दूध माँगता है।

"बड़ा भारी कलेजा है तुम लोगों का भाई लेकिन फिर लाय भी तो वह माल कि यहाँ दस-पाँच गाँवों में तो किसी के पास निकलेगी नहीं।"

मोना पर नशा चढ़ने लगा। बोला—रायसाहब इसके सौ रुपये देते थे। दोनों कलोरों के पचास-पचास रुपये लेकिन हमने न दिये। भगवान ने चाहा तो सौ रुपये इसी ब्यान में पीट लूंगा।

'इसमें क्या सन्देह है भाई! मालिक क्या खाके लेंगे। नजराने में मिल जाय तो भले ही ले लें। यह तुम्हीं लोगों का गुर्दा है कि अंजुली-भर रुपये तकदीर के भरोसे गिन देते हो।'

प्रेमचन्द की भाषा में कहीं-कहीं विशेषण के क्रिया-रूप प्रयोग बड़े स्वाभाविक और सुन्दर लगते हैं जैसे सुन्दर गेहुँआ रङ्ग सँवला गया था चेहरा चिकना गया आदि।

शहरी पात्रों की भाषा में तत्सम और अर्द्ध तत्सम शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक है। तत्सम-बहुला उनकी भी भाषा नहीं। तिरछ (उर्दू) शब्दों का प्रयोग यहाँ कम है। मुहावरे, लक्षणिक प्रयोग सामानुरूपता आदि गुण इनकी भाषा में भी पूरी तरह पाये जाते हैं। इनकी भाषा में अँग्रेजी-उर्दू के भी तत्सम और अर्द्ध तत्सम रूप अपेक्षाकृत अधिक हैं। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—(मि॰ खन्ना रायसाहब से) 'आप संन्यासी बन सकते हैं मैं तो नहीं बन सकता। मैं तो समझता हूँ जो भोगी नहीं है वह संग्राम में भी पूरे उत्साह से नहीं जा सकता। जो रमणी से प्रेम नहीं कर सकता उसके देश-प्रेम में मुझे विश्वास नहीं।

रायसाहब मुसकराये—आप मुझी पर आवाजें कसने लगे।

'मुझे आपके ऊपर दया आती है। आप जो इतने दुखी निराश और चिन्तित हैं इसका एकमात्र कारण आपका निग्रह है। मैं तो यह नाटक खेल कर रहूँगा चाहे दुखान्त ही क्यों न हो। वह मुझसे मजाक करती है दिखाती है कि मुझे तेरी परवा नहीं है, लेकिन मैं हिम्मत हारने वाला मनुष्य नहीं हूँ। मैं अब तक उसका मिजाज नहीं समझ पाया। कहाँ निशाना ठीक बैठेगा इसका निश्चय न कर सका।

प्रेमचन्द की प्रौढ़ साहित्यिक भाषा उन स्थलों पर मिलती है जहाँ प्रेमचन्द अपनी अनुभूतियों के रूप में विषम परिस्थिति या पात्रों की मनोवृत्तियों की व्याख्या करते हैं। इस साहित्यिक भाषा में ही प्रेमचन्द की गद्य-भाषा-शक्ति का पूरा रूप मिलता है। स्वाभाविक रूपक-उपमा आदि अलङ्कार, बढ़िया लाक्षणिक प्रयोग व्यंग्य वक्रता सूक्ति आदि साधनों से यह भाषा सशक्त होती है। शब्दावली भी अपेक्षाकृत अधिक तत्समता लिए होती है। आरम्भ में ही होरी-धनिया के सुन्दर वार्तालाप के बाद धनिया की परिस्थिति का वर्णन करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं—विषमता के इस प्रवाह सागर में लोहाम ही वह तृण था, जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी। इन असङ्गत शब्दों ने यथार्थ के निकट होने पर भी मानो झटका देकर उसके हाथ से वह तिनके का सहारा छीन लेना चाहा—बल्कि यथार्थ के निकट होने

के कारण ही वेदना-शक्ति आ गयी थी। काना कहने से काने को जो दुःख होता है, वह क्या दो आँखों वाले आदमी को हो सकता है?"

इस उदाहरण में परम्परित रूपक, उत्प्रेक्षा और दृष्टान्त अलङ्कार, सूक्ति तथा 'कफन देकर हाथ से छीन लेना', 'पकड़े हुए सागर को पार करना', 'तिनके का सहारा' आदि लाक्षणिक प्रयोग और मुहावरे आदि सबने मिलकर भाषा को कितना प्रभावशाली और प्रौढ़ बना दिया है।

प्रेमचन्द की भाषा-शैली की सब से बड़ी शक्ति है मुहावरे और लाक्षणिक प्रयोग। शायद ही कोई तीसरी पंक्ति ऐसी मिले जहाँ बीच में कोई मुहावरा या लाक्षणिक शब्द-प्रयोग न आया हो। प्रेमचन्द के अनेक मुहावरा-प्रयोगों में भी जुड़वा शब्द मिलते हैं जैसे—कतर-ब्योंत करना, पेट-तन काटना, उलट-फेर करना आदि। इनके अतिरिक्त, त्यौरों पर तिकन पड़ना, मुँह में ताला लगना, मुँह लगाना, आपे से बाहर होना, लगाम खींचना, खून का घूँट पीकर रह जाना, पाँव में सनीचर होना, बगलें झाँकना, पीठ में घून लगना, पाँव सहलाना, कलेजा ठण्डा करना, जीभ में खुजली होना, मुँह पर झाड़ू पड़ना, मुँह में कालिख लगाना, आसन पाना, नाक पर मक्खी न बैठने देना, किसी के जलते घर में हाथ सेंकना, घी के चिराग जलाना, बगलें बजाना, मन में चोर बैठना, फरज़न पर सवार होना, रङ्ग जमाना आदि सैकड़ों मुहावरे प्रयुक्त हुए हैं। पनाह माँगना, तरह देना, खातिर जमा रखना आदि उर्दू के दो-चार ऐसे मुहावरे भी प्रयुक्त हुए हैं जो हिन्दी में प्रचलित नहीं।

प्रेमचन्द के लाक्षणिक प्रयोग तो और भी बढ़िया हैं। भावों का मानवीकरण भी कई स्थानों पर बहुत सुन्दर है जैसे—'होरी का क्रोध रस्सियाँ तुड़ा रहा था', 'बूढ़ा क्रोध' (विशेषण-विपर्यय) 'वह निर्लज्जता को लजाने, गाली और मार से भी भयभीत नहीं होती, मस्त आशा (विशेषण-विपर्यय) 'सिलिया के अन्तःकरण की सारी कोमल भावनाएँ इस वक्त मुँह खोले बैठी थीं कि आकाश से अमृत-वर्षा होगी।' भावों की यह मूर्तिमत्ता प्रेमचन्द की भाषा में प्रचुरता से पाई जाती है। प्रकृति का मानवीकरण भी (जैसे 'उदास और गरम सन्ध्या') कहीं-कहीं दिखाई देता है। स्वाभाविक लाक्षणिक प्रयोग स्थान-स्थान पर हैं जैसे 'होरी का आसन पाकर चाबुक जमाया', 'विचार में पत्थर हो गया', 'दिन पलटे हैं, 'हार की लज्जा तो पी जाने की वस्तु है', 'दूध-घी अंजन लगाने तक को नहीं मिलता', 'उदास क्रोध में बोली', 'अन्धे कूकर की तरह हवा को भौंका करे', 'गोबरी ने मोहे को लाल करके रंग जमाया', 'आदमी झूठा तभी जाता है जब मीठा हो। कसक चौदी से ही चुभता है।' 'मृदुता पषाण की आँच में जैसे झुलस गई' आदि।

प्रेमचन्द की वाग्यार्थोपमाएं जहाँ एक ओर भाषा को सुन्दर प्रभावशाली बनाती हैं वहाँ अनेक स्थानों पर वे सूक्तियाँ बन गई हैं एक-दो उदाहरण देखिए— 'और उस कुमार (गोबर) में भी पता चलते ही किसी सोए हुए शिकारी जानवर की तरह यौवन जाग उठा' 'होरी ने अपनी पराजय अपने मन में ही मानी जैसे कोई चोरी से आम तोड़ने के लिए पेड़ पर चढ़े और गिर पड़ने पर धूल झाड़ता हुआ चल खड़ा हो कि कोई देख न ले' 'जो स्वच्छन्द काम-क्रीड़ा की तरङ्गों में साँडों की भाँति दूसरों की हरी-भरी खेती में मुँह डालकर अपनी कुत्सित लालसाओं को तृप्त करना चाहते हैं' 'जिसे तुम प्रेम कहती हो वह धोखा है उद्दीप्त लालसा का विकृत रूप। उसी तरह जैसे संन्यास केवल भीख माँगने का संस्कृत रूप है" 'उस क्रोध में एक प्रकार की तुष्टि थी जैसे हम उन बच्चों को कुरसी से गिर पड़ते देखकर, जो बार-बार मना करने पर खड़े होने से बाज न आते थे खिल्ला उठते हैं—अच्छा हुआ बहुत अच्छा तुम्हारा सिर क्यों न दो हो गया (पृ १८३—१८४) आदि। प्रेमचन्द ने रूपक-उत्प्रेक्षा अलङ्कारों का भी सुन्दर प्रयोग किया है जैसे— 'सभा ही वह सीमेंट है"' । साँग रूपक का अत्यन्त बढ़िया लाक्षणिक प्रयोग इन प्रसिद्ध पंक्तियों में द्रष्टव्य है— 'वैवाहिक जीवन के प्रभात में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है और हृदय के सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों से रञ्जित कर देती है। फिर मध्याह्न का प्रखर ताप आता है क्षण-क्षण भर बगूले उठते हैं—उसके बाद विश्राममय संध्या आती है शीतल और शान्त जब हम थके हुए पथिकों की भाँति दिन-भर की यात्रा का वृत्तान्त कहते और सुनते हैं तटस्थ भाव से मानो हम किसी ऊँचे शिखर पर जा बैठे हैं जहाँ नीचे का जन रव हम तक नहीं पहुँचता। उपमा रूपक-उत्प्रेक्षा लाक्षणिकता का यह सुन्दर संगम प्रेमचन्द की प्रौढ़ साहित्यिक अलंकृत शैली का श्रेष्ठ रूप है जिसमें गद्य-काव्य का-सा आनन्द आता है। इस प्रकार के अनेक लाक्षणिक अनुच्छेद प्रस्तुत किये जा सकते हैं जैसे पृ ११—१२ पर 'उसके नारीत्व के द्वार पर" दोनों पट भेड़ लेती है।"

लाक्षणिकता और मुहावरे-बंदी के साथ व्यंग्य-वक्रता भी प्रेमचन्द की शैली की एक विशेषता है। पात्रों के संवाद में ही नहीं वह अपनी टिप्पणियाँ देते हुए पात्रों की मनोवृत्तियों की व्याख्या करते हुए व्यंग्य से भी काम लेते हैं। पीछे धनिया गोबर मालती आदि के संवादों में प्रेमचन्द की व्यंग्य-शैली पर हम प्रकाश डाल चुके हैं समाज की बुराइयों तथा धर्म के पाखण्ड का उद्घाटन करते हुए भी आरम्भ में प्रेमचन्द की व्यंग्य-वक्रता के उदाहरण दिये जा चुके हैं यहाँ केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा। गोबर जब शहर से कमा कर आता है और दातादीन के आम चीट उड़ाता है तो दातादीन कहता है कि मातादीन को भी वहाँ किसी धन्धे में लगा

सकाओगे। गोबर ने दातादीन को धमकाया—तुम्हारे घर में किस बात की कमी है महाराज जिस जजमान के द्वार पर आकर खड़े हो जाओ कुछ-न-कुछ मार ही लाओगे। जनम में लो, मरन में लो गमी में लो, खेती करते हो, लेनदेन करते हो, दलाली करते हो किसी से कुछ भूल-चूक हो जाय तो डाँड लगाकर उसका घर लूट लेते हो, इतनी कमाई से पेट नहीं भरता? क्या करोगे बहुत-सा धन बटोर कर? कि साथ ले जाने की कोई जुगुत निकाल ली है?"

प्रेमचन्द की सूक्तियाँ उनकी शैली में और ही मजा ला देती हैं। जीवन के मार्मिक तथ्यों का ऐसा मनोरञ्जक प्रकाशन सच्चे हुए साहित्यकार की ही भूमिका से सम्भव होता है। प्रेमचन्द ने दृष्टान्त उदाहरण वाक्यार्थोपमा अर्थान्तरन्यास आदि तर्कन्यायमूलक अलङ्कारों के रूप में जीवन के सत्यों को सूक्ति-बद्ध किया है। ऐसी सैकड़ों सूक्तियाँ उनकी रचनाओं से प्रस्तुत की जा सकती हैं। 'गोदान' में यह शैली पूर्व रचनाओं से अधिक है और अधिक प्रौढ़ भी। एक-दो उदाहरण देखिए—'करोड़ों प्राणियों में सत्य की पूजा हो जाता है। वही सीमेन्ट जो ईंट पर चढ़कर पत्थर हो जाता है, मिट्टी पर चढ़ा दिया जाय तो मिट्टी हो जायगा। (पृष्ठ १०१) दृष्टान्त चमत्कार और 'सत्य पू जा' होने में लाक्षणिक प्रयोग भी है। 'हम जिनके लिए त्याग करते हैं, उनसे किसी बदले की आशा न रखकर भी उनके मन पर शासन चाहते हैं, चाहे वह शासन उन्हीं के हित के लिए हो (पृष्ठ ४११) 'बमण्डी आदमी प्राय' शक्की हुआ करता है। और जब मन में चोर हो तो शक्कीपन और भी बढ़ जाता है। (पृष्ठ ३५१) पीड़क होने से पीड़ित होना कहीं म ह है। धन खोकर अगर हम अपनी आत्मा को पा सकें तो यह कोई महँगा सौदा नहीं है। (पृष्ठ ३१८) गोहरी उन औरतों में न थी, जो नेकी करके दरिया में डाल देती है।··· नेकी न करना बदनामी की बात नहीं। — मगर जब हम नेकी करके उसका एहसान जताने लगते हैं तो वही जिसके साथ हमने नेकी की थी हमारा शत्रु हो जाता है। — वही नेकी अगर करने वाले के दिल में रहे तो नेकी है बाहर निकल जाय तो बदी है। (पृष्ठ ३१८ ११)। 'खतरे में हमारी चेतना अन्तर्मुखी हो जाती है। 'मैं बिना कुछ रस पाये यों ही आता था चिड़िया एक बार परच जाती है तभी दूसरी बार आँगन में आती है। 'मन अपमान नहीं सह सकता। 'जब मन जरूरत से ज्यादा हो जाता है तो अपने निकास का मार्ग खोजता है। 'छोटी नदी को उमड़ते देर नहीं लगती' कर्ज वह मेहमान है जो एक बार आकर जाने का नाम नहीं लेता। 'प्रेम हृदय की वस्तु है देह पर उसका अधिकार नहीं। आदि पचासों सूक्तियाँ 'गोदान' से उद्धृत की जा सकती हैं।

इस प्रकार प्रेमचन्द की भाषा-शैली अत्यन्त प्रभावशाली है। 'गोदान' में

शायद ही कोई पंक्ति हो जिसमें कोई मुहावरा, लाक्षणिक प्रयोग, व्यंग्य, अलङ्कार अथवा अन्य सशक्त प्रयोग न हो। सरलता, सजीवता और प्रवाहात्मकता प्रेमचन्द की भाषा के गुण हैं ही। भावानुरूपता और पात्रानुरूपता भी सर्वत्र रहती है। भावपूर्ण स्थलों पर भावात्मक शैली, विचारपूर्ण स्थल पर विचारात्मक, घटना-वर्णन में सरल कथात्मक शैली, हास्य के प्रसङ्ग पर हास्यपूर्ण धारा आदि भिन्न-भिन्न शैलियों का सहज समावेश 'गोदान' में पाया जाता है। प्रेमचन्द अपने पहले उपन्यासों में मुसलमान नागरिक पात्रों की भाषा फारसी-अरबी के शब्दों से रञ्जित कर देते थे, वह प्रवृत्ति तो 'गोदान' में नहीं रही, क्योंकि मिर्जा खुर्शेद की भाषा में भी फारसी अरबी का कठिन शब्द शायद ही कोई हो, किन्तु पात्रों की शिक्षा-दीक्षा-संस्कार आदि के अनुसार उनकी भाषा में पात्रानुरूपता अवश्य पाई जाती है। मिर्जा खुर्शेद तथा आदि की उर्दू शैली भी यहाँ हिन्दी की प्रकृति में घुल-मिल गई है, पृथक् नहीं रही। यह प्रेमचन्द की दूरदर्शिता और यथार्थ भाषा-दृष्टि का जबरदस्त प्रमाण है। 'गोदान' तक आते-आते प्रेमचन्द समझ गए थे कि हिन्दी और उर्दू दो अलग-अलग भाषाएँ नहीं हैं, एक ही भाषा के दो रूप हैं जिनकी दूरी कृत्रिम है। प्रेमचन्द की सफल भाषा-शैली ने उपन्यास की सरसता में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। ग्रामीण भाषा ने वातावरण को सजीव बनाया है। अपवाद-रूप में ही कोई एक-आध दोष मिले तो मिल जाय अन्यथा भाषा का सर्वथा निर्दोष शक्तिशाली प्रयोग ही प्रेमचन्द ने किया है। कहीं-कहीं 'और' शब्द का अधिक प्रयोग वाक्य में खटकता है जैसे— 'एक ओर वह त्याग और जन-सेवा और उपकार के मद में तो दूसरी ओर स्वार्थ और विलास और प्रभुता के। एकाध स्थान पर वाक्य में दोष भी पाया जाता है जैसे— 'इलाके के असामियों को उनसे बड़ी श्रद्धा हो गई थी।' शब्द का सदोष प्रयोग भी एक-दो स्थलों पर है, जैसे 'जेठ का सूर्य अपने रजत प्रताप से तेज प्रदान करता हुआ'। कहीं-कहीं उर्दू-अंग्रेजी के कठिन और अप्रचलित शब्द भी खटकते हैं जैसे 'मलीहुलमुल्क' 'सरसाम' 'टाऊन' आदि। किन्तु ऐसे दोष अपवाद ही हैं। सामान्यतः प्रेमचन्द की भाषा शैली अत्यन्त सफल है।

८ आदर्शवाद यथार्थवाद

आदर्शवाद और यथार्थवाद साहित्यकार-द्वारा जीवन को चित्रित करने के दो भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण हैं। आदर्शवादी लेखक अतीत या वर्तमान जीवन में से महान् या भव्य चरित्रों को चित्रित करता है, 'प्राकृत जन' के चित्रण से उसकी सरस्वती ही 'सिर धुनि पछताने' लगती है। महान् (Sublime) की प्रतिष्ठा आदर्शवादी लेखक का उद्देश्य होता है। इसके विपरीत यथार्थवादी लेखक जनवादी होता है, वह प्राकृत जन का चित्रण ही अपनी रचना का विषय बनाता है। किसी महान् की प्रतिष्ठा के स्थान पर

यह साधारण जीवन का ही यथातथ्य चित्रण करता है। मानव अपनी समस्त दुर्बलताओं और स्वाभाविक सबलताओं के साथ यथार्थ रूप में यथार्थवादी रचनाओं में स्थान पाता है। आदर्शवादी लेखक जीवन के कतिपय महान् क्षणों से सम्बन्धित घटनाएँ चुनता है। इसके विपरीत यथार्थवादी लेखक जीवन की साधारण घटनाएँ—साधारण व्यक्तियों से सम्बन्धित प्रसङ्ग अपनाता है। आदर्शवादी लेखक का मूलमन्त्र होता है—कला में दुराव अपेक्षित है (Art lies in concealment)। वह जीवन की सामान्य बुराइयों पर ध्यान नहीं देता या उन्हें जानकर छोड़ देता है। इसके विपरीत यथार्थवादी साहित्यकार किसी प्रकार का दुराव-छिपाव नहीं करता वह ...न जीवन की बुराइयों को उघार कर रख देता है। आदर्शवादी लेखक की दृष्टि ...य जीवन पर केन्द्रित रहती है जबकि यथार्थवादी की सामान्य जीवन पर। ...र्शवादी लेखक विशेष या महत् का उपासक होता है—महत् या उदात्त चरित्र ...ष्ट घटना महत् उद्देश्य महत् या उदात्त (Grand) भाषा सब कुछ विशेष या उदात्त—हैं। यथार्थवादी साधारण का चितेरा होता है—साधारण मानव चित्रण साधारण घटना साधारण से ही प्रच्छन्न उच्च उद्देश्य साधारण जनभाषा—सब कुछ साधारण अनगढ़ तथापि स्वाभाविक सुन्दर। आदर्शवादी की आदर्श-स्थापना उसकी रचना में स्पष्ट रहती है वह 'जीवन में क्या होना चाहिए' यही दिखाना अपना उद्देश्य रखता है 'जीवन में क्या है और क्या हो सकता है'—इससे उसका विशेष प्रयोजन नहीं होता। यथार्थवादी की दृष्टि मुख्यतः 'क्या है और जीवन में क्या हो सकता है'—इस पर ही रहती है 'क्या होना चाहिए' उसमें प्रायः प्रच्छन्न रहता है। आदर्शवादी लेखक के बीज भाव प्रायः उत्साह और करुणा होते हैं यथार्थवादी के बीज भाव प्रायः घृणा और करुणा होते हैं।

आदर्श और यथार्थवाद दोनों की ही सीमाएँ हैं। अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करने पर ये अपनी मर्यादा खो देते हैं जिससे साहित्य की भी मर्यादा नष्ट हो जाती है। आदर्शवाद यदि अलीक-कल्पना (Utopia) हो जायगा अव्यावहारिक तथा असंभाव्य होगा तो किसी काम का न होगा और यथार्थवाद भी यदि नग्न कुरुचिपूर्ण यथार्थ हो जायगा तो अग्राह्य एवं त्याज्य बन जायगा। स्वप्निल कोरे आदर्शवाद के स्थान पर क्रियात्मक आदर्शवाद ही वांछनीय होता है। इसी प्रकार स्वस्थ और प्रेरणापूर्ण यथार्थवाद ही साहित्यिक सत्य बन सकता है। प्रेमचन्दजी स्वयं आदर्शवाद और यथार्थवाद को दो अतियाँ मानते थे। कोरा या नग्न यथार्थवाद हमें केवल बुराई का अवलोकन कराता है हमारी आँखें खोल देता है पर जीवन में बुराई ही बुराई प्रतीत होने से निराशा की-सी स्थिति उत्पन्न कर देता है इसलिए अवांछनीय है। कोरे काल्पनिक आदर्शवाद को भी प्रेमचन्द व्यर्थ मानते थे। 'किसी देवता क

कल्पना करना आसान है, पर उसमें प्राण प्रतिष्ठा करना कठिन ही है। आदर्शवाद हमें किसी अतीन्द्रिय स्वप्न लोक में पहुँचा देता है जिससे धरती का स्वर नहीं सुनता। इसी से प्रेमचन्द आदर्शोन्मुख यथार्थवाद या आदर्श और यथार्थ के समन्वय के पक्षपाती थे। उन्होंने अपने उपन्यासों को भी आदर्शोन्मुख यथार्थवादी या यथार्थोन्मुख आदर्शवादी कहा है।

नन्ददुलारे वाजपेयी ने प्रेमचन्द को आदर्शवादी लेखक माना है। उनका कथन है— 'कोई कलाकार या तो यथार्थवादी हो सकता है या आदर्शवादी ही। ये दोनों परस्पर विरोधी विचार-धाराएं और कला-शैलियाँ हैं। इनका मिश्रण किसी एक रचना में सम्भव नहीं। साहित्यिक निर्माण में यथार्थोन्मुख आदर्शवाद या आदर्शोन्मुख यथार्थवाद नाम की कोई वस्तु नहीं हो सकती। 'आदर्श और यथार्थ' को मिलाने वाला कोई पृथक वाद नहीं है। यह तर्कसङ्गत प्रतीत नहीं होता। क्योंकि दो परस्पर विरोधी जीवन-दर्शनों और कला-परिपाटियों में एकता की कल्पना ही कैसे की जा सकती है ? (प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन पृ० १५)। और नन्ददुलारे वाजपेयीजी यही निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं 'वास्तव में प्रेमचन्दजी अपने विचार और लेखन में आदर्शवादी है।

डा नगेन्द्र ने भी प्रेमचन्द को आदर्शवादी लेखक ही कहा है। उनका कहना है 'आदर्शवाद और यथार्थवाद में मूल विरोध है। पहले का आधार भावगत दृष्टिकोण है और दूसरे के लिए वस्तुगत दृष्टिकोण अनिवार्य है। आदर्शवादी कल्पना-विलासी और स्वप्न-द्रष्टा न होकर व्यावहारिक भी हो सकता है। उसके आदर्श कल्पना अथवा अतीन्द्रिय लोक के स्वप्न न होकर व्यवहार-जगत् के नैतिक समाधान भी हो सकते हैं। प्रेमचन्द के आदर्शवाद का यही रूप है वह रोमानी आदर्शवाद नहीं है, व्यावहारिक आदर्शवाद है। परन्तु यथार्थवाद नहीं है, क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि जो रोमानी नहीं है वह यथार्थ ही हो। इस सम्बन्ध में हमारा निवेदन है कि भावगत दृष्टिकोण तो यथार्थवादी का भी होता है क्योंकि कोरा वस्तुगत दृष्टिकोण साहित्यिक परिधि में कैसे आ सकता है ? हाँ यथार्थवादी भावुकता में नहीं बहता। वह वस्तु-जगत् के यथार्थ चित्रों को अपनी अनुभूति का विषय बनाता है। आदर्शवाद और यथार्थवाद का अन्तर इसी रूप में समझना चाहिए कि आदर्शवाद वस्तु-जगत् से परे कल्पना-लोक अथवा इतिहास या वर्तमान के आदर्श जीवन में विचरण करता है जबकि यथार्थवाद वस्तु-जगत् पर ही आधृत है। इस दृष्टि से प्रेमचन्द-साहित्य पर विचार किया जाय तो 'रानी सारंधा'-जैसी कुछ ऐतिहासिक कहानियों और दो चार आदर्श कथाओं के अतिरिक्त प्रेमचन्द के साहित्य को आदर्शवादी साहित्य नहीं कहा जा सकता। 'मृच्छकटिक'-जैसी दो चार रचनाओं को

लेकर अब तक हमारा समस्त प्राचीन संस्कृत साहित्य आदर्शवादी साहित्य ही है। प्राचीन हिन्दी साहित्य भी एकाध अपवाद को छोड़कर आदर्शवादी ही कहा जा सकता है। जीवन की जन-समस्याओं तथा जन-भावनाओं अर्थात् साधारण जीवन यथार्थों का चित्रण आधुनिक युग से ही आरम्भ हुआ। और इस प्रकार प्रेमचन्द का साहित्य एक ओर प्राचीन क्लासिकल संस्कृत साहित्य से भिन्न है दूसरी ओर प्राचीन हिन्दी साहित्य से भी दृष्टि-भेद उसमें स्पष्ट है। प्रेमचन्द के उपन्यास अपने पूर्व-युग के आदर्शवादी उपदेश-प्रधान उपन्यासों से भी भिन्न हैं। अतः प्रेमचन्द को आदर्शवादी लेखक उस रूप में नहीं माना जा सकता जिस रूप में वाल्मीकि कालिदास तुलसीदास कबीर और यहाँ तक कि जयशंकरप्रसाद ('कंकाल' जैसे एकाध अपवाद को छोड़ कर) आदि हैं।

हम पीछे देख चुके हैं कि प्रेमचन्द की दृष्टि आरम्भ से ही जीवन के यथार्थ चित्रों पर केन्द्रित रही है। अपने मामा की यथार्थ जीवन घटना पर लिखी गई उनकी पहली रचना इस बात का सबूत है कि प्रेमचन्द आरम्भ से ही यथार्थवादी दृष्टि रखते थे। उनके 'सेवासदन' ने समग्र हिन्दी उपन्यास-साहित्य को सच्ची यथार्थवादी दृष्टि प्रदान की है इस सत्य से इनकार नहीं किया जा सकता। साधारण जन-जीवन का जो यथार्थ चित्रण उन्होंने किया है वह आदर्शवादी लेखक की कल्पना से बाहर ही रहता है। अतः प्रेमचन्द को आदर्शवादी लेखक कहना उनकी यथार्थ दृष्टि के मूल्य को कम करना है। प्रेमचन्द को आदर्शवादी साहित्य-परम्परा में नहीं रखा जा सकता।

हाँ प्रेमचन्द की यथार्थवादी धारा में कुछ अवरोध पाया जाता है। 'वरदान' 'प्रतिज्ञा' 'सेवा-सदन' 'रङ्गभूमि' 'कायाकल्प' आदि पहली रचनाओं में प्रेमचन्द का झुकाव आदर्शवाद की ओर अपेक्षाकृत अधिक रहा है। इनमें भी आदर्श और यथार्थ के निर्वाह में अन्तर है। 'वरदान' में आदर्शात्मक प्रवृत्ति बाद की रचनाओं से अधिक है और 'सेवासदन' में यथार्थवादी दृष्टि 'कायाकल्प' आदि बाद की कुछ रचनाओं से कुछ अधिक है। किन्तु कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द अपनी 'गोदान'-पूर्व की रचनाओं में यथार्थोन्मुख आदर्शवादी हैं। इनमें प्रेमचन्द ने हृदय-परिवर्तन सुधार समझौता आदि के रूप में आदर्शवादी प्रवृत्ति का आग्रह अपनाया है। किन्तु इनमें भी यथार्थ दृष्टि बराबर रही है। अधिक सत्य यह है कि प्रेमचन्द यथार्थ से आरम्भ करके प्रायः सभी उपन्यासों की परिणति आदर्श में करते रहे हैं। अन्त तक आते आते प्रायः सभी बुरे पात्रों का हृदय-परिवर्तन हो जाता है या वे रङ्गमञ्च से हटा दिये जाते हैं और सत् की असत् पर विजय करा दी जाती है। किसी आदर्श ग्राम-आश्रम अथवा सदन के निर्माण में उपन्यास का अन्त होता है। इस अन्तिम आदर्शवादी सिद्धि के ही आधार पर इन रचनाओं को भी आदर्शवादी नहीं कहा जा सकता क्योंकि प्रेमचन्द

पतन या सुधार का आँचल भी वह यहाँ छोड़ चुके हैं किन्तु क्रान्ति का स्पष्ट आह्वा
भी वह नहीं कर सके हैं। यहाँ आकर शायद उन्होंने कहा है कि पड़ तक दोष पु
हुए हैं अतः ऊपर से लीपा-पोती करने या कुछ कान-पाँव तोड़ने से कुछ न होग
सब-कुछ बदलना होगा सम्पूर्ण व्यवस्था में परिवर्तन लाना होगा चाहे गांधीवा
ढङ्ग से लाया जाय चाहे मार्क्सवादी पद्धति अपनाई जाए मूल बात परिवर्तन है
आमूल-चूल परिवर्तन की सिद्धि होने तक किन्हीं दिशाओं में सुधार के प्रयत्न
किये जा सकते हैं पर वह असली हल नहीं है असली हल है सर्वथा परिवर्तन
और इस दृष्टि से प्रेमचन्द मार्क्सवाद की अपेक्षा भारतीय समाजवाद के अधिक निक
नजर आते हैं। अपने व्यावहारिक ज्ञान और अनुभव से ही वह अनात्मवादी तो नहीं
अनीश्वरवादी अवश्य दिखाई देते हैं। मेहता का व्यावहारिक अध्यात्मवाद इसक
प्रमाण है जो प्रेमचन्दजी के पं॰ मेहताजी से कहे गए वचनों से भी सिद्ध होता है। य
अनीश्वरवादी भावना भी मार्क्सवादी दृष्टि से नहीं आई है निजी जीवन अनुभवों प
आधृत है। अतः 'गोदान' में प्रेमचन्द को साम्यवादी कहना भी उतना ही भ्रान्तिपू
है जितना गांधीवादी मानना। वह भारतीय समाजवाद के अधिक निकट हैं जिसमें
आर्थिक व्यवस्था के लिए मार्क्सवादी और सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों के लिए
गांधीवादी दृष्टिकोण समन्वित हो जाते हैं। सच तो यह है कि वह सोलह आने अथवा
मानववादी हैं।

१० 'गोदान' नामकरण

किसी रचना का नामकरण भी महत्त्व रखता है। उसमें लेखक की कलात्मक प्रवृत्ति और रुचि का परिचय मिलता है। नामकरण में मुख्यतः इन बातों का ध्यान रखना आवश्यक होता है। पहली तो यह कि जहाँ तक हो नाम संक्षिप्त—केवल एक-दो शब्दों का होना चाहिए। इस दृष्टि से प्रेमचन्द के सभी उपन्यासों के नाम अत्यन्त संक्षिप्त हैं। दूसरी बात यह कि नाम ऐसा होना चाहिए जिससे रचना के एक बार पढ़ने के बाद कभी भी नाम सामने आते ही उपन्यास का उद्देश्य या प्रमुख घटना-तत्त्व हमारी स्मृति में दौड़ जाए। चरित्र प्रधान या ऐसी रचनाओं में जिनमें किसी नायक या नायिका का चरित्र महत्त्व पाता है, उनके नाम पर ही रचना का नाम रख दिया जाता है जैसे 'मृगनयनी' 'सन्यासी' 'निर्मला' आदि। तीसरी बात नामकरण के बारे में यह है कि वह जहाँ तक हो कलात्मक-आकर्षक होना चाहिए। आकर्षण पैदा करने के लिए लेखक प्रायः अभिधा की बजाय लक्षणा का सहारा लिया करते हैं। सीधे नाम विशेष आकर्षक नहीं होते। 'सन्यासी' का नायक नन्द किशोर है। यदि उस उपन्यास का नाम 'नन्दकिशोर' रखा जाता तो उसमें वह आकर्षण न होता जो 'सन्यासी' नाम रखने में है। इस व्यंग्यात्मक नाम से जोशीजी

न नन्दकिशोर के चारित्रिक ढोंग को स्पष्ट कर दिया है। कहने का अभिप्राय यह है कि नामकरण सार्थक संक्षिप्त और व्यक्तित्वपूर्ण होना चाहिए।

'गोदान' नाम सार्थक भी है और संक्षिप्त तथा कलात्मक भी। इस उपन्यास में होरी के जीवन की विडम्बना दिखाना ही प्रेमचन्द का उद्देश्य है। होरी एक किसान है—भारतीय किसान। गाय की लालसा भारतीय किसान की स्वाभाविक लालसा है। वह गाय को माता कहता है। "गऊ से ही तो द्वार की शोभा है। सबेरे सबेरे गऊ के दर्शन हो जाय तो क्या कहना!" जीवन ही नहीं भारतीय किसान अपनी मृत्यु भी गोदान से ही सफल मानता है। होरी के जीवन की यही विडम्बना है। वह आजीवन अपनी यह छोटी-सी साध भी पूरी नहीं कर पाता। मरते-समय उसी होरी से जो जीवन में गाय को अपने द्वार पर नहीं बाँध सका—अपनी लालसा को मन में ही लेकर मर गया गोदान कराने की बात कही जाती है। मृत्यु की छाया से ग्रस्त होरी की अधूरी साध का चित्र प्रेमचन्द ने बहुत सुन्दरता से प्रस्तुत किया है। सारी उमर जीवन से संघर्ष करता हुआ जो बेटे और मन्नू-से पोते के लिए एक गाय भी नहीं जुटा सका उसी की अवचेतना धनिया को न पहचानकर कहती है—"तुम आ गये गोबर, मैंने मंगल के लिए गाय ले ली है। वह खड़ी है देखो। मृत्यु का यह कितना मनोवैज्ञानिक चित्र है! "धनिया ने मौत की सूरत देखी थी। उसे पहचानती थी। उसे दबे-पाँव आते भी देखा था आँधी की तरह आते भी देखा था।" जब होरी की चेतना लौटी और धनिया को पहचाना तो क्षीण स्वर में बोला—"मेरा कहा-सुना माफ करना धनिया! अब जाता हूँ। गाय की लालसा मन में ही रह गयी।"

धनिया सिर पीट कर रह जाती है। "क्या करें, पैसे नहीं हैं नहीं किसी को भेजकर डाक्टर बुलाती!"

जीवन की कितनी बड़ी ट्रेजडी है! कई आवाजें आईं हाँ गो-दान करा दो अब यही समय है। और धनिया ने आज जो सुतली बेची थी उसके बीस आने लाकर, पति के ठण्डे हाथ में रख सामने खड़े दातादीन को दे दिए और कहा— "महाराज घर में न गाय है न बछिया न पैसा। यही पैसे हैं यही इसका गोदान है।" और पछाड़ खा कर गिर पड़ी।

यह है 'गोदान' की अन्तिम झाँकी। आरम्भ होता है लालसा से। मध्य है लालसा-पूर्ति का असफल और करुण संघर्ष। यह लालसा भी कितनी तुच्छ है! किसी बड़े महल बनाने की ऐश्वर्यपूर्ण जीवन बिताने की अथवा पूँजीपति बनने की लालसा नहीं है। एक गरीब किसान की एक स्वाभाविक लालसा है जिसके परिवार को घी-दूध अंजन लगाने को नहीं मिलता, दवा-दारू के अभाव में जिसके तीन-तीन

बच्चे जीवन की आँख खोलते ही मृत्यु की गोद में चले जाते हैं। होरी अपने मालिक की चिरौरी करता चला है क्योंकि इसी खुशामद के प्रसाद से अब तक उसकी जान बची हुई है। जब दूसरों के पाँवों तले गर्दन दबी हुई है तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है।' जाते समय रास्ते में पगडण्डी के दोनों ओर ऊख के पौधों की लहराती हुई हरियाली देखकर उसने मन में कहा—भगवान कहीं गौं से बरखा कर दें और डाँडी भी सुभीते से रहे तो एक गाय जरूर लेगा। ... उसकी खूब सेवा करेगा। कुछ नहीं तो चार-पाँच सेर दूध होगा। गोबर दूध के लिए तरस-तरस कर रह जाता है। ...साल भर भी दूध पी ले तो देखने लायक हो जाय। बछड़े भी अच्छे बैल निकलेंगे। फिर गऊ से ही तो द्वार की शोभा है। सबेरे-सबेरे गऊ के दर्शन हो जायँ तो क्या कहना! न जाने कब यह साध पूरी होगी कब वह शुभ दिन आयगा।'

और सारी कथा गवाह है कि यह साध कभी पूरी नहीं होती। पूरा करने का एक बार का प्रयत्न हजार मुसीबतें दे गया। जमींदार उसका कारिन्दा पटवारी पुलिस महाजन मिल का मालिक आदि न जाने कितने शोषक उसे उबरने ही नहीं देते। जिसे दो जून पेट-भर खाने को भी न मिले जिसकी पूरी फसल खेत मे ही बँट जाय घर में एक दाना भी आकर न पड़े जो कौड़ी-कौड़ी के लिए दूसरों का मोहताज हो वह अपनी गाय की साध कैसे पूरी करता। अन्त मे यही लालसा लेकर बल्कि कहना चाहिए इसी लालसा की पूर्ति के लिए होरी अपनी जान दे देता है।

गाय की लालसा वास्तव में एक प्रतीक है। एक ओर तो यह कृषक की स्वाभाविक लालसा है दूसरी ओर लेखक का उद्देश्य इससे यह बताना भी है कि अनन्त संकटों के बाद इतनी तुच्छ लालसा भी जिस किसान की अधूरी रह जाती है, उसके जीवन की इससे करुण ट्रेजेडी और क्या हो सकती है। प्रेमचन्दजी ने स्पष्ट कहा है— 'हर एक गृहस्थ की भाँति होरी के मन में भी गऊ की लालसा चिरकाल से संचित चली आती थी। यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी। बैंक के सूद से चैन करने या जमीन खरीदने या महल बनवाने की विशाल आकांक्षाएँ उसके नन्हे-से हृदय में कैसे समातीं। इस लालसा को पूरा करने का विचार गोबर के मन में भी आता है। जब गोबर झुनिया को घर छोड़कर शहर की ओर जाता है तो वह संकल्प करता है कि शहर में खूब कमायेगा मजूरी करेगा। 'सबसे पहले वह एक पछाई गाय लायगा जो चार-पाँच सेर दूध देगी और दादा (होरी) से कहेगा तुम गऊ माता की सेवा करो। इससे तुम्हारा लोक भी बनेगा और परलोक भी। इस प्रकार गोबर भी पिता की गाय की लालसा पूरा करने की सोचता है, पर कर नहीं पाता। अन्त में ठेकेदार की मजदूरी करते हुए भी होरी अपने नाती मंगल के लिए गाय लेने की सोचता है। रूपा अपनी ससुराल से पहुँच

कर पूर्व-स्मृति में मग्न है— 'उसके दादा की यह लालसा (गाय की) अभी पूरी न हुई। जिस दिन वह गाय आयी थी उन्हें कितना उछाह हुआ था—तब से फिर उन्हें इतनी समाई ही न हुई कि कोई दूसरी गाय लाते पर वह जानती थी आज भी वह लालसा होरी के मन में उतनी ही सजग है। अतः गाय की लालसा और उसकी करुण अनुभूति उपन्यास की मूल संवेदना बनी हुई है।

इस प्रकार 'गोदान' नामकरण से लेखक का उद्देश्य, मुख्य-कथा का मर्म और उपन्यास की मूल संवेदना स्पष्ट हो जाती है। यह नाम अत्यन्त उपयुक्त एवं सार्थक है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है 'गोदान' नामकरण व्यंग्यात्मक भी है। मरते हुए होरी से गोदान की माँग एक बड़ा सामाजिक व्यंग्य है। फिर यह दान भी दातादीन पण्डित लेता है, जो सारी उमर होरी का शोषण करता रहा। धनिया के घर में कुल बीस आने थे और वह उन्हें ही दातादीन को देकर होरी का गोदान करा देती है।

'गोदान' मुन्शी प्रेमचन्द का भी गो-दान ही सिद्ध हुआ। यह उनकी अन्तिम पूर्ण रचना है। यद्यपि उन्होंने 'मङ्गलसूत्र' नामक एक और उपन्यास आरम्भ किया हुआ था, पर वह अधूरा ही रहा मानों विधि को 'गोदान' ही उनका गोदान रखना था। यह समाज को दिया गया प्रेमचन्द का अन्तिम दान है। इस दृष्टि से भी यह नामकरण बहुत ही उपयुक्त रहा।

११ 'गोदान' का होरी और 'सन्यासी' का नन्दकिशोर

गोदान तथा 'संन्यासी' हिन्दी उपन्यास-साहित्य की दो विकासकारी रचनाएँ हैं। एक सामाजिक उपन्यासों की चरम प्रगति की द्योतक है दूसरी चरित्र प्रधान मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की। दोनों के चरित्र-नायक अपने-अपने स्रष्टाओं के दृष्टि भेद के परिचायक हैं। होरी सामाजिक उपन्यास का नायक होने के कारण समाज-सापेक्ष है। वह परिस्थितियों का दास है। उसकी कहानी समाज की कहानी है। एक में बाह्य द्वन्द्व की प्रधानता है तो दूसरे में अन्तर्द्वन्द्व की। एक का अन्तर्द्वन्द्व केवल चेतन-स्तर का ऊपरी 'करूँ' या न करूँ' का ही संघर्ष है दूसरे (नन्दकिशोर) के चेतन और अवचेतन दोनों स्तरों पर ज्ञात और अज्ञात भीषण द्वन्द्व चलते हैं। होरी एक सीधा-सादा भोला-भाला किसान है जिसमें कोई कुण्ठा नहीं कोई मानसिक कुण्ठा या घुमड़न नहीं कोई जटिलता नहीं। इसके विपरीत नन्दकिशोर अपने स्रष्टा की मनोवैज्ञानिक दृष्टि के कारण कुण्ठा-ग्रस्त जटिल पात्र है जिसका अवचेतन बड़ा प्रबल है। एक साधारण प्रतिनिधि पात्र है जिसका चरित्र-चित्रण उसके वर्ग की मनोवृत्तियों के प्रकाशन हेतु हुआ है दूसरा जटिल असाधारण वैयक्तिक पात्र है

जिसका चरित्र चित्रण गहरे स्तर की मनोवैज्ञानिक एक्स किरणों (X Rays) के द्वारा अवचेतन की ग्रन्थियों को सुलझाने के लिये हुआ है।

प्रेमचन्द सामाजिक उपन्यासकार हैं। उनका उद्देश्य समाज की समस्याएँ चित्रित करना है। उनकी मान्यता है कि समाज की बुराइयों भौतिक विषमताओं और जमींदारी-पूँजीवादी पद्धतियों को समाप्त करने से ही समाज का कल्याण हो सकता है। इसके विपरीत जोशीजी की धारणा है कि केवल बाह्य ढाँचे को बदलने भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति तथा सामाजिक बुराइयों को दूर करने से कुछ न होगा। मनुष्य के अवचेतन में दबी हुई पशु-प्रवृत्तियों को उभार कर जब तक उनका परिशोधन नहीं किया जायगा समाज का कल्याण नहीं हो सकता। इसी दृष्टि भेद के कारण प्रेमचन्दजी ने होरी की बाह्य सामाजिक कहानी कही है तो जोशीजी ने अपने नायक की आन्तरिक मनोवैज्ञानिक कहानी प्रस्तुत की है। प्रेमचन्द निम्नवर्ग के—विशेषकर ग्रामीण कृषक-वर्ग के चितेरा हैं जोशीजी वर्तमान शिक्षित अहं-ग्रस्त आत्मकामी पात्रों की चीर-फाड़ करते हैं। दोनों कथाकारों के दृष्टि भेद से ही उनके कथानक चरित्र चित्रण आदि सब तत्त्वों में अन्तर उपस्थित हो गया है। दोनों के चरित्र-नायक अपने-अपने स्रष्टाओं की भिन्न-भिन्न उपन्यास-शिल्प और जीवन-दृष्टि द्वारा संभूत हुए हैं। होरी का चरित्र कृषक-संस्कृति की लोक-परम्परा का प्रतीक है नन्दकिशोर में मानव की अहं और सन्देह की आदिम वृत्तियों के प्रकाशन का उद्देश्य रहा है। 'गोदान' सीधी सामाजिक चेतना का उपन्यास है 'संन्यासी' में वैयक्तिक चेतना से सामाजिक भावना जगाने का प्रयत्न पाया जाता है।

